

शुभ
दीपावली

RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम रेवेर

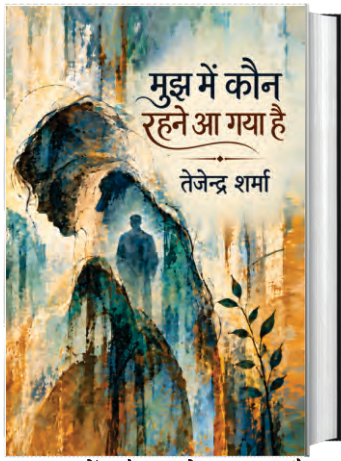
वैश्विक हिन्दी चिन्तन की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 43, अक्टूबर-दिसम्बर 2026

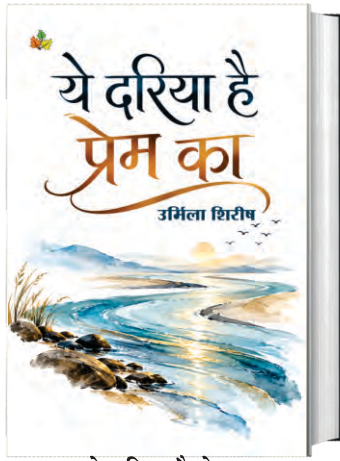
मूल्य 50 रुपये



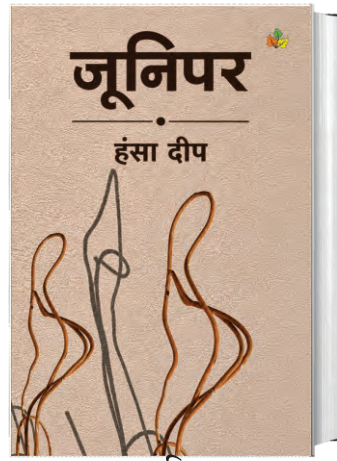
शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें



मुझ में कौन रहने आ गया है
कहानी संग्रह
तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 320 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-031-1



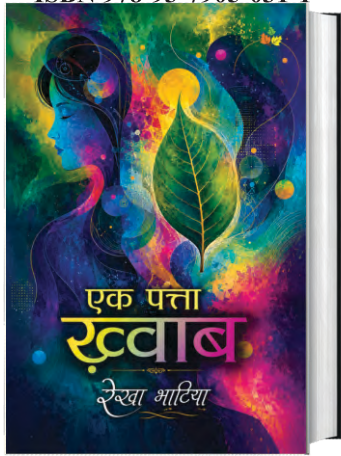
ये दरिया है प्रेम का
कहानी संग्रह
उर्मिला शिरीष
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-030-4



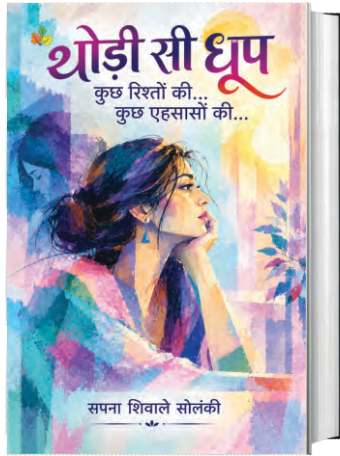
जूनिपर
कहानी संग्रह
हंसा दीप
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-017-5



अस्मि
उपन्यास
शिखा वाष्णीय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-021-2



एक पत्ता ख़्वाब
कविता संग्रह
रेखा भाटिया
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-019-9



थोड़ी सी धूप
कहानी संग्रह
सपना शिवाले सोलंकी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-024-3



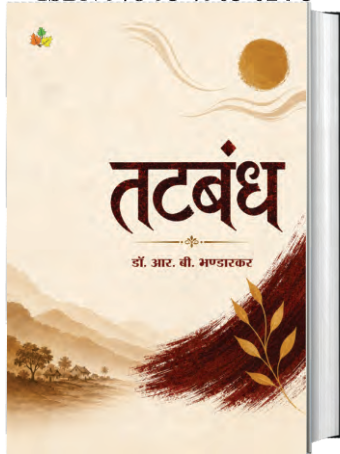
घूरना मना है
व्यंग्य संग्रह
ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-025-0



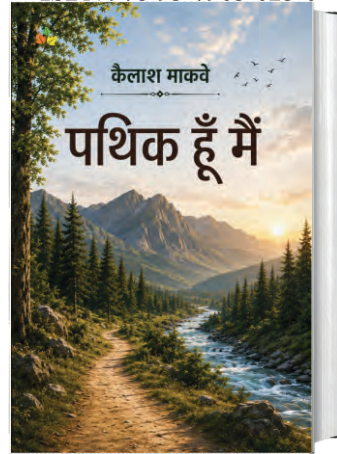
धुआँ और अन्य कहानियाँ
अनुवाद- सुजाता शिवेन
मूल ओड़िया- इंदुलता महाति
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-016-8



और चाँद काला हो गया
कहानी संग्रह
डॉ. हर्षबाला शर्मा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-010-6



तटबंध
कहानी संग्रह
डॉ. आर. बी. भंडारकर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-005-2



पथिक हूँ मैं
कविता संग्रह
कैलाश माकवे
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-018-2



वो महकती सी लड़की
कविता संग्रह
अनीता वर्मा
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-028-1

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शाँप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेंसमेट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372

मोबाइल +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580

ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com

+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac

https://www.facebook.com/shivna.prakashan

https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations

amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JYJGSM2CEV



संरक्षक एवं प्रमुख संपादक

सुधा ओम ढिंगरा

संपादक

पंकज सुबीर

क्रानूनी सलाहकार

शहरयार अमजद खान (एडवोकेट)

डिजायनिंग

सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय

पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001

दूरभाष : +91-7562405545

मोबाइल : +91-9806162184

ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'

<http://www.vibhom.com/vibhomswar.html>

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'

<https://www.facebook.com/vibhomswar>



एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर \$5)

सदस्यता शुल्क

3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)

11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-

Name: Vibhom Swar

Bank Name: Bank Of Baroda,

Branch: Sehore (M.P.)

Account Number: 30010200000312

IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक

तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर

होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित

होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।



विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 43, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2026

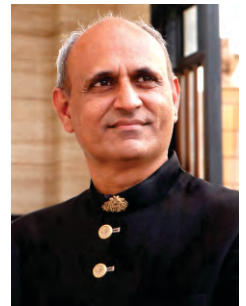
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814



रेखाचित्र

रोहित प्रसाद 'पथिक'



आवरण चित्र

पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation

101 Guymon Court, Morrisville

NC-27560, USA

Ph. +1-919-801-0672

Email: sudhadrishti@gmail.com



विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन
की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 43
अक्टूबर- दिसम्बर 2026

संपादकीय 3

साक्षात्कार

कवि, कथाकार, उपन्यासकार शिखा वाष्णीय
से आकाश माथुर की बातचीत 5

कथा-कहानी

चिरोयली

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा 11

क्रिस्टीना की शादी

रोचिका अरुण शर्मा 14

लौटते हुए

मीता दास 19

गृहस्वामिनी

डॉ. मंजु शर्मा 24

हक्र

अमिता प्रकाश 27

श्री डी

शुभा ओझा 30

अपवाद

शैलेन्द्र शरण 33

मैं क्या करूँ, प्रभाष

डॉ. पूरन सिंह 37

मैं गली नंबर 9

डॉ. आरती स्मित 43

लघुकथा

कुँआरी हथेलियाँ

पूजा अग्निहोत्री 18

सोलो ट्रेवलिंग

गरिमा चवरे 36

साफ़ सफ़ाई

नरेंद्र कौर छाबड़ा 54

भूल

सुभाष चंद्र लखेड़ा 56

जेबकतरे

सुरेश सौरभ 59

भाषांतर

कोको का जन्मदिन

पंजाबी कहानी,

मूल लेखक : डॉ. प्रेम मान

हिन्दी अनुवाद : डॉ. अमरजीत कौंके 47

व्यंग्य

गड्डा

नंदकिशोर बर्वे 51

पतन पर एक चिंतन

कमलेश पाण्डेय 53

लिखा के लाए हैं...

डॉ. मुकेश असीमित 55

निबंध

तुलसी के लोकनायक राम

साधना अग्रवाल 57

आलेख

महादेवी के लेखन में चेतना के स्वर

सरोजिनी नौटियाल 60

रेखाचित्र

हवा में उड़ता जाए मेरा लाल दुपट्टा....

स्मृति आदित्य 63

शहरों की रूह

एक खोया हुआ सपना

रेखा भाटिया 65

दोहे

प्रवीण पारीक 'अंशु' 62

गज़लें

नवीन माथुर पंचोली 64

आखिरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप बैंक / ड्राफ्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवाँ कैरेक्टर अंग्रेजी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'जीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- बैंक/ड्राफ्ट नंबर, 5- ट्रांजेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफर है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

सरकारें उस जनता के बारे में क्यों नहीं सोचतीं, जो उन्हें चुनती है



सुधा ओम ढींगरा

101, गार्डमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

ज्योंही संपादकीय लिखने बैठी तो समाचार आए कि भारत और पेरिस में छात्र तथा जनता अपनी माँगों के लिए सड़कों पर उतर आए हैं। पाकिस्तान के भीतर वैसे ही आंतरिक लड़ाई चल रही है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर विद्रोह कर रहा है। यूक्रेन और रूस कई बरसों से लड़ रहे हैं। ईरान और अमेरिका की लड़ाई किसी भी निर्णय पर नहीं पहुँची है। यमन के हूती और सऊदी अरेबिया, ईरान और अमेरिका की आड़ में अपनी खुंदक निकाल रहे हैं...

बड़े देशों के बहाने कई छोटे देश अपनी निजी रंजिशों का बदला लेने के लिए आपस में भिड़ रहे हैं। गाजा और इजराइल की समस्या तो वर्षों पुरानी है। गाजा का गुस्सा निकालने के लिए एक को-पॉयलट ने भारतीय पॉयलट को घायल कर हवाई जहाज को तबाह करना चाहा, जिसमें इजराइली यात्री थे। भारतीय पायलट ने घायल अवस्था में जान पर खेलकर अपनी बुद्धि और विवेक से हवाई जहाज के यात्रियों को बचा लिया। यह लिखते हुए मैं जानती हूँ, आप सब समाचार सुनते, पढ़ते और टीवी पर देखते हैं। हरेक घटना और दुर्घटना का आपको पता होता है। मैं दुखी होती हूँ, वैश्विक सोच को लेकर, जो विवेकहीन होती जा रही है। सोशल इन्फ्लुएंसर, सोशल मीडिया जो परोस दे, उसे स्वीकार किया जा रहा है... राजनीति और लड़ाइयों में पूरे विश्व में आम जनता यह सोचकर चुप बैठी रहती है कि लड़ाई उनके देश में तो हो नहीं रही, कहीं भी हो, उन पर लड़ाई का क्या असर होता है? समाचार लोगों तक पहुँचते हैं, वे उन्हें सुन लेते हैं। अपनी बुद्धि अनुसार राय बना लेते हैं, बात वहीं समाप्त कर देते हैं... बात समाप्त नहीं होती। दरअसल बात वहीं से शुरू होती है। अगर कोई देश दूसरे देश से आधुनिक युद्ध उपकरणों से लड़ रहा है, उस देश के फौजी शहीद नहीं हो रहे तो जनता युद्ध के लिए अधिक सोचती नहीं। यही वैश्विक सोच अन्य देशों की जनता पर भारी पड़ रही है। युद्ध ने कई देशों में अपने मार्चे खोल दिए हैं और कई देश अपने-अपने मोर्चे खोलने की ताक में हैं।

विश्व के किसी एक कोने में अगर युद्ध होता है तो वैश्विक अर्थ व्यवस्था पर असर होता है, अब तो वैश्विक अर्थ व्यवस्था संभालने वाले देशों में ही युद्ध छिड़ा हुआ है तो पूरी दुनिया की अर्थ व्यवस्था तो चरमराएगी ही... हर देश में महँगाई बढ़ेगी...

यह वैश्विक समस्या है। मूल समस्या को पकड़ने की बजाय लोग सड़कों पर उतर आते हैं। विश्व में वैसे ही आर्थिक मंदी आ चुकी है। आंदोलन करना बुरी बात नहीं, अपनी बात रखना अनुचित नहीं, पर आंदोलन अभद्र, हिंसात्मक और अराजकता से किया जाए, यह भी जरूरी नहीं। इससे देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। थोड़े से लोगों के स्वार्थ के लिए आम जनता को कष्ट सहना पड़ता है।

आज इस विषय को इसलिए चुना है, विदेश में रहते हुए मुझे वर्षों बीत गए हैं। लेकिन विश्व

की ऐसी हालत मैंने पहले कभी नहीं देखी। सोशल मीडिया भी पहले नहीं था। समाचार पत्रों या टीवी से ही लोगों तक समाचार पहुँचते थे। पर अब झूठी सनसनीखेज खबरें और नकली वीडियो सोशल मीडिया पर डलते ही चारों ओर फैला दिए जाते हैं; ताकि लोग भड़कें। उद्देश्य यही होता है। जब तक पता चलता है, वीडियो झूठी है, लोग सड़कों पर उतर चुके होते हैं। ऐसा लगता है जैसे लोग खाली बैठे होते हैं। ए आई से तो और भी घातक परिणाम सामने आ रहे हैं। वीडियो में व्यक्तियों और उनकी आवाजें तक दे दी जाती हैं। लोग ऐसी वीडियो को सच समझ लेते हैं।

वर्षों से विदेशों की आंतरिक स्थितियों को करीब से देख रही हूँ, पूरे विश्व में एक जैसा हाल हो रहा है। कोई सही गलत नहीं जानना चाहता। सरकारी साधनों, सरकारी संपत्ति और लोगों की संपत्ति को नष्ट करने वालों में, जनता को देश भक्ति या देश प्रेम या देश का भला कहाँ-से नज़र आता है...? यह मेरी एक तरफ़ा सोच नहीं, किसी विचारधारा से पैदा हुई राय भी नहीं; विदेश में रहती हूँ और सब कुछ करीब से देखती-समझती निष्पक्ष विचार रखती हूँ।

पूरे विश्व के अधिकतर देशों में सरकारों के कार्य का विरोध कर, कार्य प्रणाली को बाधित कर, व्यवस्था को चोट पहुँचा कर असंतुलन सिस्टम का ऐसा घेरा बन रहा है, जिससे हानि जनता की हो रही है। हैरानी की बात है कि जनता ही अपने बारे में सोच नहीं रही। आंदोलन माँगें मनवाने के लिए होना चाहिए, तोड़फोड़ से तो कुछ हासिल नहीं होता।

अब हर तरह के आंदोलन में जेन जी की भागीदारी भी होने लगी है। विश्व के किसी भी बुद्धिजीवी या नेता ने कभी सोचा कि जेन जी को क्यों सड़कों पर उतरना पड़ा। मेरा विश्व की सरकारों के प्रति रोष का कारण ही उनकी ज़िद से है, उनकी हठधर्मिता से है। वे सत्ता के मद में इतनी खो चुकी हैं कि शिकायतकर्ताओं के साथ संवाद ही नहीं करना चाहती। बस अपनी बात मनवाना चाहती हैं। पूरे विश्व में एक ही तरह की मानसिकता पनप गई है। अफ़सोस तो इसी बात का है, जिन मुद्दों को बातचीत से सुलझाया जा सकता है, प्रतिनिधियों से जनता की माँगें सुनी जा सकती हैं; उन्हीं पर सरकारें आंदोलन क्यों होने देती हैं? सरकारें उस जनता के बारे में क्यों नहीं सोचतीं, जो उन्हें चुनती है। वर्षों-वर्ष जेन जी जब देखते हैं सरकारें मुद्दों को नज़रअंदाज़ कर रही हैं तो निराश होकर आंदोलन के रूप में भड़कते हैं, सड़कों पर उतर आते हैं।

इस कठिन समय में पिस वह मेहनत कश रहा है, जो रोज़ कमा कर खाता है। वह मज़दूर जो काम की तलाश में रोज़ घर से निकलता है। वह छोटा दुकानदार जिसकी दुकान न खुले तो परिवार नहीं चल सकता और वह लघु उद्योग कर्ता जिसने अपने उद्योग को लेकर कई सपने देखे होंगे।

विश्व के कई देशों में इस वर्ष चुनाव हुए हैं और हो रहे हैं। उनकी वर्तमान सरकारें स्वयं को सत्ता में रखने के लिए वोटों को धन और अन्य तरह की घूस दे रही हैं। अविकसित देशों के चुनावों में तो यह होता रहा है पर विकसित देशों में भी यह होना शुरू हो गया है। बेहद निराशाजनक बात है, विश्व किस युग की ओर बढ़ रहा है? भविष्य ने इशारा देना शुरू कर दिया है... सत्ताओं के युद्ध तो शुरू हो चुके हैं, आगे समय साक्षी होगा।

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की ओर से सभी को दीपावली की ढेरों शुभकामनाएँ और बधाइयाँ!!



जिस प्रकार घर के द्वार पर गोबर से लीप कर अल्पना बना कर उस पर दीप रखा जाता है, उसी प्रकार अपने मन के आँगन को भी सकारात्मकता से लीप कर उस पर उत्साह की अल्पना सजा कर उस पर आशा का दीप रखना चाहिए। पर्व की तैयारी में घर को तैयार करने से पहले अपने मन को तैयार करना चाहिए।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

सुधा ओम ढींगरा

साक्षात्कार

हर व्यक्ति अपनी स्मृतियों
से जुड़ा रहता है और
साहित्य में भी वे किसी न
किसी रूप में आती हैं
कवि, कथाकार, उपन्यासकार
शिखा वाष्ण्य से आकाश
माथुर की बातचीत



शिखा वाष्ण्य

ईमेल- shikha.varshney2019@gmail.com



आकाश माथुर

152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

शिखा वाष्ण्य का जन्म 1973 में नई दिल्ली में हुआ। मॉस्को स्टेट यूनिवर्सिटी से टीवी जर्नलिज्म में विशेष योग्यता के साथ परास्नातक करने के बाद वे वर्तमान में लंदन में स्वतंत्र पत्रकारिता और सृजनात्मक लेखन में सक्रिय हैं।

उनकी रचनाएँ भारत और विदेश के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हैं। दैनिक जागरण और नवभारत में प्रकाशित उनके चर्चित स्तंभ 'लंदन नामा' और 'लंदन डायरी' ने उन्हें एक विशिष्ट पहचान दिलाई। हिन्दी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता में उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें राष्ट्रीय निर्मल वर्मा सम्मान, विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय सम्मान, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मीडिया सम्मान, एबीपी न्यूज़ सर्वश्रेष्ठ ब्लॉगर सम्मान तथा अन्य प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है।

स्मृतियों में रूस, पाँव के पंख (यात्रावृत्त), मन के प्रतिबिम्ब (कविता संकलन), और देशी चश्मे से लंदन डायरी (स्तम्भ) के बाद अभी हाल में ही शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया "अस्मि" उनका प्रथम उपन्यास है, जिसे पाठकों द्वारा व्यापक रूप से सराहना प्राप्त हो रही है।

आकाश माथुर- शिखा जी नमस्ते, आपकी प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में हुई और फिर आप टीवी जर्नलिज्म की उच्च शिक्षा के लिए मॉस्को स्टेट यूनिवर्सिटी चली गईं। दिल्ली से मॉस्को का यह सफ़र और वहाँ की भाषा व संस्कृति ने एक उभरते हुए रचनाकार के रूप में आपकी सोच को किस तरह प्रभावित किया?

शिखा वाष्ण्य- मेरी प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में नहीं बल्कि पिथौरागढ़, रानीखेत जैसे छोटे पहाड़ी शहरों में हुई। रानीखेत से बारहवीं पास करने के बाद मॉस्को गईं। ज़ाहिर है भाषा, संस्कृति के आधार एक बड़ा परिवर्तन था परन्तु 16 वर्ष की अवस्था में परिवर्तन या नए परिवेश को समझने और उसमें ढलने की संभावना एवं शक्ति भी अधिक होती है। अतः शायद इस अनुभव ने मेरे अन्दर के रचनाकार को समृद्ध किया। इसने मुझे अपने खोल से निकलकर नई दुनिया को देखने की दृष्टि दी। मेरी पुस्तक स्मृतियों में रूस उसी अनुभव का परिणाम है। उसमें रूस के शहर, वहाँ के लोग और संस्कृति तो है ही, एक युवा भारतीय लड़की का अपने भीतर और अपने आसपास की दुनिया को समझना भी है। मुझे लगता है कि उस यात्रा ने मेरे भीतर एक ऐसा लेखक तैयार किया जो किसी समाज को केवल उसकी सुनी-सुनाई छवि से नहीं, बल्कि

अपने अनुभवों से समझना चाहता है।

आकाश माथुर- रूस में आपने अकादमिक और सामाजिक स्तर पर भारतीय साहित्य की स्वीकार्यता को किस रूप में देखा? क्या वहाँ आज भी सोवियत दौर जैसा हिन्दी और भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा रुझान शेष है?

शिखा वाष्ण्य- देखिये जिस दौर में मैं रूस में थी वह प्रेरेस्ट्रोइका का दौर था। रूस तेज़ी से बदल रहा था। परन्तु तब तक भी भारत, भारतीय एवं भारतीय संस्कृति के प्रति रूसियों में अलग ही आत्मीयता और आकर्षण था। भारतीय फ़िल्मों और गीतों का तो लगभग जुनून ही था। भारतीय भाषाएँ और साहित्य वहाँ के विश्वविद्यालयों के महत्वपूर्ण विषय थे। आज दुनिया बदल चुकी है। रूस का सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य भी सोवियत काल जैसा नहीं है। इसलिए मैं यह दावा नहीं करूँगी कि उस दौर का आकर्षण आज भी ठीक उसी रूप में मौजूद है। लेकिन सांस्कृतिक संबंधों की स्मृतियाँ और साहित्य के माध्यम से एक-दूसरे को समझने की संभावना अब भी महत्वपूर्ण हैं।

आकाश माथुर- भारत में न्यूज़ प्रोड्यूसर के रूप में टीवी पत्रकारिता करने के बाद जब आप 2007 में लंदन पहुँचीं, तो आपकी पेशेवर जिंदगी में क्या बदलाव आए? न्यूज़रूम की आपाधापी को छोड़कर एक स्वतंत्र पत्रकार और साहित्यकार बनने की इस यात्रा को आप कैसे देखती हैं?

शिखा वाष्ण्य- मैं भारत में पत्रकारिता की नौकरी छोड़ने के बाद 2007 में नहीं बल्कि 1998 में लन्दन आई थी। फिर अमरीका, एक साल भारत और फिर वापस लन्दन 2007 में आई। भारत में टीवी पत्रकारिता के छोटे से अनुभव से मैंने बहुत कुछ सीखा। खासकर न्यूज़रूम की तेज़ रफ़्तार, समय की पाबंदी और घटनाओं को कम समय में समझकर प्रस्तुत करने का अनुशासन। उसके बाद जीवन की प्राथमिकताएँ जरूर बदल गईं परन्तु उसने भी मुझे समाज और आसपास के जीवन को, संस्कृति को नए संदर्भ में ऑब्ज़र्व करने का और उसके प्रति अपने विचार रखने

का समय दिया। स्वतंत्र पत्रकारिता ने मुझे विषयों के चयन और उन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत करने की अधिक गुंजाइश दी। साहित्य ने इस अनुभव को और विस्तार दिया।

मैं पत्रकारिता से साहित्य की ओर किसी एक को छोड़कर दूसरे को अपनाने की तरह नहीं देखती। दोनों ने एक-दूसरे को समृद्ध किया है। पत्रकारिता ने मुझे तथ्यों और सामाजिक यथार्थ के प्रति सजग रखा, जबकि साहित्य ने उन तथ्यों के पीछे मौजूद मानवीय अनुभवों को समझने की दृष्टि दी।

आकाश माथुर- आपने रूस, इंग्लैंड और भारत तीनों देशों की मीडिया संस्कृति को करीब से परखा है। काम करने के ढाँचे और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के स्तर पर आप इनमें क्या बुनियादी अंतर देखती हैं?

शिखा वाष्ण्य- तीनों देशों की मीडिया में काफी अंतर है, क्योंकि हर देश का इतिहास, मीडिया व्यवस्था और सामाजिक परिस्थितियाँ अलग-अलग हैं।

भारत में मीडिया का दायरा बहुत बड़ा है। यहाँ कई भाषाएँ, संस्कृतियाँ और सामाजिक वर्ग हैं, इसलिए मीडिया की भूमिका भी अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है। लेकिन व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा, राजनीतिक मतभेद और दर्शकों का ध्यान खींचने का दबाव इसके सामने बड़ी चुनौतियाँ हैं।

ब्रिटेन में सार्वजनिक प्रसारण, जवाबदेही और पत्रकारिता के मानकों पर अधिक जोर दिया जाता है। फिर भी, वहाँ का मीडिया व्यावसायिक दबावों और पक्षपात से पूरी तरह मुक्त नहीं है।

रूस में मीडिया पर वहाँ की राजनीतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव रहा है। इसलिए वहाँ मीडिया की स्वतंत्रता और अपने फैसले लेने की क्षमता को समझने के लिए इन परिस्थितियों को जानना जरूरी है।

मेरे लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह अवश्य है कि पत्रकार को कितनी स्वतंत्रता है, लेकिन उससे भी पहले और अधिक महत्वपूर्ण यह कि वह उस स्वतंत्रता का उपयोग कितनी ज़िम्मेदारी से करता है।

आकाश माथुर- टीवी पत्रकारिता के

अपने अनुभवों के आलोक में आज के भारतीय मीडिया परिदृश्य को आप किस रूप में देखती हैं? टीआरपी की दौड़, सनसनीखेज़ प्रस्तुति और गिरते नैतिक मूल्यों के बीच एक पत्रकार के तौर पर आपकी क्या चिंताएँ हैं?

शिखा वाष्ण्य- टीवी पत्रकारिता में काम करने के कारण मैं जानती हूँ कि न्यूज़रूम पर समय, प्रतिस्पर्धा और दर्शकों की अपेक्षाओं का कितना दबाव होता है। लेकिन दबाव होना और उसके आगे संपादकीय विवेक को समर्पित कर देना, दो अलग बातें हैं।

आज मेरी सबसे बड़ी चिंता यह है कि कई बार समाचार और तमाशे के बीच का अंतर धुँधला पड़ता दिखाई देता है। किसी घटना को समझने के बजाय उसे सनसनीखेज़ बनाने, किसी मुद्दे की जटिलता को समझने के बजाय उसे दो विरोधी खेमों में बाँट देने और तत्काल प्रतिक्रिया को गहन पड़ताल से अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति चिंताजनक है। आज सच- झूठ, ग़लत-सही कुछ रह ही नहीं गया जो बचा है वह बस या तो आप सरकार के पक्ष में हो या विपक्ष में।

टीआरपी या दर्शकों की संख्या अपने आप में समस्या नहीं है। समस्या तब पैदा होती है, जब लोकप्रियता ही सत्य का पैमाना बन जाए।

आकाश माथुर- आपकी पुस्तक 'देशी चश्मे से लंदन डायरी' का शीर्षक बहुत दिलचस्प है। एक आम पर्यटक की घुमक्कड़ी की तुलना में जब एक पत्रकार की पैनी नज़र विदेशी समाज और राजनीति को टटोलती है, तो यात्रा वृत्तांत किस तरह अलग आकार लेता है?

शिखा वाष्ण्य- देखिये सबसे पहले तो पत्रकारिता दूर दिष्ट बात करना सिखाती है। फिर मेरे लिए यात्रा का अर्थ केवल नई जगहों पर जाना, प्रसिद्ध इमारतें देखना और तस्वीरें लेकर लौट आना नहीं है। किसी भी जगह को समझने के लिए यह देखना जरूरी है कि वहाँ के लोग कैसे रहते हैं, उनके सामाजिक व्यवहार कैसे हैं, उनकी प्राथमिकताएँ क्या हैं और उनकी दुनिया किन विचारों से संचालित होती है।

'देशी चश्मे से लंदन डायरी' शीर्षक ही इस दृष्टि को सामने रखता है। मेरे पास एक भारतीय मन है, अपने समाज से मिले संस्कार हैं और पत्रकारिता से विकसित सवाल पूछने की आदत है। यही मेरा 'देशी चश्मा' है।

लेकिन देशी चश्मे का अर्थ यह नहीं कि मैं हर चीज को भारत से तुलना करके ही देखूँ या अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ मानकर चलूँ। इसका अर्थ है कि मैं अपनी पृष्ठभूमि के अनुभवों के प्रति सजग रहते हुए दूसरे समाज को समझने की कोशिश करूँ।

एक पत्रकार की दृष्टि यात्रा-वृत्तांत को कुछ अतिरिक्त परतें देती है। वह किसी दृश्य के पीछे की व्यवस्था, किसी परंपरा के पीछे के सामाजिक कारण और किसी घटना के पीछे के मानवीय अनुभवों को तलाशती है और कम शब्दों में अधिक बात कहना जानती है।

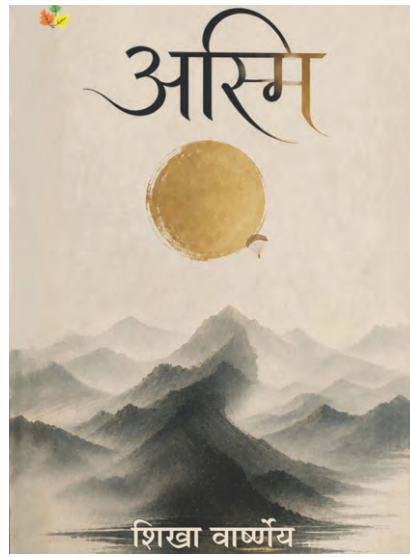
मेरे लिए यात्रा-वृत्तांत भूगोल का विवरण भर नहीं, मनुष्य और समाज को समझने का एक माध्यम है।

आकाश माथुर- वैश्वीकरण के इस दौर में विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाओं से गुजरते हुए, एक प्रवासी लेखक के भीतर का 'देशी स्व' किस तरह सुरक्षित रहता है? क्या यह विदेश में अपनी जड़ें बचाए रखने का संघर्ष है?

शिखा वाष्णीय- स्व को बचाना कहाँ पड़ता है वह तो अपने आप बचा रहता है। देश हमारे भीतर हमारी भाषा में, हमारे मुहावरों में, बचपन की स्मृतियों में, रिश्तों को देखने के हमारे ढंग में और कभी-कभी उन छोटी-छोटी बातों में रहता है जिन पर हम स्वयं ध्यान नहीं देते।

विदेश में रहने से ये चीजें समाप्त नहीं होतीं, बल्कि कई बार अधिक स्पष्ट होकर सामने आती हैं। दूरी हमें अपने देश को नए सिरे से देखने का अवसर देती है। साथ ही, दूसरे समाज के बीच रहने से अपनी मान्यताओं पर प्रश्न करने और उन्हें नए सिरे से समझने की गुंजाइश भी बनती है।

लेकिन मैं इसे केवल जड़ों को बचाए रखने का संघर्ष नहीं मानती। अगर हम अपनी



संस्कृति को बचाने के नाम पर अपने आसपास की दुनिया से कट जाएँ, तो हमारी दृष्टि संकुचित हो सकती है। मैं "वसुधैव कुटुम्बकम्" के भाव को बहुत शिद्दत से मानती हूँ।

मेरे लिए प्रवासी होने का अर्थ दो दुनियाओं के बीच बँट जाना नहीं, बल्कि दोनों से सीखते हुए अपनी दृष्टि को व्यापक बनाना है।

आकाश माथुर- आपके उपन्यास 'अस्मि' की नायिका अपनी पहचान की खोज में आधुनिक कॉर्पोरेट सफलता के बजाय सुदूर जंगलों और पहाड़ों का रुख करती है। आत्म-खोज के लिए प्रकृति की ओर वापसी का यह विचार आपके भीतर कैसे उपजा?

शिखा वाष्णीय- इसकी एक वजह शायद मेरा अपना मन है। प्रकृति और पहाड़ों से मेरा लगाव है और शायद अपने मूल में लौटकर जीने की चाह है। आप इसे फंतासी भी कह सकते हैं। असल में 'अस्मि' के केंद्र में मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है- मैं कौन हूँ? और क्या मैं वही हूँ जो समाज, परिवार, रिश्तों या पेशे ने मुझे बना दिया है, या मेरे भीतर कोई ऐसा व्यक्ति भी है जिसे पहचानने के लिए मुझे अपने परिचित संसार से बाहर निकलना होगा?

मेरी नायिका की यात्रा इसी प्रश्न से जुड़ी है। प्रकृति की ओर लौटना मेरे लिए सभ्यता या आधुनिकता का विरोध करना नहीं है। यह अपने भीतर की आवाज सुनने के लिए उस

शोर से थोड़ी दूरी बनाने का प्रयास है, जिसमें हम अक्सर दूसरों की अपेक्षाओं को ही अपनी इच्छा समझ बैठते हैं।

मैं यह नहीं मानती कि हर समस्या का समाधान जंगलों या पहाड़ों में मिल जाएगा। लेकिन कभी-कभी अपने जीवन को समझने के लिए परिचित दुनिया से कुछ दूरी शायद जरूरी होती है। अस्मि को भी यह एहसास दूर जाकर ही हुआ बेशक यह एक हादसे के माध्यम से हुआ। 'अस्मि' का प्रश्न अंततः किसी एक स्त्री का ही प्रश्न नहीं है। यह हर उस व्यक्ति का प्रश्न है जो कभी ठहरकर स्वयं से पूछता है- मेरी अपनी इच्छा क्या है, मेरी पहचान क्या है और मेरे होने का अर्थ क्या है? अस्मि में जे और रियो जैसे भी पात्र हैं जिन्होंने अपनी पहचान बड़े शहर में और आधुनिक देश में बनाई।

आकाश माथुर- समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का एक बड़ा हिस्सा देह और शारीरिक स्वतंत्रता तक सिमटता दिख रहा है। क्या आपको लगता है कि इस अति-अभिव्यक्ति ने स्त्री अस्मिता के व्यापक सामाजिक, बौद्धिक और अस्तित्ववादी संघर्षों को हाशिए पर धकेल दिया है?

शिखा वाष्णीय- देखिए, किसी भी चीज की अति अच्छी नहीं होती। मेरे विचार में, स्त्री विमर्श को सिर्फ देह तक सीमित कर देना उसे बहुत सतही बना देता है। स्त्री की देह, उसकी इच्छाओं और शारीरिक स्वतंत्रता से जुड़े सवाल महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि सदियों से समाज ने उसकी देह पर नियंत्रण रखा है। इन मुद्दों पर लिखना और बोलना जरूरी रहा है।

लेकिन स्त्री विमर्श सिर्फ इन्हीं सवालों तक सीमित नहीं होना चाहिए। स्त्री की पहचान में उसकी देह के साथ-साथ उसकी सोच, आर्थिक स्वतंत्रता, फैसले लेने का अधिकार, भावनाएँ, अकेलापन और अपने अस्तित्व से जुड़े सवाल भी शामिल हैं।

मेरे लिए स्त्री की स्वतंत्रता का अर्थ सिर्फ अपनी पसंद से फैसले लेना नहीं है, बल्कि यह भी है कि उसके पास सचमुच चुनाव करने के विकल्प हों और वह किन परिस्थितियों में फैसले ले रही है।

आकाश माथुर- आपकी चर्चित पंक्ति है- "कमीजें कितनी भी बदलो, प्रेम नहीं बदला जाता।" कविता की तीव्रता और कहानी के विस्तार में आपकी सृजन प्रक्रिया कैसे काम करती है? दोनों में से आप खुद को किसके ज्यादा करीब पाती हैं?

शिखा वाष्णीय- यह कहना ज़रा मुश्किल है। मैं अपने भाव या विचारों को किसी विधा में सोच कर नहीं लिखती। वे बस मन से निकलते हैं और स्वयं ही अपनी विधा तय कर लेते हैं कि उन्हें कविता में ढलना है या कथा में। हाँ यह अवश्य है कि विधा कोई भी हो संवेदना प्रमुख होती है। कविता में शब्दों की मितव्ययिता महत्वपूर्ण होती है। वहाँ कई बार कहा हुआ उतना महत्वपूर्ण नहीं होता, जितना अनकहा। कहानी या उपन्यास में पात्रों को जीने, बदलने, ग़लती करने और अपने निर्णयों के परिणाम भुगतने का अवसर मिलता है।

यह तय करना मेरे लिए कठिन है कि मैं किसके अधिक करीब दोनों मेरी अभिव्यक्ति के अलग-अलग स्वभाव हैं।

आकाश माथुर- मुझे ऐसी जानकारी है कि आपने ब्लॉग के ज़रिए आपने बहुत पहले डिजिटल माध्यम से पाठकों से जुड़ाव बनाया था। आज सोशल मीडिया और त्वरित सामग्री के दौर में गंभीर साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए आप डिजिटल मंचों को कितना प्रभावी या चिंताजनक मानती हैं?

शिखा वाष्णीय- यह सही है। डिजिटल माध्यम यानी ब्लॉग मेरे स्वभाव के सबसे निकट का माध्यम है। जहाँ लेखक और पाठक के बीच संवाद के लिए हमेशा किसी बड़े प्रकाशन संस्थान या औपचारिक मंच की आवश्यकता नहीं होती। एक लेखक अपनी बात सीधे पाठकों तक पहुँचा सकता है।

डिजिटल माध्यमों ने हिन्दी साहित्य के लिए संभावनाओं के नए रास्ते खोले हैं। आज कोई लेखक दुनिया के किसी भी हिस्से में बैठकर अपनी रचना पाठकों तक पहुँचा सकता है। नए लेखकों, स्वतंत्र प्रकाशनों और उन पाठकों के लिए भी जगह बनी है जो पारंपरिक साहित्यिक मंचों तक आसानी से नहीं पहुँच पाते थे।

लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है। सोशल मीडिया पर हर चीज़ इतनी तेज़ी से सामने आती है कि लोगों के पास किसी रचना को ध्यान से पढ़ने और उस पर सोचने का समय कम होता जा रहा है। कई बार रचना की गुणवत्ता से ज्यादा उसकी लोकप्रियता को महत्व दिया जाता है।

मैं डिजिटल माध्यम को न साहित्य का दुश्मन मानती हूँ, न हर समस्या का समाधान। यह सिर्फ़ एक माध्यम है। इसका महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि हम इसका इस्तेमाल कैसे करते हैं।

गंभीर साहित्य को डिजिटल मंचों पर ज़रूर जगह मिलनी चाहिए, लेकिन उसे सिर्फ़ प्रचार तक सीमित नहीं करना चाहिए। आखिरकार, किसी रचना की असली पहचान पाठकों के साथ उसके गहरे और लंबे समय तक बने रहने वाले संबंध से होती है।

आकाश माथुर- ब्रिटेन में रहे जा रहे प्रवासी हिन्दी साहित्य का भविष्य आपको कैसा दिखाई देता है? क्या यह साहित्य अब सिर्फ़ पुरानी स्मृतियों और 'नॉस्टेलजिया' के दायरे से बाहर निकलकर स्थानीय यथार्थ और मुख्यधारा से जुड़ पा रहा है? क्या नई पीढ़ी इससे जुड़ रही है?

शिखा वाष्णीय- नॉस्टेलजिया यानी पुरानी यादें। क्या स्मृतियाँ सिर्फ़ प्रवासियों के जीवन में होती हैं? ऐसा नहीं है। हर व्यक्ति अपनी स्मृतियों से जुड़ा रहता है और साहित्य में भी वे किसी न किसी रूप में आती हैं।

लेकिन आज प्रवासी जीवन सिर्फ़ अतीत की यादों तक सीमित नहीं है। इसमें नई पीढ़ी की पहचान, भाषा, नस्लीय अनुभव, अकेलापन, पारिवारिक रिश्ते और दो संस्कृतियों के बीच जीने के अनुभव भी शामिल हैं। आज का ब्रिटेन का हिन्दी साहित्य नॉस्टेलजिया से आगे बढ़कर इन वास्तविकताओं को भी सामने ला रहा है। इसे गंभीरता से समझने की ज़रूरत है।

नई पीढ़ी भी हिन्दी से जुड़ रही है। साहित्य, रेडियो, सोशल मीडिया और सांस्कृतिक कार्यक्रम इसमें भूमिका निभा रहे हैं, लेकिन इतना काफ़ी नहीं है। हिन्दी को

सिर्फ़ विरासत की भाषा नहीं, बल्कि ज्ञान और अभिव्यक्ति की जीवंत भाषा के रूप में प्रस्तुत करना होगा। कहानियों, कविता, संगीत, सिनेमा और डिजिटल माध्यमों के ज़रिए नई पीढ़ी को हिन्दी से जोड़ना सबसे प्रभावी रास्ता हो सकता है।

आकाश माथुर- निरंतर इस बात की वकालत की जाती रही है कि हिन्दी को सिर्फ़ भावनाओं की नहीं, बल्कि 'रोज़गार और आजीविका' की भाषा बनना चाहिए। इसे ज़मीनी हकीकत में बदलने के लिए वैश्विक और नीतिगत स्तर पर क्या ठोस क़दम उठाने की ज़रूरत है?

शिखा वाष्णीय- जी, ये बात न जाने कब से हो रही है परन्तु इसके लिए सिर्फ़ सम्मलेन और कागजी प्रस्ताव भर होकर रह जाते हैं। हम बात भावनाओं की करते हैं पर क्या हम वाकई अपनी भाषा के प्रति संवेदनशील हैं? उससे प्रेम करते हैं? धीरे-धीरे हर संस्थान से हिन्दी हट रही है। क्यों? वैश्विक स्तर पर हिन्दी के लिए अनुवाद, अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन, सांस्कृतिक- साहित्यिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों और डिजिटल तकनीक के साथ सहयोग बढ़ाना आवश्यक है। हिन्दी की सामग्री को अन्य भाषाओं में और दूसरी भाषाओं की श्रेष्ठ सामग्री को हिन्दी में लाने के लिए दीर्घकालिक योजनाएँ बनाई जानी चाहिए।

परन्तु हिन्दी रोज़गार और आजीविका की भाषा तब बनेगी जब हम गर्व से उसे अपनी जीविका में अपनाएँगे। जब हम अपने जीवन में अपनी भाषा को महत्व देंगे तो बाकि सब भी स्वतः हो जाएगा।

आकाश माथुर- अंतरराष्ट्रीय बुकर जैसे वैश्विक मंचों पर हिन्दी की उपस्थिति को आप किस तरह देखती हैं। क्या यह केवल एक सुखद अपवाद है या विश्व साहित्य के कैनवास पर हिन्दी अपनी स्थाई जगह बना रही है? इस दिशा में अनुवादकों और प्रकाशकों से क्या अपेक्षाएँ हैं?

शिखा वाष्णीय- अंतरराष्ट्रीय बुकर जैसे मंचों पर भारतीय भाषाओं की रचनाओं को पहचान मिलना ख़ुशी की बात है। लेकिन मेरे

लिए पुरस्कार से ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि अनुवाद के जरिए हमारी रचनाएँ दूसरी भाषाओं के पाठकों तक पहुँचें।

जब हिन्दी या किसी भारतीय भाषा की किताब का अंग्रेजी में अनुवाद होता है, तो उसके साथ हमारी संस्कृति, समाज, संवेदनाएँ और समस्याएँ भी दुनिया तक पहुँचती हैं।

लेकिन एक किताब की सफलता से यह नहीं मान लेना चाहिए कि हिन्दी को विश्व साहित्य में जगह मिल गई है। इसके लिए लगातार अनुवाद, प्रकाशन और पाठकों तक किताबें पहुँचाने की ज़रूरत है। इसमें अनुवादक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वह सिर्फ शब्दों का अनुवाद नहीं करता, बल्कि भाषा की भावनाओं और सांस्कृतिक अर्थों को भी दूसरी भाषा में पहुँचाता है।

प्रकाशकों को भी भारतीय भाषाओं की किताबें सिर्फ पुरस्कार की संभावना देखकर नहीं, बल्कि उनकी गुणवत्ता और विविधता को ध्यान में रखकर चुननी चाहिए।

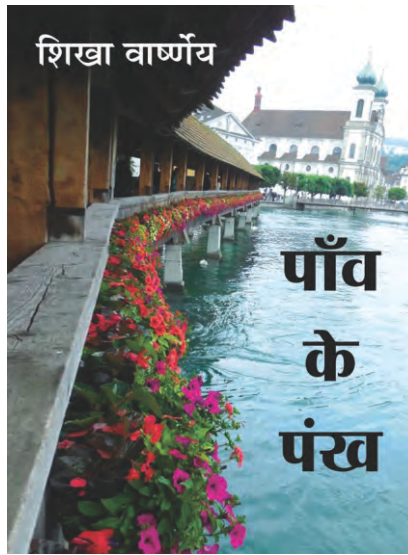
मेरी इच्छा है कि हिन्दी का विश्व साहित्य तक पहुँचना कोई अपवाद न रहे, बल्कि एक निरंतर प्रक्रिया बने, जिसमें अलग-अलग विधाओं और विचारों को जगह मिले।

आकाश माथुर- आपको कई पुरस्कार मिले हैं। प्रतिष्ठित पुरस्कार जब एक रचनाकार को मिलते हैं, तो क्या वे केवल प्रेरणा देते हैं या सामाजिक व वैचारिक उत्तरदायित्व का बोझ भी बढ़ाते हैं?

शिखा वाष्ण्य- पुरस्कार मिलने पर खुशी होती है। जब किसी रचना को पढ़ा जाता है, उस पर चर्चा होती है और कोई संस्था उसे महत्व देती है, तो यह लेखक के लिए सुखद अनुभव होता है। मेरे लिए भी पुरस्कारों ने नए पाठकों तक पहुँचने का रास्ता खोला है।

लेकिन मैं पुरस्कारों को मंजिल नहीं, बल्कि लेखन की यात्रा का एक पड़ाव मानती हूँ। पहचान मिलने से लेखक की बात ज्यादा लोगों तक पहुँचती है और उसके विचारों का असर भी बढ़ सकता है। इसके साथ ज़िम्मेदारी का एहसास होना स्वाभाविक है।

मेरे लिए सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी अपनी



रचना के प्रति ईमानदार रहना है। पुरस्कार पाने या किसी को खुश करने के लिए अपनी लेखन की स्वतंत्रता से समझौता नहीं करना चाहिए।

सम्मान से उत्साह मिलता है, लेकिन लेखन की असली परीक्षा अगली रचना होती है। आखिरकार, पाठक ही तय करते हैं कि कोई किताब उनके जीवन और विचारों में कितनी जगह बना पाती है।

आकाश माथुर- आज के दौर में जो युवा पत्रकारिता या रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में क्रदम रख रहे हैं, उन्हें एक अनुभवी पत्रकार और स्थापित लेखिका के रूप में आप क्या सलाह देना चाहेंगी?

शिखा वाष्ण्य- यही कि, सबसे पहले अपने आसपास की दुनिया को ध्यान से देखना सीखिए। लिखने के लिए हमेशा किसी बड़ी घटना की ज़रूरत नहीं होती। कई बार साधारण-सी बात को अलग नज़रिए से देखना ही अच्छी रचना की शुरुआत बन जाता है।

पत्रकारिता में तथ्यों की जाँच करना, साफ भाषा में लिखना और सवाल पूछना बहुत ज़रूरी है। सबसे पहले खबर देने की होड़ में उसकी सच्चाई से समझौता नहीं करना चाहिए। आपकी विश्वसनीयता ही आपकी सबसे बड़ी ताकत है।

लेखन के लिए पढ़ना भी बहुत ज़रूरी है। अलग-अलग समय के लेखकों और दूसरी भाषाओं का साहित्य पढ़िए। इससे सोचने और अपनी बात कहने की क्षमता बढ़ती है।

पर सबसे ज़रूरी है नीयत। यह समझना

ज़रूरी है कि आप वास्तव में किस बात को लेकर बेचैन हैं और क्यों लिखना चाहते हैं।

मेरे लिए लेखन का अर्थ केवल अच्छा लिखना नहीं, ईमानदारी से देखना, समझना और फिर अपनी बात, अपने तरीके से कहना है।

आकाश माथुर- आप पत्रकारिता से जुड़ी हैं, ऐसा माना जा रहा है कि अखबार से भाषा को नुकसान हो रहा है।

शिखा वाष्ण्य- आज कई बार जल्दबाजी में लिखी गई सामग्री, अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, गलत अनुवाद और भाषाई असावधानी देखने को मिलती है। मुझे इससे तकलीफ़ होती है। अखबार की भाषा साहित्यिक हो यह आवश्यक नहीं परन्तु उसकी सहज शुद्धता आवश्यक है।

अखबार केवल सूचना देने का माध्यम नहीं है, वह भाषा के विकास और उसके सार्वजनिक स्वरूप को भी प्रभावित करता है। इसलिए संपादकों और पत्रकारों को भाषा के प्रति सजग रहना चाहिए। अच्छी पत्रकारिता की भाषा वह है जो पाठक को समझ में आए, उसे भ्रमित न करें और उसके विचार को अधिक स्पष्ट बनाएँ।

आकाश माथुर- आपके समकालीन लेखकों की कौन सी ऐसी कहानियाँ जो आपको हमेशा याद रहती हैं।

शिखा वाष्ण्य- मुझे ऐसी कहानियाँ आकर्षित करती हैं जो जीवन को किसी एक निष्कर्ष में बंद नहीं कर देतीं, बल्कि पाठक के भीतर कुछ प्रश्न छोड़ जाती हैं। जिन कहानियों को पढ़ने के बाद हम अपने आसपास के लोगों को थोड़ा अलग ढंग से देखने लगें, वे मेरे लिए विशेष महत्व रखती हैं।

बहुत सी कहानियाँ हैं सबके नाम अभी याद नहीं आ रहे। सूर्यबाला की कौन "देस को वासी", मनीषा कुलश्रेष्ठ की "कठपुतलियाँ", पंकज सुबीर "मौसम बेचने वाला"। गीताश्री की एक पुस्तक थी जिसमें कृष्ण की बेटी की कहानी थी, वह मुझे बहुत पसंद आई थी। ममता कालिया की भी कुछ कहानियाँ हैं। तेजेंद्र शर्मा की "क्रब्र का मुनाफ़ा", दिव्या माथुर की कहानी "2050" और भी बहुत हैं।

मुझे कहानियाँ याद रहती हैं उनके नाम भूल जाती हूँ। हाँ एक कहानी है जो मैंने बचपन में पढ़ी और आज तक नहीं भूली "ईदगाह" यह मुझे जुबानी याद है। रचनाओं का विस्तृत फ़लक मुझे आकर्षित करता है। हाल फिलहाल में पढ़ा हुआ दिव्या माथुर का उपन्यास "तिलिस्म" मुझे पसंद आया। उषा प्रियंवदा की रचनाएँ मुझे पसंद हैं। पद्मेश गुप्त की कविताएँ मुझे प्रभावी लगती हैं। और भी कई लेखक हैं। ज्यादातर काफी अच्छा लिखते हैं।

आकाश माथुर- आलोचनाओं को लेकर भी अब बदलाव देखने को मिले हैं। अब आलोचक की जगह समीक्षक हैं जो सिर्फ़ वाहवाही ही करते हैं इससे साहित्य को कितना नुकसान हो रहा है।

शिखा वाण्य- समीक्षा और आलोचना के बीच कोई ज़रूरी विरोध नहीं है। एक अच्छी समीक्षा भी गहरी आलोचनात्मक दृष्टि रख सकती है। समस्या तब होती है जब समीक्षा का उद्देश्य पुस्तक पर विचार करना न होकर लेखक को प्रसन्न करना, संबंध निभाना या किसी समूह के भीतर अपनी जगह बनाए रखना हो जाता है।

हालाँकि मैं यह भी मानती हूँ कि आलोचना के नाम पर किसी लेखक को खारिज कर देना या व्यक्तिगत टिप्पणियाँ करना भी साहित्यिक आलोचना नहीं है। आलोचना के लिए अध्ययन, तर्क, संवेदनशीलता और निष्पक्षता आवश्यक हैं। साहित्य को प्रशंसा से प्रोत्साहन मिलता है, लेकिन उसे आगे बढ़ाने में ईमानदार आलोचना की भी उतनी ही भूमिका है।

आकाश माथुर- भारत में अखबारों में साहित्य का स्थान कम होता जा रहा है। क्या अखबार के पाठक साहित्य ज्यादा पसंद नहीं करते या बाज़ारवाद के कारण जगह कम हुई है। क्या दूसरे देशों में भी यही स्थिति है।

शिखा वाण्य- मुझे लगता है कि इसका उत्तर केवल यह कहकर नहीं दिया जा सकता कि पाठक अब साहित्य नहीं पढ़ना चाहते। पाठकों की रुचि बदलती है, पढ़ने के माध्यम बदलते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि

साहित्य की आवश्यकता समाप्त हो गई है।

अखबारों पर विज्ञापन, खर्च और डिजिटल माध्यमों से बढ़ती प्रतिस्पर्धा का दबाव है। ऐसे में साहित्य, कला और विचारों के लिए जगह कम करना व्यावसायिक फ़ैसला हो सकता है। लेकिन इसके दूरगामी सांस्कृतिक नुकसान पर भी ध्यान देना ज़रूरी है।

दूसरे देशों में भी प्रिंट मीडिया ऐसी ही चुनौतियों का सामना कर रहा है, हालाँकि हर देश की स्थिति अलग है। इसलिए अलग-अलग देशों के आँकड़ों और उदाहरणों को देखे बिना कोई एक निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा।

आकाश माथुर- अपनी आगामी योजना या जिस विषय पर आप काम कर रहे हैं, उसके बारे में पाठकों को कुछ बताना चाहेंगे।

शिखा वाण्य- मैं योजना बनाकर कम ही लिखती हूँ। फिर भी एक और उपन्यास पर काम चल रहा है। उसके शोध के लिए कुछ व्यवस्थाएँ करना चाहती हूँ। कुछ अलग तरह से, अलग जगहों की यात्राएँ भी करना चाहती हूँ। देखते हैं।

मेरे लिए लेखन दुनिया को समझने की एक प्रक्रिया है। मैंने अलग-अलग देशों में रहते हुए यह महसूस किया है कि हमारी भाषाएँ, संस्कृतियाँ और जीवन-पद्धतियाँ भले अलग हों, लेकिन मनुष्य के भीतर कुछ प्रश्न लगभग सार्वभौमिक होते हैं, अपनेपन के प्रश्न, स्वतंत्रता के प्रश्न, प्रेम के प्रश्न और अपनी पहचान को समझने की इच्छा। शायद इसीलिए मेरी रुचि केवल यह दर्ज करने में नहीं रही कि दुनिया में क्या अलग है, बल्कि यह जानने, बताने में भी रही है कि उस अंतर के बावजूद हम एक-दूसरे से किस तरह जुड़ते हैं।

आकाश माथुर- बहुत धन्यवाद शिखा जी इस बातचीत के लिए। आपकी आने वाली रचनाओं का इंतज़ार रहेगा। अभी जिस उपन्यास पर आप काम कर रही हैं, उसके लिए अग्रिम शुभकामनाएँ, उसे भी 'अस्मि' की तरह पाठकों का प्यार मिले।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़ कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अतः कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

चिरोयली

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा



डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

प्रभारी- हिन्दी विभाग, के.एम.अग्रवाल
महाविद्यालय, कल्याण पश्चिम – 421301
मोबाइल- 8090100900
ईमेल- manishmuntazir@gmail.com

मैं ताशकंद, उज़्बेकिस्तान में फ़रवरी के पहले सप्ताह में पहुँचा था, ताशकंद स्टेड यूनिवर्सिटी के विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में। मुझे यहाँ लगभग डेढ़ साल का समय बिताना था। ताशकंद मेरे लिए एक नई किताब जैसा था, जिसके पृष्ठों को मुझे इन डेढ़ सालों में धीरे-धीरे पलटने थे। मुझे बताया गया था कि ड्राइवर शाहरुख मुझे एयरपोर्ट पर मिलेंगे और उन्हें अंग्रेज़ी बोलने आती है। अपना सामान लेकर जैसे ही मैं एयरपोर्ट से बाहर निकला ठंडी हवा के तेज़ झोंकों से मेरी रूह काँप गई। अभी ओवर कोट पहन ही रहा था कि एक लंबे चौड़े व्यक्ति ने मुझसे पूछा, "प्रोफ़ेसर मनीष फ़ॉर्म इंडिया?"

मैंने हाँ में सिर हिलाते हुए कहा, "यस, बट हाऊ यू हैव रिकॉग्नाइज्ड मी?"

उसने मुस्कराते हुए कहा, "मिस्टर सितेश कुमार हैज़ गिवेन मी योर फ़ोटो। कैन वी गो?" इतना कहकर उन्होंने समान की ट्राली पकड़ ली और मुझे अपने पीछे आने का इशारा किया। मैं पहली बार किसी अजनबी देश की मिट्टी पर उतरा था। क्रदमों के नीचे की बर्फ़ चरमरा रही थी, जैसे कोई अनकही भाषा स्वागत कर रही हो। शाहरुख ने सामान कार में रखा और हम मेरे नए आशियाने की तरफ़ निकल पड़े। बाहर हल्की बर्फ़ गिर रही थी, नर्म रूई की फ़ाहों की तरह। कार धीरे-धीरे मेरे नए आशियाने यक्का चिनार, मीराबाद की ओर बढ़ रही थी। वह पूरा शहर जैसे बर्फ़ की चादर में लिपटा हुआ था। दूर-दूर तक सफ़ेद परतें, जैसे किसी ने धरती को नए सिरे से रंग दिया हो। ताशकंद की वह ढलती हुई साँझ चुपचाप बर्फ़ में लिपटी थी। मैं, उसकी बाँहों में एक नए सफ़र की शुरुआत करने जा रहा था।

अभी कोई पाँच, साढ़े पाँच ही बजे थे पर शहर जैसे सोया हुआ था। सड़कें शांत थीं, पर मुझे महसूस हो रहा था कि यह नींद अस्थायी है। यह शहर सुबह होते ही अपना सुख़ चेहरा दिखाएगा, और मैं उसकी आँखों में झाँक सकूँगा। एयरपोर्ट से यक्का सराय की दूरी मुश्किल से 20 मिनट की रही होगी। अली शेर नवाई पार्क की परिक्रमा कर के हम अपने गंतव्य पर पहुँचते हैं और शाहरुख कार रोक देता है। वह इमारत, जहाँ मुझे ठहरना था, वह नौ मंजिला इमारत अब मेरे सामने थी। चारों ओर बर्फ़ की चादर, और बीच में पीली रोशनी से जगमगाता लोहे का मुख्य दरवाज़ा। दरवाज़ा नंबर कोड से शाहरुख ने खोला और हम लिफ्ट से नौवीं मंजिल के 65 नंबर फ़्लैट के सामने आ गए। फ़्लैट का दरवाज़ा खोलकर शाहरुख ने सामान एक तरफ़ रखा और मुझे फ़्लैट दिखाते लगा। पानी कैसे आएगा, गैस कैसे चालू होगी, दरवाज़ा बंद कैसे होगा, रूम हीटिंग, मुख्य दरवाज़े का कोड, वाईफ़ाई कोड इत्यादि। मैंने सब कुछ ध्यान से सुना। एक-एक बात मानों जीवन की डोर से बँधी हुई थी। नए देश में रहना केवल भाषा और लोगों से परिचित होना नहीं होता, बल्कि हर छोटे यंत्र, हर साधन, हर कोड को समझना भी ज़रूरी हो जाता है। यही वे सूत्र होते हैं जो किसी अनजान घर को 'अपना' बनाने की ओर पहला कदम होते हैं। अपार्टमेंट के नीचे ही 'फ़िश लैंड' और 'जाहिद कबाब' नाम के दो होटल थे। 'स्मार्ट सेंटर' नाम की एक बड़ी दुकान भी जहाँ सब्ज़ियाँ, फल, दूध और किराने का लगभग सब सामान मिल जाता था। मेडिकल स्टोर, कॉस्मेटिक, चौबीस घंटे खुली रहनेवाली दो वाइन शॉप, हॉस्पिटल और अली शेर नवाई पार्क भी पास ही था। नया आशियाना मुझे पसंद आया। मुझे ज़रूरी सारी बातें नोट करा और मोबाइल के लिए यूसेल नामक कंपनी का नया उज़्बेकी सिमकार्ड देकर, शाहरुख रुखसत हुए।

शाहरुख के जाने के बाद उस फ़्लैट में एक गहरी चुप्पी फैल गई। फ़्लैट मानों अचानक अपनी साँस रोककर खामोश हो गया हो। मैं अकेला था, बर्फ़ के शहर में, एक नए घर में, अनजान दीवारों के बीच। उस चुप्पी और उस घर को अब मेरी स्मृतियों का हिस्सा बनना था। बाहर बर्फ़ अब भी गिर रही थी, पर भीतर का कमरा धीरे-धीरे गर्म हो रहा था। सेंट्रल हीटिंग की बहुत हल्की-सी गुनगुनाहट मुझे यह एहसास दिला रही थी कि अब मैं सुरक्षित हूँ। तभी याद आया कि रात के खाने का क्या? शाम के सवा छह ही तो हुए थे फिर बाहर ही तो होटल था, पर भीतर एक झिझक थी। क्या अभी बाहर जाना चाहिए? क्या मैं राह भटक जाऊँगा? भाषा न समझ

पाने पर क्या होगा? उज़्बेकी के कुछ शब्द सीखे थे लेकिन क्या उनसे काम बन जाएगा ?

थोड़ा विचार करने के बाद मैंने धीरे से कोट उठाया, दस्ताने चढ़ाए और दरवाजे का कोड दोहराया, ताकि लौटते वक़्त भूल न जाऊँ। पहले ही दिन अधिक रात को बाहर जाने से अभी चले जाना मुझे उचित निर्णय लगा।

'फिश लैंड' होटल पहुँचकर भीतर मैं एक मेज़ पर बैठा, थोड़ी-सी थकान, थोड़ी-सी भूख और अजनबीपन की मिली जुली बेचैनी के साथ। मेनू उज़्बेकी के साथ अंग्रेज़ी में भी उपलब्ध था। उस होटल में एक ग़्रिल सैंडविच और तुर्की चाय से काम बन गया। शाकाहारी लोगों के लिए अधिक कुछ वहाँ था नहीं। वैसे भी परदेश में रहते हुए अपनी आदतों, अपने स्वादों को बार-बार समझौते की आग में झोंकना ही पड़ता है। लगभग एक लाख सोम का बिल चुका मैं वहाँ से चलता बना। खाने का इतना बड़ा बिल चुकाकर हँसी आ रही थी। वहाँ एक भारतीय रुपया लगभग डेढ़ सौ उज़्बेकी सोम के बराबर था। वहाँ पैसे का भारतीय मुद्रा में हिसाब का मेरा फार्मूला था कि आप सोम में जितना भुगतान करें उसमें से दो शून्य पहले निकाल दीजिये। जैसे एक लाख सोम में से दो शून्य निकालने के बाद होंगे एक हजार फिर जो बचे उसमें से भी तीस प्रतिशत कम कर दीजिये। अब जो राशि हुई वह लगभग वह भारतीय रुपये के बराबर होगी। इस हिसाब से मैंने लगभग सात सौ रुपये खर्च किए थे।

वहाँ से अपार्टमेंट वापस आने के लिए अली शेर नवाई पार्क की बाहरी सड़क से आना होता था, जिसके बाईं तरफ़ पुरानी किताबों की दर्जनों दुकानें थीं। वहाँ अधिकांश किताबें उज़्बेकी और रूसी में ही थीं, पर आदतन किताबें देखकर रुक गया। सजी हुई वे किताबें किसी बफ़्रीले बियाबान में खिले फूलों जैसी लगतीं, सुंदर पर समझी न जा सकने वाली। उस समय यह यक़ीन हो गया कि भाषा ज्ञान से अधिक संपर्क की चीज़ है। किसी अक्षर को समझना, उसकी धड़कन को छू लेने जैसा है। फिर वह अक्षर केवल भाषा

नहीं, बल्कि मनुष्य, संस्कृति और स्मृति का भी प्रतीक बन जाता है। अक्षर का धड़कन होना यह बताता है कि भाषा वाक प्रतीकों या निर्जीव चिह्नों की श्रृंखला भर नहीं, बल्कि एक जीवित प्राणी की तरह है, जिसके

भीतर संवेदनाएँ बहती हैं जो हमें अनकही निकटताओं से जोड़ देती हैं। ठंड बढ़ रही थी तो मैं ने भी आगे बढ़ना ठीक समझा। सेंट्रल पैलेस होटल से बाईं तरफ़ मुड़कर मैं सीधे स्मार्ट सेंटर नामक दुकान में दाखिल हुआ। शेल्फ़ पर सजी बोटलों और पैकेटों के बीच मैं ऐसे घूम रहा था, जैसे किसी अनजान भाषा की किताब पढ़ रहा हूँ। सारी चीज़ें उज़्बेकी या रूसी में लिखी थीं। फिर भी दूध, ब्रेड, कुछ फल और पानी का ज़ार लेने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। वैसे भी उज़्बेक संस्कृति में आत्मीय भाव से मिलना, सहायता के लिए तत्पर रहना जैसी बातें सहज थीं। अंततः मैं सारा सामान लेकर फ़्लैट पर वापस आ गया, बिना किसी परेशानी के फ़्लैट पर पहुँच कर लगा जैसे कोई बहुत बड़ी जंग जीत कर लौटा हूँ।

यात्रा की थकान तो थी लेकिन आँखों में नींद नहीं थी। बंद काँच की खिड़की से 'ताशकंद सिटी' की नीली इमारत ऐसे जगमगा रही थी मानों बर्फ़ की इस विशाल निस्तब्धता में वह अकेली साँस ले रही हो। बर्फ़बारी बंद हो चुकी थी लेकिन उसके आगोश में सारा शहर था। किसी तरह का कहीं कोई शोर नहीं, बस बर्फ़ और पसरी हुई शांति चारों तरफ़। उस मौन में फ़्लैट के भीतर चुपचाप लेटे हुए मैं अपने भीतर की धड़कन सुन पा रहा था। शायद उसी धड़कन की लय पर, जाने कब, आँखें धीरे-धीरे बोझिल हुईं और नींद एक अनकहे सपने की तरह उतर आई। सुबह 6 बजे का अलार्म बजा तो नींद खुली। मैं उठकर खिड़की के पास गया और पर्दे को सरकाया। सामने का दृश्य देखकर मन जैसे ठिठक गया। पूरा शहर बर्फ़ से ढका हुआ था। पेड़-पौधे, सड़कें, छतें सब पर सफ़ेद चादर बिछी हुई। धूप अभी पूरी तरह निकली नहीं थी, लेकिन आसमान पर की हल्की गुलाबी और सुनहरी किरणें नीचे बर्फ़ को चमका रही थीं। कमरे के

भीतर तो गर्माहट थी, लेकिन खिड़की खोलते ही ठंडी हवा का एक झोंका अंदर आया और चेहरे को छू गया। उस स्पर्श में ठंडक तो थी, मगर साथ ही एक ताज़गी भी। उस क्षण मुझे खयाल आया कि आखिर ऐसे मौसम में कोई काम पर कैसे जाता होगा ? यह कोई काम पर जाने का मौसम है ? फिर याद आया कि मुझे भी नौ बजे विश्वविद्यालय पहुँचना है जो कि मेरे अपार्टमेंट के करीब ही था, कोई एक या डेढ़ किलोमीटर की दूरी थी। अतः मैं तैयार होकर साढ़े आठ तक अपार्टमेंट के नीचे आ गया।

अपार्टमेंट के मुख्य गेट से बाहर निकलते ही बर्फ़ की ठंडी हवा चेहरे से टकराई, ऐसा लगा कि यह शहर अपने मौन और श्वेत विस्तार से मेरा स्वागत कर रहा है। आज पहला दिन था ऊपर से बर्फ़, इसीलिए पैदल जाने की बजाय यैनडेक्स से कैब बुला ली। यैनडेक्स ताशकंद में वैसी ही सेवा है जैसी भारत में ओला या उबर की है। अभी तीन चार मिनट ही बीते थे कि एक सुंदर सी चमचमाती हुई काले रंग की कार मेरे पास आकर रुकी। मैंने कार का नंबर देख कंफर्म किया कि वह मेरे लिए ही आई थी। मैंने आदतन आगे की ओर बाईं तरफ़ का दरवाज़ा खोला तो दंग रह गया। वह ड्राइवर सीट थी और उस पर सत्ताईस-अट्ठाईस साल की सुंदर संभ्रांत उज़्बेकी लड़की बैठी हुई थी। क्षणभर को लगा कि शायद मैंने किसी की निजी कार का दरवाज़ा खोल दिया है। लेकिन फिर ध्यान आ गया कि उज़्बेकिस्तान में गाड़ियाँ दाईं ओर चलती हैं इसलिए यहाँ ड्राइवर की सीट बाईं तरफ़ होती है। हल्के से झंपते हुए मैंने चुपचाप पीछे वाली सीट का दरवाज़ा खोला और बैठ गया। मुझे देखकर वह उज़्बेकी सुंदरी हल्के से मुस्कराई।

उसकी मुस्कान वैसी थी जैसे बर्फ़ से ढकी शाखों के बीच अचानक धूप का एक टुकड़ा उतर आया हो। उसकी कथई आँखें गहरी और चमकती हुईं। नाक नक्श एकदम तराशे हुए। उसके गालों पर हल्की लाली थी, गोया गुलाब की पंखुड़ियों ने उसे अपना रंग उधार दे दिया हो। वह सुंदर युवती मुझे इस

अजनबी देश की जीवंत प्रतीक सी लगी। संस्कृति और इतिहास की तरह सम्मोहक, और वर्तमान की तरह सहज। अतः इतिहास के खून-खराबे से सीख लेते हुए मैंने भी वर्तमान में सहज रहना ही ठीक समझा। सोच ही नहीं सकता था कि ताशकंद में कैब ड्राइवर ऐसे भी हो सकते हैं। भारत में ओला-उबर वाले ड्राइवर प्रायः 'भैया' या 'चचा' ही मिलते हैं। और यहाँ ताशकंद में सुबह-सुबह ही बर्फ की सफ़ेदी के बीच एक परी जैसी ड्राइवर मिल गई। लगता है, यह शहर मुझे कुछ ज्यादा ही पसंद आएगा। जैसे ही कार चली, मैं सोच ही रहा था कि अब क्या बात करूँ? कुछ कहूँ या बस चुपचाप खिड़की से बाहर देखता रहूँ? लेकिन उसकी आँखों में वह चमक थी कि चुप्पी बोझिल हो जाती। इसके पहले मैं कुछ बोलता उसके ओंठों से शब्द फूट पड़े।

उसने पूछा, "हिंदुस्तान?"

मैंने कहा, "यस, हिंदुस्तान। फ़्रोम मुंबई।" मुंबई का नाम सुनते ही वो बच्चों की तरह चहक गई और बोली, "शाहरुख़ ख़ान, सलमान ख़ान, अमिताभ बच्चन, प्रीती जिंटा!!" उसके मुस्कराते हुए चेहरे पर वह खुशी, वह बचपना देख बहुत अच्छा लगा। लगा जैसे कि उसकी आँखों में बॉलीवुड की रंगीनियाँ चमक रही थीं, और होंठों पर कोई हिन्दी गीत बस सजने ही वाला हो। इतने में उसने "कुछ कुछ होता है" गाना बजाते हुए फिर पूछा, "यू लाइक इट?" मैंने कहा, "यस, थैंक्स।" ज़बाब में उसने रहमत कहा और गाड़ी धीरे-धीरे बढ़ाती रही। मकतब 110 के पास ट्रैफ़िक अधिक था सो गाड़ी वहाँ देर तक रोकनी पड़ी। जीवन में पहली बार ट्रैफ़िक में गाड़ी रुकी रहने पर कोई खिज़्र नहीं बल्कि प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था। जैसे ठहराव भी अपने भीतर कोई संगीत रखता हो। उस समय बाहर बर्फ़ की सफ़ेदी थी, भीतर संवाद की हल्की-सी गरमी। बाहर रुकावट थी, भीतर प्रवाह। यह भी समझ आया कि सारे मौसम बाहर नहीं कुछ हमारे अंदर भी होते हैं। बातचीत के सिलसिले को आगे बढ़ाने के लिए मैंने पूछा, "डू यू नो हिन्दी?" यह सवाल केवल भाषा के ज्ञान का नहीं, बल्कि एक पुल

बनाने का था, मेरे भीतर और उसकी दुनिया के बीच। थोड़ा रुककर उसने ज़बाब दिया, "नो, उज़्बेक एंड रूसी। इंग्लिश लिटिल।" इतना कहकर उसने फिर अपनी वही जादुई मुस्कान बिखेर दी।

"यू उज़्बेकी, रूसी?" उसने मासूमियत से पूछा।

"नो, हिन्दी, इंग्लिश। उज़्बेकी लिटिल।" मैंने उसी की तरह ज़बाब दिया, और हम दोनों ही खिलखिला पड़े। उस हँसी से जैसे दो अलग-अलग धुनें अचानक एक संगति में बदल गईं। हमारी खिलखिलाहट ने उज़्बेक, रूसी, हिन्दी और अंग्रेज़ी की दीवारों को पार कर दिया। दो अनजाने लोग, दो अलग दुनिया, दो अलग संस्कृतियाँ, केवल कुछ शब्दों और मुस्कान के माध्यम से एक दूसरे के अनुभवों के भीतर प्रवेश कर रहे थे। बाहर ट्रैफ़िक और बर्फ़ की ठंडक ने जैसे समय को ठहराकर हर चीज़ को स्थिर कर दिया था। सड़कें ठंडी, शहर सुन्न, और गाड़ियाँ स्थिर थीं। पर गाड़ी के भीतर, इस हँसी के कारण समय बह रहा था, धीमा, मधुर और सुखद प्रवाह की तरह। यह हँसी बाहरी स्थिरता और भीतर की गतिशीलता के बीच एक सेतु का काम कर रही थी। मैं चाहता था कि कुछ और बोलूँ, इतने में कार फिर चल पड़ी। हम सरकारी संग्रहालय के पास पहुँचे तो मैंने अनुमान लगा लिया कि हम यूनिवर्सिटी के पास ही हैं। गूगल लोकेशन से मैंने यह सरकारी संग्रहालय देखा था। अचानक कार नीले रंग की बीलडिंग के सामने रुक गई। हम ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज़ के गेट पर थे। मैंने सोचा काश! यह रास्ता थोड़ा और लंबा होता...क्योंकि उसके साथ की बातें समय की तरह नहीं, किसी गाने की धुन की तरह लग रही थीं, जिसे कोई खत्म करना न चाहे। उसके साथ का हर क्षण धड़कन की एक लय में तब्दील हो चुका था।

इतने में उसने फिर पूछा, "टूरिस्ट?"

मैंने कहा, "नो, उस्ताद। हिन्दी दिल्ली/भाषा उस्ताद।" मेरे इतना बोलते ही उसकी आँखें बड़ी हो गईं। जैसे किसी बंद खिड़की पर अचानक उजाले का पर्दा खींच दिया जाए।

अपनी आँखें नचाते हुए उसने कहा, "ओह! उस्ताद, सुपर। सी यू अगेन। रहमत, नमस्ते।" यह उसका पहला वाक्य था, जिसमें एक से अधिक शब्द थे। मन तो कर रहा था कि उसके साथ कुछ और बातें करूँ, थोड़ा और समय बिताऊँ लेकिन भाषा की समस्या थी और परदेश में पहले ही दिन कोई अनधिकृत पाठ्यक्रम पढ़ाना शुरू करना उस्ताद को सही नहीं लगा।

फ़िर भी चलते चलते मैंने कहा, "थैंक यू। रहमत। योर गुड नेम?" वह चिरपरिचित मुस्कान बिखेरते हुए बोली, "नेम, माय नेम दिलरुह, बाय।" यह नाम मुझे उस रहस्य का प्रतीक सा लगा, जो इंसान को उसकी सीमाओं से परे ले जाकर किसी अनजानी रोशनी तक पहुँचा देता है।

"बाय दिलरुह, यू आर चिरोयली।" मेरे यह कहते ही उसकी मुस्कान उसके कानों तक फैल गई। उसने एक खास अदा से मेरी ओर देखा, जैसे कोई रहस्य अपनी आँखों से कह रही हो, शब्दों से नहीं। उसने कहा, "हुम.. चिरोयली, थैंक यू उस्ताद, रहमत।" और उसकी कार धीरे से आगे बढ़ गई। जैसे कोई सपना धीरे-धीरे आँखों से ओझल हो जाए, पर स्मृतियों के आकाश में हमेशा चमकता रहे। या फिर किसी कविता की अंतिम पंक्ति, जो पढ़ने के बाद भी समाप्त नहीं होती, बल्कि भीतर गूँजती रहती है। उसे हिन्दी नहीं आती थी और मुझे उज़्बेकी, सिवाय कुछ शब्दों के। थोड़ी अंग्रेज़ी, थोड़ी उज़्बेकी के साथ काम चल गया लेकिन उसके चेहरे पर खिली मुस्कान किसी भी भाषा से ज्यादा स्पष्ट थी।

दिलरुह से वह छोटी सी मुलाकात पहली और आखिरी रही। मैं लगभग डेढ़ साल ताशकंद रहा पर वह दुबारा कभी नहीं मिली। लेकिन उसकी मुस्कान अब भी मेरे भीतर कहीं बर्फ़ की तरह जमी है। उसकी आँखों का झील-सा विस्तार हर बार स्मृति में लौट आता है। शायद जीवन की सबसे कीमती मुलाकातें अक्सर अधूरी होती हैं। जीवन की सबसे सुंदर अर्थात् चिरोयली स्मृति के रूप में।

क्रिस्टीना की शादी रोचिका अरुण शर्मा



रोचिका अरुण शर्मा

ए -2 कासाग्रैंड एमेथिस्ट, एलकोट एवेन्यू,
शोलिंगनल्लूर, चेन्नई -600119
मोबाइल- 9597172444
ईमेल- sgatarochika@gmail.com

पड़ोस में रहने आई जैकलीन कुछ ही दिनों में रितिका की सहेली बन गई थी। जैकलीन के पति अक्सर अमेरिका दौरे पर रहते और बेटी तो पहले से ही अमेरिका में मास्टर्स डिग्री कर के नौकरी की तलाश में थी। उसका बेटा रितिका के बेटे से दो वर्ष छोटा था और वह इन दिनों उसी के कैरियर के लिए अत्यंत परेशान थी। दरअसल उसका बेटा इंजिनियरिंग की डिग्री नहीं करना चाहता था और अपने छोटे क्रद के लिए भी परेशान रहता था। दोनों पड़ोसिनें अक्सर घर के दरवाजे के बाहर खड़े हो कर बतिया कर अपना मन हल्का कर लेतीं। एक दिन जैकलीन ने अपना दर्द साझा करते हुए अपने बेटे माइकल की परेशानियाँ उस से साझा कीं। रितिका को समझते देर न लगी; क्योंकि दो वर्ष पूर्व वह स्वयं भी तो अपने बेटे की ऐसी ही परेशानियों से घिरी हुई थी। वह हिन्दी गीत है न, "वो जवानी, जवानी नहीं...जिसकी कोई कहानी नहीं"।

"जब बच्चे युवावस्था पर पहुँचते हैं तब उनके जीवन में कुछ न कुछ तो ऐसा घटित होता ही है, जिसे सँभालने में वे परेशान होते हैं। पढ़ाई संबंधित, गर्ल फ्रेंड से ब्रेक-अप या अपने माता-पिता के व्यवहार से सामंजस्य न बैठ पाए से क्षुब्ध हो कर वे तनाव में रहते हैं। शायद यही तो बदलाव के लक्षण हैं।" रितिका ने जैकलीन को अपने बेटे के बारे में बताते हुए ढाँढस बँधा दिया था। कभी पति, कभी बेटा तो कभी अमेरिका में रह रही बेटी की नित नई परेशानियों से घिरी जैकलीन अपनी हर बात जब तक रितिका के साथ साझा न कर लेती उसका मन नहीं मानता था।

एक शाम जैकलीन ने रितिका को सैर पर चलने के लिए आग्रह किया। दोनों बतियाती हुई साँझ के ढलते सूरज को देखने का आनंद ले रही थीं। जैकलीन अपनी धुन में बोले जा रही थी "मेरी बेटी क्रिस्टीना अब पच्चीस वर्ष की हो गई है, इसलिए मैंने अपने पति से कहा है कि उसके लिए कोई अच्छा लड़का देख कर उसे ब्याह देते हैं। ढूँढ़ कर देखने-दिखाने में भी तो एक वर्ष लग ही जाएगा। समय रहते उसका ब्याह हो जाए तो अच्छा, कल को हम अमेरिका में बस जाएँ तो यहाँ आ कर ब्याह करना मुश्किल पड़ेगा न। लेकिन मेरे पति कह रहे हैं कि एक वर्ष उनके दफ्तर में ज़्यादा काम है, उसके बाद लड़का ढूँढ़ना शुरू करेंगे। और क्रिस्टीना कह रही है कि उसे अपने पापा जैसे लड़के से ब्याह नहीं करना है।"

"मतलब?"

"मतलब यह कि तुम तो जानती ही हो कि मेरे पति कितने ज़िद्दी स्वभाव के हैं, वे पूरे परिवार पर अपना नियंत्रण रखते हैं और स्वयं किसी की एक नहीं सुनते। वैसे तो उन्हें हमारे लिए समय ही नहीं, बस एक गाड़ी और ड्राइवर दे दिया है। बाहर के सारे काम करो, सहेलियों के साथ घूमो-फिरो लेकिन बस उन्हीं के साथ जिन्हें वे जानते हों। बेटा कार में पेट्रोल तो भरवा कर लाए लेकिन कभी अपने दोस्तों के घर जाने के लिए कार का इस्तेमाल न करे। पहले मैं सोचती थी कि सिर्फ मेरे ही साथ उनका स्वभाव ऐसा है लेकिन अब मैं देख रही हूँ कि बेटे के साथ भी उनका व्यवहार नियंत्रण वाला ही है। दोनों बच्चे कहते हैं कि हम अपने दूसरे दोस्तों के घर जाते हैं, वहाँ तो हँसी-खुशी का माहौल रहता है और हमारे घर में हर वक्त मानों सन्नाटा ही पसरा पड़ा रहता है। मुझे स्वयं भी अच्छा नहीं लगता कि जब भी फ़ोन पर बात करूँ तो ये लोग कुछ न कुछ समस्या ही लिए हुए होते हैं और स्वयं का तनाव मुझ पर उड़ेल देते हैं।"

"तो क्या तुम्हारी बेटी ने कोई लड़का पसंद किया हुआ है?"

"पसंद तो नहीं किया हुआ है, लेकिन वह कहती है कि जिस लड़के को आप पसंद करोगे, पहले मैं उस के साथ एक साल घूमना-फिरना करूँगी। उसके बाद यदि मुझे वह लड़का ठीक लगा तो ब्याह करूँगी अन्यथा फिर कोई लड़का देखना। अब तुम ही बताओ कौन भला अपनी बेटी को इस तरह अन्य लड़के के साथ घूमने-फिरने की छूट देगा भला?"

"ठीक ही तो कह रही है वह, आखिर जिस के साथ ज़िंदगी गुज़ारनी है उसे जाँच-परख लेना उचित ही तो है। मैं नहीं समझती कि इस में कुछ बुराई है। वरना तुम स्वयं को और मुझे देख लो, हमारे दोनों के पति साधन-संपन्न हैं। बस कमी है तो व्यवहार की ही न, लेकिन हमारा ज़माना अलग था। उस समय बस लड़का कितना कमाता है यही देखा जाता था। व्यवहार तो विवाह के

उपरान्त ही पता चलता था। फिर बस जो मिला जैसा मिला उससे निभाओ। लेकिन अब तुम्हारी बेटी इतनी पढ़ी-लिखी है, दफ्तर में कई लोगों से रोज मिलती है, बातचीत करती है। उस पर भरोसा रखो और जैसा वह चाहती है उसी के अनुसार उसे तुम्हारी पसंद के लड़के के साथ समय बिताने दो। वह स्वयं अपने भविष्य के बारे में इतनी सजग है यह अच्छी बात है जैकलीन।"

रितिका से बात कर जैकलीन हल्की हो गई थी और मन ही मन उसने तय कर लिया था कि वह अमेरिका में रह रही अपनी चचेरी बहन से कहेगी कि वहाँ कोई लड़का हो तो ढूँढ़ दे और यदि वह उसे पसंद आ गया तो वह उसे क्रिस्टीना से मेलजोल बढ़ाने की छूट दे देगी। जैकलीन की चचेरी बहन से जैसे ही उस ने बात की उस ने झट से अपना क्रीबी रिश्तेदार एक लड़का उसे बता दिया। उस के अनुसार "जॉन एक अच्छा पढ़ा-लिखा, सुलझा हुआ और शौकीन लड़का है। जिस ने अमेरिका में अपना स्टार्ट-अप शुरू किया हुआ है। गिटार बजाना और संगीत उसकी हॉबी हैं। ऐसे लड़के कहाँ मिलते हैं आज कल ? सभी को पसंद आते हैं ऐसे लड़के।"

जैकलीन ने अगले ही दिन रितिका को जॉन के फ़ोटो एवं वीडिओ अपने मोबाइल में दिखा दिये थे। साथ ही उसने बताया कि उसने अपनी चचेरी बहन से कह दिया है कि वह उसे अपनी बेटी क्रिस्टीना से मिलवा दे। दोनों एक-दूसरे को देख-परख लें उसके बाद ही बात आगे बढ़ाएँगे। क्रिस्टीना और जॉन का मेलजोल बढ़ रहा था। वे अक्सर रविवार को चर्च में मिलते और उसके बाद सैर-सपाटा। क्रिस्टीना जॉन के साथ खींचे अपने फ़ोटो जैकलीन को भेजा करती और जैकलीन खुशी के साथ रितिका को दिखाती। जब वे दोनों क्रिस्टीना और जॉन को एक साथ अति प्रसन्न देखतीं तो उनके सुखद वैवाहिक जीवन की कामना करतीं। अक्सर जैकलीन और उसके पति के बीच खटपट चलती रहती जिस का जिक्र वह रितिका से जरूर करती। रितिका भी उसके दुःख को बख़ूबी समझती थी; क्योंकि जब उसके स्वयं के बेटे ने डिग्री के समय

पढ़ाई से मुँह फेर लिया था तो वह समझ नहीं पाई थी कि हाई स्कूल के समय टॉप करने वाला बच्चा पढ़ाई से विमुख कैसे हो सकता है भला ? इसी फ़िक्र में जब उसे पैनिंग अटैक्स आए तो उसे मनोचिकित्सक से थैरेपी लेनी पड़ी थी। तभी उसे समझ आया था कि जब पति-पत्नी में आपस में लड़ाई-झगड़ा और चीखना-चिल्लाना होता है, तो बच्चे डरे-सहमे हुए और अक्सर तनाव में रहते हैं। ऐसे में जब वे युवावस्था में आते हैं और घर से छुटकारा पाते ही जब वे बाहर की दुनिया देखते हैं तब वे स्वयं से दूर हो जाते हैं और पिंजरे से छूटे हुए क़ैदी के समान यहाँ-वहाँ मौज उड़ाते हैं। वे समझ ही नहीं पाते कि वे अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हैं। शायद यही कारण था कि उसका बेटा पढ़ाई में पिछड़ गया था। लेकिन जब रितिका के पति को यह बात समझ में आई तब से उन्होंने अपने व्यवहार को नियंत्रित कर लिया था। वरना उसकी स्वयं की भी तो उसके पति से खटपट चलती ही रहती थी।

"जैकलीन, बच्चे जब अपना परिवार बसाने की शुरुआत करते हैं तब कितने खुश और पवित्र हृदय वाले होते हैं, हम भी तो ऐसे ही खुश हुए थे। लेकिन फिर समाज का दबाव, खर्चों की फ़िक्र एवं अन्य ज़िम्मेदारियाँ उस प्रसन्नता में रोड़ा बन जाती हैं। कुछ बोझ हम आसानी से सह लेते हैं और कुछ नहीं, बस वहाँ से रिश्तों में कड़वाहट शुरू हो जाती है। जैसे तुम बताती हो अपने पति के बारे में, मुझे ऐसा महसूस होता है कि उन्हें तुम जब कोई सलाह देती हो तो वे चिढ़ जाते हैं, यही हाल मेरा भी है।

मैं अपने पति को किसी बात पर प्रश्न करूँ तो वे चीख कर पड़ते हैं। बस यहीं से हम दोनों के बीच दूरी बढ़ती गई। मैं सोचती थी कि वे किसी के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करते सिर्फ मेरे साथ ही उनका व्यवहार ऐसा है तो शायद कभी मेरे अन्दर ही है। मैं उनसे हुए हर एक वार्तालाप को मन ही मन बार-बार दोहराया करती थी ताकि अपनी ग़लती ढूँढ़ सकूँ। इतनी बार कि वह बात मुझे कंठस्थ हो जाती और यदि वह बात मैं किसी और को बताऊँ तो शब्दशः बता सकती हूँ। मेरा

आत्मविश्वास कम हो गया था, लेकिन कहते हैं न "जिसका कोई नहीं उसका तो खुदा है यारों"।"

"मैंने समय काटने के लिए ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया, उसका यह फ़ायदा हुआ कि आमदनी होने लगी, बच्चों से बात करके मन प्रफुल्लित रहने लगा और आत्मविश्वास लौट आया। सबसे बड़ी बात यह कि मैं स्वयं को पुनः खोज पाई और समझ पाई कि दोष मुझ में नहीं, पति के व्यवहार में है। उनका अहंकार, पुरुषत्व एक स्त्री को प्रश्न करने की छूट भला कैसे दे सकता है ? उस के बाद मैं बेफ़िक्र रहने लगी। न तो उनसे अच्छे व्यवहार की उम्मीद रखती और न ही उनके चीखने-चिल्लाने की परवाह करती। एक कान से सुनती और दूसरे से निकाल देती। फिर वे अपने आप ही मुझ से थोड़ा संयत व्यवहार करने लगे। हालाँकि अभी भी कुछ परेशानियाँ तो हैं और कोई भी जब तक स्वयं न चाहे पूरी तरह से सुधर नहीं सकता है। मैं अब न बुरा मानती हूँ और न ही अच्छा लेकिन इस चीखने-चिल्लाने में बच्चों का बहुत नुकसान होता है। हम सोचते हैं कि बच्चे अच्छा नहीं कर रहे लेकिन असलियत में अच्छा हम नहीं कर रहे होते हैं। इसीलिए किसी भी तरह से परिवार में शांति बनाए रखने की कोशिश करती हूँ। बेटे के कैरियर में तो एक बार विघ्न आ ही चुका है और अब बेटी भी तो बड़ी हो गई है, उसके कैरियर का समय है। घर का माहौल ठीक न हो तो बच्चे भला कैसे पढ़ेंगे ? सब कुछ सोच-समझ कर सहन करना पड़ता है, जन्म तो मैंने ही दिया है न बच्चों को, तो उन्हें बड़ा करने की ज़िम्मेदारी भी तो मेरी ही बनती है।"

दोनों पड़ोसियों को सैर के साथ-साथ बात करते-करते करीब एक घंटा बीत गया था। सो वे अपने घरों को लौट आईं लेकिन रात का खाना खाने के बाद यह पारिवारिक बातचीत और सैर करना अब उनकी दिनचर्या का हिस्सा बन चुका था।

एक शाम जैकलीन अत्यंत परेशान थी सो उसने रितिका को रात ग्यारह बजे फ़ोन करके सैर के लिए बुलाया।

"क्या हो गया आज इस समय ?"

"आज घर में बहुत हंगामा हुआ रितिका, मेरे पति ने क्रिस्टीना के लिए एक लड़का देखा है। यह देखो उसका फ़ोटो, बता रहे थे कि वह अच्छा कमा रहा है और इतना सीधा-सादा है कि फ़ोन का भी ज्यादा इस्तेमाल नहीं करता है। अब तुम ही बताओ, आज के ज़माने में ऐसा लड़का कौन होगा जो फ़ोन का इस्तेमाल कम ही करता होगा ? कुछ न कुछ व्यवहारिक कमी होगी उसमें और इस फ़ोटो में तो देखो उसका पेट कितना बड़ा है।" जैकलीन ने उसे पुनः उस लड़के का फ़ोटो दिखाया।

"क्रिस्टीन को पता है इस बारे में ?"

"वही तो जब क्रिस्टीना को उसके पापा ने फ़ोटो भेजा तो उसने उन्हें जॉन के बारे में बता दिया। फिर तो मेरे पति भड़क उठे, मैंने अपनी बेटी की मदद हेतु उन्हें समझाया कि लड़का अच्छा है, हमारी जात का भी है फिर क्या तकलीफ़ है। मेरी चचेरी बहन ने बताया था यह लड़का और क्रिस्टीना भी उसे पसंद करती है।"

इतना सुनने के बाद तो वे और भी भड़क उठे और ख़ूब चीखे-चिल्लाए, "तो तुम भी मिली हुई हो बेटी के साथ ? इसका मतलब यह उन दोनों की आपस में रासलीला है ?"

मैंने कहा, "जैसा आप समझ रहे हैं, वैसा कुछ नहीं... बस मेरी चचेरी बहन ने लड़का बताया तो मैंने क्रिस्टीना से कह दिया कि उसे देख ले। मैं आपको इसके बारे में बताने भी वाली थी लेकिन इसी बीच आप दूसरे लड़के की बात ले कर आ गए तो फिर क्या करती मैं?"

"इसका मतलब मैंने आस्तीन में साँप पाला हुआ है ? तुमने मेरे घर में रह कर बगावत की ?" रितिका वे बाथरूम का दरवाज़ा बंद कर के बैठ गए। मेरी हालत ऐसी हो गई कि मैं दीवारों में अपना सिर भिड़ाने लगी। तभी वे बाथरूम से बाहर आए और मेरा वीडिओ अपनी बेटी को दिखाने लगे।

"लेकिन ऐसा क्यों ?"

"मुझ पर गुस्सा आ रहा था न सो वे दिखाना चाहते थे कि तुम्हारी माँ पागल हो गई

है।"

"हम्म, फिर ?"

"फिर क्या... मैं स्वयं को सँभाल न सकी और ऐसा मन किया कि कहीं जा कर स्वयं को ख़त्म कर लूँ। लेकिन वह भी तो नहीं कर सकती न, मेरा बेटा तो अभी मुझ पर निर्भर है न। कहने को कॉलेज में है लेकिन कभी-कभी वह इतना परेशान हो जाता है कि मुझे रात के समय एक बजे नींद से जगा कर कहता है कि मैं उसके पास बैठूँ। परीक्षा होती हैं तो बहुत परेशान रहता है वह।"

"मतलब एंगज़ायटी होती है उसे... हाँ घर में ऐसा माहौल होगा, बच्चे तो परेशान होंगे ही न।"

"फिर आगे ?"

"आज मैंने अपनी सास को फ़ोन करके बताया कि आपका बेटा यह सब कर रहा है। पहले मेरे साथ बुरा व्यवहार और अब बच्चों के साथ।"

"क्या बोलेंगे वे ?"

"बहुत अच्छी हैं मेरी सास, बोलें, "गॉड को सरेंडर कर दो, स्वयं को और अपने बेटे को भी और तुम शांत रहो, वह सब ठीक करेगा।"

"बहुत धार्मिक महिला हैं तुम्हारी सास शायद !"

"हाँ, मेरे ससुर तो शिप में कैप्टन थे और वे अध्यापिका, लेकिन ससुर अपनी कमाई अपने ऊपर ही खर्च करते थे और मेरी सास अपनी तनख्वाह से घर खर्च चलाती थीं। मेरे पति पहली कक्षा से अपने रिश्तेदारों के भरोसे पले-बढ़े हैं। जब बड़े हुए तो मेरी सास ने ही उनकी पढ़ाई का सारा खर्च उठाया।"

"हम्म, यही तो समस्या है।"

"क्या?"

"तुम्हारे पति को अपनी माँ एवं पिता का वह प्यार नहीं मिला जो एक बच्चे को मिलना चाहिए, इसीलिए वे इतने सख्त स्वभाव के हैं। अब तुम उनकी माँ बनी हुई हो, नसीहतें देती रहती हो, उनका खयाल रखती हो। तो वे तुम्हारे सामने बच्चों-सा व्यवहार करते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि तुम सहन करोगी और कोई तो सहन करने वाला नहीं।" रितिका को

बोलते-बोलते हँसी आ गई थी।

"तो क्या करूँ, वे स्वयं की सेहत का बिलकुल भी खयाल नहीं रखते, रुपया कमाना तो आता है लेकिन अपने परिवार का मन पढ़ना नहीं आता, सो मुझे ही उनका एवं बच्चों का खयाल रखना होगा न।" जैकलीन के स्वर में उदासी थी।

"तुम ठीक कहती हो, हमारा ध्यान उचित खान-पान एवं आदतों पर ही रहता है और उनका रुपयों पर। एक तरह से तो इस प्रकार की जोड़ी बहुत ही सुंदर संयोग होती है। लेकिन यदि दोनों में से एक भी अहंकारी हो और किसी की सुने ही नहीं तो यही जोड़ी विवाह का माधुर्य समाप्त कर सकती है।"

अगले दिन रविवार था, जैकलीन सपरिवार चर्च गई थी। वह अक्सर वहाँ होने वाले मास के बारे में बताया करती। चर्च में फादर परिवार के लिए लाइफ स्किल्स भी बताया करते। जिसका जिक्र वह सैर पर किया करती। रितिका को उसकी कुछ बातें अत्यंत प्रभावित करतीं। क्योंकि दोनों के पति एवं बच्चों की समस्याएँ भी तो एक तरह की ही थीं। सोमवार की शाम जैकलीन के पति एक माह के लिए अमेरिका के लिए रवाना हो गए थे। अब जैकलीन एवं माइकल ही घर में थे उधर रितिका के पति अपने काम के सिलसिले में बीस दिन के लिए दुबई गए थे। दोनों रात को देर तक अपने अपार्टमेंट में सैर किया करतीं। जैकलीन अपने बचपन एवं पिता के बारे में बताया किया करती। उसके अनुसार उसके पिता अत्यंत ही आत्ममुग्ध किस्म के इंसान थे। उन्हें किसी से प्रेम नहीं, उसकी माँ को उन्होंने बहुत ही परेशान किया। इसीलिए उसके बच्चे भी अपने नाना जी को पसंद नहीं करते।

"तुम्हारी और मेरी पारिवारिक पृष्ठभूमि काफी मिलती-जुलती है जैकलीन। मेरे पिता ने कभी लगातार काम करके कमाया नहीं और हमेशा अपने करीबी लोगों से दुर्व्यवहार किया। शायद यही कारण है कि हम अपना परिवार अत्यंत प्यार भरा बनाना चाहते थे। इसके लिए हमने ख़ूब त्याग किया, अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया; लेकिन हमारे

पतियों को अपनी माताओं का प्रेम नहीं मिला। मेरी सास अत्यंत आत्ममुग्ध किस्म की महिला हैं, ससुर तो बहुत ही अच्छे थे लेकिन आर्थिक रूप से कमजोर थे।"

तभी एक दिन जैकलीन ने बताया कि उसके पति अमेरिका में जॉन से मिले एवं उन्हें वह पसंद भी आया है। क्रिस्टीना ने यह खुश-खबरी दी है और उस की खुशी का ठिकाना नहीं था। उसने बताया कि हमारे यहाँ लड़के वालों की तरफ से रिश्ता आता है। इसलिए जॉन ने अपने माता-पिता से कहा है कि वे हमारे घर क्रिस्टीना के लिए रिश्ता ले कर आएँ। जब मेरे पति अमेरिका से लौट कर आएँगे तो जॉन के माता-पिता क्रिस्टीना का हाथ माँगने हमारे यहाँ आएँगे। आज जैकलीन अत्यंत प्रसन्न नज़र आ रही थी। मैं मन ही मन सोच रही थी कि जैकलीन के पति उतने बुरे भी नहीं। मैंने कह ही दिया, "जैकलीन तुम्हारे पति हैं तो बहुत समझदार, देखो कितने तरीके से उन्होंने क्रिस्टीना के रिश्ते को आगे बढ़ाया है। वे स्वयं आगे हो गए ताकि लड़के वालों को लगे कि क्रिस्टीना का पिता उसके साथ है।"

"हाँ, तुमने ठीक समझा यही मेरे पति ने मुझे कहा था कि रिश्ता बड़ों के द्वारा तय किया जाएगा।"

"खैर, अंत भला तो सब भला। चलो अब खुश हो जाओ और क्रिस्टीना की शादी की तैयारियाँ शुरू करो।" रितिका का भी चेहरा खिल उठा था।

शादी के लिए भवन, फ़ोटोग्राफर, खरीददारी आदि सब हो रहा था। बीस दिन शेष थे और क्रिस्टीना भी विवाह हेतु छुट्टी ले कर अपने देश आ गई थी। माँ-बेटी रोज़ ड्राइवर के साथ खरीददारी के लिए निकल पड़तीं। अब विवाह का दिन आ ही गया था। रितिका को पारिवारिक लिहाज से विवाह के सभी कार्यक्रमों में आमंत्रित किया गया था। विवाह के पहले दिन "एंगेजमेंट एवं संगीत" का कार्यक्रम था। लेकिन उसके पति आदतन विवाह में शामिल नहीं होना चाहते थे। वे तो अपना पूरा जीवन सिर्फ अपने व्यापार को बढ़ाने में ही लगे रहे; लेकिन इस बार रितिका ने जुगत लगाई और कहा कि देखो जैकलीन

बहुत जोर दे कर कह रही थी कि तुम्हारे पति को भी विवाह के सभी कार्यक्रमों में आना है। आखिर तुम हमारे परिवार के सदस्य की तरह ही हो; क्योंकि वह जानती थी कि यदि वह उन्हें जोर दे कर कहेगी तो वे मना कर देंगे। इसीलिए उसने जैकलीन के नाम से उन्हें साथ चलने के लिए कहा। नतीजा कि इस बार वे साथ जाने के लिए तैयार हो गए।

क्रिस्टीना हरा-गुलाबी सजीला लहंगा-कुर्ती पहन कर मंच पर आई और जॉन सुनहरी रंग का कुर्ता-पायजामा पहने हुए था। दोनों तरफ़ के फादर मंच पर उनकी सगाई की रस्म करवाने के लिए आए हुए थे। फादर ने कुछ पन्ने क्रिस्टीना के हाथों में दिए और क्रिस्टीना ने पढ़ना आरम्भ किया, "लव इज़ डिवाइन, लव इज़ सैक्रिफाइस...लव होल्ड्स ईच अदर" पति-पत्नी एवं उनके आपसी प्रेम को क्रिस्टीना एवं जॉन ने बहुत ही सुंदर तरीके से परिभाषित कर मंच पर पढ़ा था। रितिका अपने ब्याह के पिछले पच्चीस बरस याद कर रही थी और अपने पति के साथ रिश्ते को प्रेम की इस परिभाषा से तुलना कर रही थी। उसके पति भी उस की बगल में खड़े थे। वह मन ही मन सोच रही थी कि काश ये वैवाहिक प्रेम को समझें। प्रेम सिर्फ शारीरिक भूख या ज़रूरतें पूरी करने का एक साधन मात्र नहीं होता। प्रेम में भरोसा भी अत्यंत आवश्यक है, एक-दूसरे की इच्छा-अनिच्छा का खयाल रखना भी ज़रूरी है। तभी हॉल में तालियों की गूँज से रितिका की तंद्रा टूटी। सामने मंच पर जॉन क्रिस्टीना को

घुटने के बल बैठ कर हीरे की अँगूठी पहना रहा था। अँगूठी पहनते ही क्रिस्टीना जॉन के गले लग गई थी। रितिका की नज़रों के सामने स्वयं के विवाह का दृश्य घूम गया था। जब फ़ोटोग्राफर उसे उसके पति के सीने पर हाथ रख कर फ़ोटो खिंचवाने को कह रहा था और उसे बहुत शर्म आ रही थी।

अंत में संगीत के कार्यक्रम में सभी मंच के सामने डी. जे. द्वारा बजाए गीतों पर झूम उठे थे। क्रिस्टीना अपने पिता को भी वहाँ खींच लाई थी। जैकलीन हमेशा की ही तरह बहुत सचेत नज़र आ रही थी लेकिन देखने में बहुत

सुंदर लग रही थी। क्रिस्टीना अपने पिता के साथ नाचती हुई अत्यंत प्रसन्नचित्त नज़र आ रही थी। रितिका ने जब क्रिस्टीना के पिता को नाचते हुए देखा तो वह भी अपने पति को वहाँ खींच लाई। वे शर्माते हुए तालियाँ बजाने लगे और वापिस सामने लगी कुर्सियों पर जा कर बैठ गए। लेकिन रितिका मन ही मन प्रसन्न थी कि कम से कम इतना तो किया उसके पति ने। अगले दिन चर्च में क्रिस्टीना एवं जॉन का विवाह था। रितिका अपने पति के साथ नियत समय पर पहुँच गई थी। उनके फादर, रिश्तेदार एवं अन्य कुछ परिचित चर्च में मौजूद थे। दोनों ने एक-दूसरे को सुन्दर मालाएँ पहनाई एवं पेपर में से देख कर माइक पर अंग्रेज़ी में एक-एक कर पढ़ने लगे। रितिका को अपने विवाह के सात फेरे याद हो आए थे। हर एक वचन एक-दूसरे का साथ निभाने की बात ही तो करता है और वह उन वचनों को पूरी तरह से निभा भी रही है। हर निर्णय में पत्नी शामिल होगी यह भी तो एक वचन है।

"फिर कहाँ कमी रह गई?" रितिका स्वयं से प्रश्न करने लगी थी। उसके पति ने उसके नाम से अपनी कंपनी खोल रखी है और वे सिर्फ कंपनी के कागज़ों पर उसके हस्ताक्षर लेने के समय उस से बात करते हैं। कंपनी के काम की जानकारी तो उसे देते ही नहीं; जबकि वह उन्हीं के बराबर पढ़ी-लिखी है, न ही वे अन्य किसी निर्णय में उसे शामिल करते हैं। वैसे तो उसके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं, उसकी हर ज़रूरत पूरी करते हैं। लेकिन यदि वह अपने मन से कुछ करना चाहे तो सौ रुकावटें उसके सामने खड़ी कर देते हैं। यदि वह कोई सवाल कर ले...फिर तो मानों कहर बरस पड़ता है। हाँ, यही तो कमी है उसके पति के स्वभाव में...लेकिन क्यों? उसे हर वक़्त यह क्यों महसूस होता है जैसे उसके पति ने उसे अपने जीवन में शामिल ही नहीं किया। यदि वह उनसे बात करना चाहे तो वे झट से दूरी बना लेते हैं। विवाह की रस्में पूरी हुईं और उसके बाद मेहमानों के लिए रात का भोजन।

विवाह से लौटते हुए रास्ते भर रितिका मन ही मन क्रिस्टीना को आशीष दे रही थी। दो

दिन बाद क्रिस्टीना पुनः अपनी माँ के घर थी। उसने रितिका के घर की घंटी बजाई "आंटी आपने उपहार स्वरूप इतनी बड़ी रकम क्यों दी मुझे?"

"ताकि तुम अपनी पसंद का कुछ ले सको, तुम युवा लोग हम से ज्यादा समझदार हो। प्रेम को समझते हो, उसे जीना चाहते हो। मुझे पूरा भरोसा है कि तुम अपना परिवार खुशियों वाला बनाओगी।" रितिका क्रिस्टीना का हाथ अपने हाथ में ले कर मुस्करा रही थी। दफ़्तर जाने के लिए तैयार हुए उसके पति शू-रैक के पास जूते पहन कर खड़े थे। वे भी क्रिस्टीना को देख कर मुस्कराए और दफ़्तर के लिए रवाना हो गए। क्रिस्टीना वापिस अमेरिका चली गई थी। जैकलीन और रितिका हमेशा की तरह शाम के समय सैर के लिए निकल पड़ते। जैकलीन अपने पति से जब-जब आहत होती तो रितिका को बताती और वह उसके घाव पर मरहम रख देती। इस बार जब रितिका के पति कंपनी के कागजात पर दस्तखत करवाने रितिका के पास लाये तो उसने उन्हें गौर से देखा और बोली, "पढ़ कर कल दस्तखत कर दूँगी"।

उसके पति अवाक से देखते रह गए। दस दिन बीत चुके थे वे रोज़ कहते और रितिका वही उत्तर रोज़ देती। वह सोच रही थी कि अब उसके पति का पारा हाई होने वाला है। लेकिन एक शाम जब वे दफ़्तर से लौटे तो बोले "मैडम कंपनी की मालकिन दस्तखत करेगी या नहीं?"

"मालकिन को कंपनी की पूरी जानकारी दोगे या नहीं?"

उसके पति मुस्कराने लगे थे और धीरे से बुदबुदाए, "लव इज सैक्रिफाइस...लव इज ट्रस्ट..."

धीरे-धीरे वे उसे अपने काम के बारे में बताने लगे थे। उनके बदलाव को देख कर रितिका स्वयं को पूर्ण महसूस करने लगी थी। वह नहीं चाहती थी कि उसकी बेटी भी उसी की तरह आश्रित जीवन जीए। वह स्वयं को उसके समक्ष एक सशक्त महिला के रूप में प्रस्तुत करना चाहती थी।

000

लघुकथा



कुँआरी हथेलियाँ पूजा अग्निहोत्री

आज वह अर्थी पर लेटी थी। दोनों हथेलियाँ खाली थीं। छोटी ननद ने जेठानी से कहा, "भाभी, सुहागन को दोनों हाथों में लड्डू देकर विदा करते हैं। घर में नहीं हैं तो किसी से मँगवा लो।"

थोड़ी देर में लड्डू आ गए।

भीड़ में खड़ी एक स्त्री की नज़र उसकी हथेलियों पर ठिठक गई। अनायास उसके मुँह से निकला- "अरे... ये हथेलियाँ तो अब भी कुँआरी हैं। किसी ने इन्हें कभी चूमा तक नहीं।"

उसकी बात किसी ने नहीं सुनी। बस उसकी दोनों हथेलियों पर लड्डू रख दिए गए।

यमदूत ने संकेत किया, पर उसने विनम्रता से कुछ पल और माँग लिए। फिर अपनी ही अर्थी के साथ-साथ चल पड़ी।

चिता सज चुकी थी। उसे लगा, "अब ये हथेलियाँ भी बिना कभी प्रेम का स्पर्श पाए राख हो जाएँगी।"

कपाल-क्रिया के लिए दक्ष आगे बढ़ा। एक क्षण के लिए उसकी नज़र उन हथेलियों पर ठहर गई। उसने धीरे से दोनों हथेलियों से लड्डू हटाए, एक-एक हथेली को अपने होंठों से छुआ और उतनी ही सावधानी से लड्डू फिर वहीं रख दिए।

उसने एक बार अपनी हथेलियों को देखा... फिर यमदूत की ओर मुस्कराकर बढ़ गई।

000

पूजा अग्निहोत्री

द्वारा श्री प्रदीप अग्निहोत्री, रूम नंबर- 1236, उर्जानगर 'सी' ब्लॉक, बिजुरी, अनूपपुर, म.प्र. 484440

मोबाइल- 7987219458

ईमेल- agnihotrypooja71@gmail.com

लौटते हुए मीता दास



मीता दास

63/4 नेहरूनगर पश्चिम, भिलाई नगर,
छत्तीसगढ़। पिन - 490020
मोबाइल- 9329509050
ईमेल- mitad1906@gmail.com

वह बेतहाशा भागमभाग से थका, रुका। उसने लैम्प पोस्ट को थाम रखा था, और बन्द होते पोपटों को शरीर का समूचा जोर लगाकर खोलने की उसकी चेष्टा नाकाम हो गई। हवलदार के बूटों की आवाज़, पकड़ो-पकड़ो का शोर सारे रोम-रोम में आंतक की लहर दौड़ानों में कामयाब रही। प्राण सूख कर हलक में अटका पड़ा था। दो बूँद पानी की याचना किससे करे। हवलदार को देने के लिये उसके हाथ आज कुछ नहीं। नया-नया इस मोहल्ले में आया था तब वह थाने में हाजरी दे आया था। दूदा ने समझा दिया था हवलदार घोष बाबू का डंडा घूम चुका था उसके सारे बदन पर से जोड़-जोड़ हिला कर रख दिया था। वांछित फल भी उभर आए थे। उन्हें ही डंडे से सहला कर घोष ने उसकी ठोड़ी डंडे और वह लगभग चीख उठा था। यह चीख थी शायद खाली जेब की वेदना की या हाथ आए मुर्गे का साफ बच कर निकल जाने की घोष बाबू की। टपकती लार माह के अंत में दीये की लौ को न बढ़ा पाने की कशमकश की पराकाष्ठा बन गई। समूचा शरीर लहुलुहान करके भी मन की भड़ास मन में ही रह गई।

"क्यों बेटा, मुँगेर से खाली हाथ आया हमरा लिये थोरा रोसू-गुल्ला का हाँड़ी भी नहीं बाँधा तेरी माँ ने बिस्तर बन्द के साथ।" हवलदार बोला। चुप एक निरीह सन्नाटा।

"मुँह उठा। सारा लोग कलकत्ता ही आएगा।" बालों को मुट्ठी में भर कर पान चबाते हुए होठों को टेढ़ा कर उसने व्यंग्य कसा। "बाल तो बहुत सुन्दर एक दाम सांजाय दात, फिलिम-सिलिंग में जाता, मोरने को ये बोरू-बाज़ार ही मिला।" घोष बाबू ने दाँत पीसे। जैसे-तैसे उस दिन उधारी में डंडे खाकर घोष बाबू से मोहलत माँग आया था। घोष बाबू ने भी एक भद्दी गाली देकर मुँह टेढ़ा कर चीखते हुए ही कहा था, "जा भाग जा। बद्जात आगली बार छोरेंगा नाई। अरे सुख चेन छोर दे हीरो को पाहली दाफा है आगली बार देखेगा। हामारा भी तो मुनुसोतो है। मरा नाई जा-जा छोर दे।" अचकचा कर उठ बैठा उसे लगा हवलदार अभी घर दबोचेगा। दो दिन के मारा-मारी के बाद भी उसने हाथ घेला भी नहीं आया। रमैया जब गाँव में था, छोटी मोटी चोरियाँ किया करता था। अम्मा रोज़ बस्ता काँधे पे लदवाकर स्कूल भेजती अच्छे से भला-बुरा समझा बुझा कर। वह जानती थी कि रमैया का मन पढ़ने लिखने में नहीं लगता। बिजैया जैसा वह नहीं था। बिजैया जितना ईमानदार, तमीजदार, रमैया उतना ही उज्जड़, गँवार, लंठ। राजी को वह जो उसकी छोटी बहन थी, अपने हिस्से का गुड़ चना न देने पर सोती हुई राजी की चुटिया तक हँसिये से काट ली थी बद्जात ने। कभी-कभी अम्मा भी परेशान हो जाती, सोचती न जाने बद्जात किस पे गया है। फिर उसे लगता उठती उमर है शरारतें कौन नहीं करता, इक न इक दिन यह भी सुधर जाएगा। स्कूल का नाम लेकर निकलता, लाली मौसी का घर जो मोड़ पर पड़ता था, वहाँ तक तो ठीक-ठाक नज़र आता। हाथ हिलाता हुआ चलता, अब चाहे हाथ में किसी की सब्जी की टोकरी आ जाए या गाय की पूँछ या मुरगी के दड़बे का कुंदा। सारा का सारा चौपट, बच गया तो खैर मानो। रोज़ पिटता, अम्मा का डंडा घूमता- ही रहता सिर पर, बदन पर। लेकिन उसे तो यह सब रोटी में नमक-सा स्वाद देता। परीक्षा फल के दो दिन पहले मास्टर जी को धमका आता। पर मास्टर भी क्या करें, कुछ लिखा हो तो नंबर दे न, कोरा सफाचट। उस उस रात मास्टर जी के घर

आँगन में गोबर की इंडिया फूटती तो कभी-कभी गू की भी, मास्टर शिकायत लिये दौड़ा आता सीता अम्मा के दरवाजे। फिर टूटता कहर रमैया पर फिर पूछो मत-रात न जाने कहाँ जा छिपता बागी। बिजैया तो दूर बापू भी न ढूँढ़ पाते।

उस दिन रमैया ने गजब ही ढा दिया था, बापू का सीना सुनकर जो धड़का तो फिर दुबारा उल्टी साँस न ले सका। मरा रमैया अर्थी को भी काँधा देने नहीं आया। सब कानाफूसी में लगे रहे सत्रह बरस का गबरू जवान कोई बच्चा थोड़े हैं जो बापू की अंतिम किरिया पे भी नदारद मुआ। उस बागी को तो जैसे सारे संसार में राज करने का भूत सवार था। गाँव के परधान के घर टी.वी. पर कभी-कभी फिलिम देख लेता। उसे सुनील शेट्टी और संजय दत्त की फिलिम बड़ी पंसद थी। खलनायक देख कर उसने सोच लिया, वह भी एक दिन बड़ा खलनायक बनेगा। कभी-कभी अपने लंबे बालों में हाथ फेर कर खूँटी पे टँगें फूलदार आईने में अपनी शक्ति देखकर मुस्कराता। नई-नई उगती मूँछों पर ताव देकर उपर की ओर जोर-जोर से उमेठता। सोचता उसकी मूँछें संजय दत्त जैसी बढ़ाएगा, साथ में दाढ़ी भी। भगवान् की कृपा से गठा हुआ बदन, गबरू जवान सा लंबा ऊँचा क्रद, चौड़े-चौड़े कंधे, बाल झटक कर जब चलता उसके चले चपाटी उसे संजय दत्त कहते नहीं अघाते। उसका सीना मारे खुशी के ढाई इंच और फूलकर चौड़ा हो जाता और उसी के नशे में झूमता-झामता साथियों-चमचों का हुजूम लिये गाहे-बगाहे नदी के किनारे शिव मंदिर के पास आते-जाते राहगीरों को डरा धमका कर धूल चटा दिया करता था। चमचे उसकी चमचाई में क्रसीदे पढ़ते, वह और भी फूल कर कुप्पा हो जाता। कोई दौड़ कर किसी का दड़बा खोल मुर्गा झटक लाता। छीने पैसों से नून, तेल, मसाला चाँऊँ आ जाता। परबतिया मौसी का घर शिव मंदिर के घर के पास ही था। चोरी से रसोई में घुस कर लोटा थारी, बासन उठा लाते फिर रँधता महामोज शिव मंदिर के अहाते। मुर्गा मुनता और सभी मिल हड्डियाँ चिंचोड़ते।

उस शाम कुछ ऐसा ही हादसा हुआ। शहर से आती जीप को घेर कर रोक लिया। और छह इंच का चाकू दिखा कर ड्राइवर की बगल में बड़े साहब का बटुआ, चेन और घड़ी हथिया ली। थाने से एक हवलदार दौड़ता हुआ गया सीता अम्मा के पास और लगा रमैया की करस्तानी बखानने। सुनकर रामेश्वर की साँस वहीं रुक गई। हवलदार कह कर चला गया- कलेक्टर साहब के साथ थानेदार गुप्ता भी बंदूक ले गए हैं रमैया को ढूँढ़ने, बड़े गुस्से में हैं। रमैया पकड़ा गया तो उसकी जो दुर्दशा होगी राम ही जाने।

उसी दिन रमैया भाग खड़ा हुआ। पास के गाँव तक उसके साथी मनाने आए। चलो घर वापस पर रमैया ने सभी को लौटा दिया। ट्रेन में बैठा सोच रहा था अम्मा के बारे में। अम्मा उसे ढूँढ़ती होगी, अम्मा का मुँहलगा जो ठहरा। एक दफा उसका मन हुआ उतर पड़े, देख आए अम्मा को उसे न पाकर बिलख रही होगी। अनमने भाव से जेब टटोली तो हाथ आई जीप वाले साहब की सोने की चेन, चमचमाती घड़ी और एक बटुआ। बटुए में रुपये थे कुल दो सौ पच्चीस, सोने की चेन गले में डाल ली। घड़ी उसकी कमजोरी थी झट पहन ली और खुशी से सीटी बजाने लगा। ट्रेन रुकी, देखा वर्दवान स्टेशन, दूसरे प्लेटफार्म में मुँगेर की पैसिंजर खड़ी हैं। अनमने भाव से उतर आया और पढ़ बैठा मुँगेर वाली ट्रेन पर जब स्टेशन पर उतरा दोपहर का कोई एक बजा होगा। चिलचिलाती धूप में पैदल चल पड़ा गाँव की ओर। गाँव के रास्ते उसे शमशान पर भीड़ दिखी। अचानक जगत भाई जी के दोनों बेटे नीम के पेड़ के नीचे काँच की रंग-बिरंगी गोलियाँ खेलते दिखे। उसने पास बुलाने के लिये सीटी बजाई। दोनों ने चौक कर दाएँ-बाएँ देखा। रमैया को पहचान कर उसके नजदीक भाग आएँ। "कौन मरा है आज?" रमैया ने चमचमाती घड़ी को चमका कर बालों पर हाथ फेरा। "रामेश्वर दादा" बच्चे एक साथ बोले। "कब" रमैया भौचक्का रह गया। कल ही जब हवलदार तुम्हारा घर मा गए रहेन खोजते खोजते।

"भाग जाओ हो चाचा भाग जाओ, घर

लिये जावोगें, थानेदार संग कलेक्टरवा भी जीप में बैइठ के गए हयेन तुम्हारा खोज मा, भटक रहे जंगल-जंगल, गाँव-गाँव, खेत खलिहान।" रमैया मन मसोसकर रह गया। उलटे पाँव भाग आया। ट्रेन में झपकी लग गई। आँखें खुली तो देखता है टिकिट चेकर, उसे झिंझोड़ रहा है। जेबे टटोली, जेब खाली, नींद के झोंके में कोई हाथ साफ कर गया था। चेकर घड़ी हाथ में पहन कर उसकी चमक देख रहा था, रमैया रुआँसा हो गया। "हावड़ा स्टेशन" पढ़ ही रहा था कि ट्रेन रुकी। वह वहाँ की भीड़ देख कर सहम गया। ट्रेन से वह उतरा ही कब, धकेल कर उतार दिया गया। पूरा प्लेटफार्म धक्के के सहारे ही पार किया। उसे मज्जा आ रहा था। कहाँ वह छोटा सा गाँव, कहाँ यह शहर, मन ही मन सोचा, सोने की चेन बेच कर कलकत्ता जाएगा। एक राहगीर को रोक कर पूछा कलकत्ता कैसे जाएगा।

"अरे बोका एइटाई कोलकता।" हँस पड़ा राहगीर।

"क्या?"

"हाँ याही कोलकता हाय।"

"लेकिन हावड़ा।"

"हो हो हो साभी बोड़ा शहर का बहुत स्टेशन होता हावड़ा भी एक है, एक सियालदाह भी है।" रमैया अचकचा गया। स्टेशन से बाहर आते ही उसने अपने गले पर हाथ फेरा गला सूना था। तब क्या उसकी चेन इस विशाल जन-समुद्र की भेंट चढ़ गई। उसके होश उड़ गए, चेन ही के बल पर तो इतना इतरा रहा था। उसे लगा वह अनाथ हो गया है। उसे लगा उसका बाप कल नहीं आज मरा है।

"बापू" कह कर उसने अपना चेहरा दोनों हाथों से ढक कर सड़क के किनारे बैठ गया। शाम घिर आई थी। सड़क की चकाचौंध, गाड़ियों के शोरगुल में भी वह अपने को अकेला पा रहा था। सोचा, अब कहाँ जाएगा, भूख से अँतड़ियाँ कुलबुलाने लगी। सारा शरीर ठंडा होने लगा, दिल बैठ गया। अचानक शरीर को झटक कर उठा, उसके उठने से उसके लंबे बालों ने भी झटका खाया जिन पर उसे नाज़ था। बौखलाया-सा सड़क पर बहुत

देर तक भागता रहा। फिर थक कर चूर हो सुस्ताने रुका। आसपास नजर दौड़ाई कहीं सन्नाटा नहीं, बस की तेज हार्न, हेड लाइटों की तेज रोशनी, दुकानों की झिलमिल रोशनी और जन-समुद्र के शोर, चिल्लपों से कान के पर्द फटने लगे। पेट की अँतड़ियाँ भूख से एँठने लगी थीं, सोचा सन्नाटा मिले तो किसी को डरा कर कुछ हाथ आए तो पेट पूजा हो। उसने थके पोपटों को मींच लिया, फिर हल्के से पैन्ट की जेब में हाथ फेरा, जहाँ छह इंच का रामपुरी पड़ा था। अचानक एक मोटर उसके करीब आकर रुकी, जोर की आवाज हुई शायद उसने तेज ब्रेक मारा था, ड्राइवर चीखा "मरना है क्या?" उसने देखा सारे लोग पता नहीं कहाँ भागे जा रहे हैं।

रमैया अपना निद्राल शरीर लेकर बढ़ा जा रहा था, वह नहीं जानता था जाना कहाँ है। अचानक थकान के झोंकों के किसी भारी-भरकम शरीर से जा टकराया। उसने पच्च से गाली दे डाली, "साले घोंचूँ मुँह उठाकर चलब तो काहे ल भिड़बे करी, तनिक देखल बा हमरा छतिया ससुरा चरमरा गईल।" रमैया अपनी भाषा सुन जैसे गहन निद्रा से जाग उठा बंद होते पोपटों को फाड़ कर देखा। अब तक वह स्वप्न में चल रहा था। अनजान देश में अनचाही राहों पर एक परी के इशारे से कहीं दूर पहाड़ियों पर अनजान एक इच्छा से वशिभूत एक चरम सुख की कामना में खिंचा चला जा रहा था। भूखा-प्यासा पाँव थक कर चूर, शरीर के अंजर पंजर ढीले, उसने झट उस आदमी के चरण पकड़ लिये- "दद्दा भूखा हूँ, परदेसी हूँ। कच्छु उपकार कर देव" रमैया लगभग रूआँसा हो उठा। जीम लरज गई।

"चल हमार संग, हमरे डेरा माँ तोहरे खातिर हम आज आधा पेट खाएँगे। बूझा कि नहीं न बूझा। कारण आज बड़े दिना माँ हमरा देश का कोई हमसे कुच्छो माँग लिये है।" डेरा क्या था टूटे-फूटे ईंटों, टीन टप्परों से घिरा छह बाई चार की जगह पाँच मंजिले लाल इमारत के नीचे फुटपाथ से लगा एक दरवाजा जो अन्दर से बन्द था। शायद कोई राजमहल हो। ऐसी ही इमारत उसने फिल्मों में कई बार देखी है। शायद यह भी कोई महल हो, जिसमें अब



राजे रजवाड़े तो रहते नहीं, जाने क्या होता हो उनके अंदर उसमें तहकीकात करने की कोई इच्छा शेष नहीं रही थी।

दद्दा ने बताया उसका नाम पीताम्बर है लेकिन सभी डेरे वाले उसे दद्दा कहते हैं। वह पहले फुटपाथ पर सोता था तो कभी प्लेटफार्म पर। लेकिन पुलिस के डंडों से हलकान हो छोटे-मोटे धन्धे कर पाँच हजार पगड़ी देकर यह जगह पकड़ी है। उसे आश्चर्य हुआ इस फुटपाथी टप्पर के पाँच हजार, पर ये पैसे लिये किसने, दद्दा ने बताया उसका नाम दरबारी पठान है, वह इस इलाके का दादा है उसी ने यह जगह भी दी और चेला भी बनाया। दद्दा ने उसे और भी। बहुत सी बातें बताई। इस जगह को स्ट्रेण्ड रोड कहते हैं। ई ये सारी इमारतें अंग्रेजों की बनाई हुई हैं। यहाँ दिन में दफ्तर चलता है और रातों में इन्हीं इमारतों के नीचे अनगिनत धन्धे पनपने लगते हैं। दद्दा ने रौब से पूछा- "कुच्छो काम धन्धा जानते हो कि नहीं कि बुड़बक ही घरे हो। स्कूल गए की नहीं, न गए। तुम्हारा चेहरा बता रहा कौनौ फिलिम उलम का चक्कर बा। तुम्हारा लंबा-लंबा बाल देखते ही हम ताड़ गए। पर तनिक जे तो बम्बई न जायके इधर काहे ला मरन खातिर आएल बा।" -चुप रहा रमैया।

"बुझा कि जरूर दंगा-फसाद करे हो और तड़ीपार भईल कि न भईल, थोड़कन हमका भी बुझा, बुड़बक मुँह सुसरा काहे को थुथनी में छुपा रहा। हम भी ससुर के नाती ऐसे ही न हों कलकता आए रहें हमें भी तड़ीपार भईल।

रतिया के मुँह जोर पड़ौसी संग लटर-पटर देख हमरा खून खौला रहा से तो रामपुरी से दोनों का सीना चीन कर रख दिया। भूल गए सब। अब बस हमरा धंधा और ई डेरा जिसके हम शाहजहान हैं।" कहकर दद्दा ने कमर में बँधी लूंगी के छोर से खैनी निकाली दूसरी छोर से चुना, दोनों को हवेली के बीच रखकर रगड़ा फिर फटकार कर फूँका और हाथों से झाड़ कर रमैया की तरफ बढ़ा दिया। रमैया ने अनमने भाव से के चुटकी भरी और होठों के बीच घर लिया। फिर देगची का से पिचका ढक्कन हटा कर बोला- "उसना भात और तनिक आलू का झोर धरा है। चल हाथ नर मुँह धो आ, आधा-आधा बाँट कर खाइँगे, अब का राँधना, चल जल्दी।" बोऊ बाज्जार के एक दो तल्ले मकान के नीचे, रमैया इंतजार कर रहा था बड़ी देर से हरीपाल बाबू का। हरीपाल से दद्दा ने ही भेंट करवा दिया था। उसे सारे तौर-तरीके समझा दिये थे दद्दा ने। कैसे पनपते हैं यहाँ हर रोज कुकरमुत्ते और कैसे मर भी जाते हैं। कैसे जीया जाता है गंदे कचरे के ढेर पर या लकड़ी के उस सड़े तखते पर। अपने सारे जीवन का निचोड़ डाल कर उग आना कुकुरमुत्ते-सा ठीक धूसर रंग लिये। फिर उजाले की चाहत में रेंगना कीड़े की तरह बजबजाती नालियों में। वह कीड़ा था और हरीपाल बाबू बजबजाती नाली या कह लो वह कचरे में पड़ा हुआ लकड़ी का सड़ा हुआ तख्ता, जिस पर वह कुकुरमुत्ता बन उगने की चेष्टा कर रहा था। हरिपाल बाबू की सफ़ेद धोती कुर्ता व पान चबाते होंठ को वह दूर से पहचान गया। साँवला-सा रंग, क्रद-काठी मामूली बाई ओर थोड़ा लँगड़ा कर चलना यही उनकी पहचान थी।

"लाया हाय, हाम फ़ोन पर पीताम्बर को बोला था, हाम को पिछला दफा के जेइसा माल नहीं माँगता, उ देखकर हामारा कास्टमार लोग बोहुत नाराज होता था। हाम को दास बात बोला, तोम ऐइसा काम मत करना।" पाल बाबू आकर बोले।

"नही न नही दद्दा, इस बार हमें ठीक माल दे रहे। देख लो चख कर। ठीक न हुआ तो साला हमका दस गारी दो और हमरा जनम

जनम कुत्ता सियार जोनी में होइल वा। नार्हीं तो हमरा लाश गिद्ध नोच खाएँ।" रमैया बोला। सुबह का वक्त था, ददू के दातौन के बाद गला खँखारने का वक्त था। इसी से रमैया को बड़ी चिढ़ थी। पीतल का टेढ़ा लोटा जो सीधा ठहरता ही नहीं उसमें पानी भरकर कुल्ला करते फिर आक्ख थू कर देते और जोर-जोर से गला खँखारते और मुँह में आए कफ को आक्ख थू कर थूक देते, इसी रोज़नामचे के साथ रमैया की नींद खुलती। सोचता किस दलदल में फँस गया। वह घर में गाँव की गायों के रँभाने और गौरियों की उछल-कूद चीं-चाँ से नींद खुलती थी। कितना बेहरम है यह आक्ख थू शहर, अभी पूरी तरह से जागा भी नहीं, सूर्योदय की गुलाबी लाली आकाश से अभी पूरी तरह लुप्त भी नहीं हुई थी, कि लाल इमारतों और ऊँघते टप्परों से छीजता जीवन चट्टान सी खामोशी लिये उसे एक मृत शहर का आभास देता। वह छटपटा कर रह जाता। सोचा करता था कैसी जिंदगी चाही थी, कैसी बन गई। ज़रूरत का मारा दिल पर पत्थर रखकर रोज़ी-रोटी और डेरे के फ़िक्र में कुत्ते की तरह जी रहा है। ददू के रहमोकरम पे दो जून भात झोर में अपने सारे अवसाद सान, आँखों से तिर आए आँसुओं का नमक मिला कर लील जाता। माँ का वक्ष याद आता। घर की याद मिठास घोल जाती। उसे अब अपनी जिंदगी खलनायक की भूमिका में खड़ी होकर उसी पर खलनायकी झाड़ती नज़र आती। अब वह ऊबने लगा था। रमैया के पैर दौड़ते-दौड़ते थक गए।

एक तीन मंज़िला पुरानी इमारत के पास लैम्प पोस्ट के नीचे थक कर थम गया। दोनों हाथों से पड़वती छाती थामे हाँफ रहा था। साँसें हैं कि उखड़ उखड़ जा रही थीं, हलक़ प्यास से सूखा जा रहा था। अचानक एक मायावी हाथ ने उसे पकड़ कर किवाड़ के भीतर खींच लिया। छोटा सा सीलन भरा कमरा, मगर शालीनता से सजा हुआ। सुन्दर इत्र की खुशबू से महक रहा था। एक बिस्तर पर जिस पर दो फूलदार तकिये, दो कुर्सियाँ, मेज़ पर कुछ गिलास, सूखे मेवे व शराब की बोतलें पड़ी थीं। कमरे में मद्धम प्रकाश



झिलमिला रहा था। देखा एक नवयुवती हाथ में काँच के गिलास में पानी लिये खड़ी है। वह मंत्रमुग्ध सा उसे देखता रह गया। युवती ने आगे बढ़ कर उसे गिलास थमा दिया और इशारे से पानी पी लेने को कहा। रात में वैसे भी सारी पीड़ाएँ तन की हो या मन की बढ़ जाती हैं। और नीरवता में घुप्प अँधेरे में रुदन और भी स्पष्ट हो गया, जिसकी गूँज शायद युवती ने सुन ली थी।

"थोड़ा कुर्सी में बैठ कर सुस्ता लो," बंगला भाषा में युवती बोली। रमैया के कुछ-कुछ पल्ले पड़ा पर वह युवती को देखने में ही मगन था या थकान की खुमारी थी। उसे लगा वह सागर की तरह ऊँच रहा है और मद्धम-मद्धम साँसें ले रहा है। शरीर में भाटे की खुमारी है, ज्वार की लहर नीली गहन अँधेरी रात में कही दब-खप गई है। वह भाटे की वह लहर है जिसमें कोई फेन नहीं। एक दूधिया हाथ उसके सिर पर लहराया, उसके बालों को सँवार कर मूक धरती की तरह उसके पास बैठ गई। रमैया को उसकी देह में एक अजीब गंध का एहसास हुआ जिसे तेज़ इत्र की खूशबू भी न दबा पाई। यह मांसल देह की मांसल गंध नहीं थी। उसका सिर चकराने लगा, सोचने लगा फिर कैसी गंध है? बड़ी पहचानी सी। उसके कदम फिर उठ नहीं पाए, वह। निढाल-सा कुर्सी पर बैठ गया। घड़ियाल ने तीन बजाए। तन्द्रा टूटी, देखा पास कोई नहीं। युवती दरवाज़े के बाहर कुर्सी डाले ऊँच रही थी। उसे युवती पर बरबस दया आई। उसने उठाना चाहा पर हाथ

उसकी देह के पास आकर रुक गए। मुँह उठा कर आकाश की तरफ़ देखा। आकाश बादलों से ढका हुआ था। राह बताने वाले सितारे नज़र नहीं आ रहे थे। रात गहरी उदासी में डूबी हुई शान्त है। घना अंधकार उसे यतीमों की तरह नज़र आ रही था। कुछ-कुछ उसकी तरह सोचता है यही आकाश, जब सूर्य की किरणों से स्वर्णिम हो जाता है, तब सभी उसका आलिंगन करते हैं। शाम की गुलाबी किरणों का भी स्वागत करते हैं, लेकिन काली घनी अँधेरी रात को क्यों फेंक देते हैं लावारिस की तरह शायद इसलिए इसे मृत शहर कहते हैं; लेकिन चार बजते ही लगने लगता है ये शहर मृत नहीं है, जी रहा है, साँसें ले रहा है।

लोकल ट्रेनों की घड़घड़ाहट उसकी धड़कनों का पता देती है। जीवन जीने की अदम्य पिपासा इस शहर को जिंदा रखती है। इस मृत शहर का शवदाह इसलिये कभी नहीं हो पाता, कहीं नहीं हो पाता, कोई नहीं कर पाता। दबे पाँव रमैया उतरता है, बढ़ जाता है। उधर की चुन्नी दाढ़ काकों के काँव-काँव से उठ-उठ बैठी है। कहाँ हो गया प्यासा, यह कैसा मोह या उसे भी प्यास लगी है। शायद खो गए संबंधों में लय फूँक रही थी। चुन्नी को अब तक लगता था कि संबंध सिर्फ़ स्वार्थ पर टिके रहते हैं। और स्वार्थी संबंधों में जो हाथ मिलाने की प्रथा है, दोनों तलुओं के बीच उभर आए पसीने सा भी चूजाता है, फिर हाथों के अलग-थलग होते ही ठंडाता भी है। ठीक वैसे ही मानवीय संबंध भी ठंडा जाते हैं मन के खोह में, जिसमें घुस जाओ तो निकल ही न सको। पर चुन्नी समझ ही नहीं पाती, लोग उसके मन में नहीं उसके तन में घुसने, फिसलने की चेष्टा क्यों करते हैं, और फिसलते चले जाते हैं। वह सोचती है कोई बूँद उसकी सीपी वाले मन में गहरे पैठ जाए, मोती बन जाने को सिर पटकती है उन दीवारों पर; जिनमें न जाने कितनी बेहयाई की गाथाएँ पुती थीं, न जाने कौन-कौन किस-किस मुकाम पर पहुँची। सिफलिस, एड्स या फिर संतो की तरह मुआ पता ही न चल पाया मर खप गई। सारा का सारा बोरु बाज़ार जो कभी उसके जिस्म में साबुन की टिकी-सा फिसलता था, सारा

झाग साथ समेटे बड़ी नाली में जा मिला था। इधर अर्थी उठी उधर बाजार फिर सजा, कौन अपनी ग्राहकी बिगाड़े। चुन्नी को अब सपने नहीं आते थे। कभी उसके सपनों में फूल खिलते थे। कभी चंपा, चमेली, कभी पलाश के, सिद्धू भी ऐसे ही खिला था पलाश सा। और अच्छा हुआ सपनों में पलाश अब नहीं खिलते वरना आग बरसाते क्या झेल पाती, वह कई दिन हुए भाई बिरजू का भी कोई खत नहीं आया, बाबूजी ने शायद चोरी पकड़ ली होगी। स्टैंड रोड की लाल-लाल इमारतें उसके बड़े-बड़े हरे रंग के बंद दरवाजे जाने कितनों सालों से बन्द हैं। कड़ों पर जंग लगा लटकता ताला, काले-काले झरोखे, फुटपाथ की धूल, मोटर कारों का धुआँ, लंबी लटकती तारें अब मुँह कसैला कर जाती थीं। रेंगने को मजबूर वह कभी-कभी कराह उठता, जब-जब संजय दत्त का पोस्टर सड़क के बीचों बीच उसे दिख जाता, तिलमिलाकर बदहवासी के आलम में पत्थर उठा कर दे मारता, फट्ट से, पोस्टर फट जाता और वह बच्चों के समान ताली पीटता। तबाह बर्बाद व्यक्ति उसका मन घुटने लगता। लहुलुहान हृदय के तार रिसने लगते नथुनों से धुआँ उठने लगता है। इस घुटन में एक दिन अनजाने में उसके कदम बोऊ बाजार की तरफ उठने लगे। अचानक वह बेहताशा भागने लगा इस गली से उसक गली, उसे याद भी नहीं था किस मकान के सामने लैम्प पोस्ट पकड़ कर बैठ गया था। उस दूधिया हाथ का पता किससे पूछता, उस मृग मरिचिका गंध की टोह लेता बढ़ा जा रहा था। शाम का वक्रत था बाजार गर्म था। पान की पीकों की पच्च-पच्ची आवाज़ दद्दा के आक्ख श्रू से कम नहीं थी। शराब की महक पूरी गली में महमहा रही थी। जिघर नज़र पड़ती अजीबोगरीब पोशाकों में औरतें-युवतियाँ डोलती नज़र आती। लेकिन उसे कोई मोह नहीं पाई। उनके गंदे इरादों से उसे उबकाई सी आने लगी। वह वापस जाने के लिए मुड़ा कि अचानक एक दुधिया हाथ ने उसे दरवाजे के अंदर खींच लिया। अन्दर आकर उसने महसूस यह वही कमरा है। यही दूधिया स्पर्श लिये वही युवती है जिसकी गंध यहाँ तक ले



आई हैं।

"ई की नाम गो तोमार" युवती ने उसे पहचानते हुए बंगला भाषा में पूछा "तुम सेई ना ?"

"हाँ, रमैया पांडे ?" झिझकते हुए उसने हामी में सिर हिलाया।

"ओ तो तुम बंगाली नहीं हो !!"

"नाही न हम मुँगेर से आए हैं।"

"तुम ब्राम्हण हो !!"

"हाँ पर इहाँ आकर तो हमरा जात सब दलिद्वर हो गया।"

"क्यों ?" युवती बोली।

"जो धंधा हम करते हैं न जी, वो काम हमरा जात का नाही न है जी।"

"क्यूँ काम तो काम है फिर जाति बिरादरी क्या, शहर में हर काम काम है, जाति के अनुसार यहाँ काम नहीं मिलता।" चुप रहकर रमैया उसे खोजी नज़रों से ताकता रहा। देखने में तो वह भी बंगाली नहीं लगती। बंगालिन का तो रंग साँवला या गेहूँआ होता है, नाक भी सुँतवा नहीं, थोड़ी गोल-गोल होती है।"

"क्या देख रहे हो, मेरी नाक।" युवती मुस्कराई। इशारे से रमैया ने सिर हिला दिया। वह हँसी "हम भी जमालपुर के हैं चौबे घराने के, जाति तो हमरी भी पूजा की ठहरी पर हम इहें और ही पूजा कर रहे, साला पापी पेट जो न करावे वही कम है।" युवती भावुक हो गई। "तू चल हमरा संग।" साहस कर रमैया ने उसकी बाँह थाम ली चुन्नी ने हामी में सिर हिला दिया। फिर वह रात आई जब वे इस नरक से भाग

जाने में कामयाब रहे। अफीम की गोली घोंटकर चुन्नी सिद्धू को बेहोश कर रमैया के साथ हो ली। उसने मुड़कर उस सुदर्शन चेहरे को देखा। याद आया, वह पलाश सी धधक उठी। पच्च से आक्ख धू करके सिद्धू के चेहरे पर धूक दिया। सिद्धू बेहोशी के आलम में थोड़ा झुँझलाया फिर दीवार की ओर लुढ़क गया।

ट्रेन अपनी गति से भाग रही थी। पटरियों पर का शोर दोनों की हृदय गति की लय को संयत नहीं रख पा रहा था। नौद के झोंके में चुन्नी ने अपना माथा रमैया की गोद में रख दिया। रमैया प्यार से उसके बाल सहलाता रहा। अचानक झोंके में बहकर आए सपने से जाग उठी, देखा कि रमैया उसे एकटक देख रहा है। चुन्नी बोली, "अब तुम भी तनिक सुस्ता लो बिरजू।"

"मैं बिरजू नहीं।" चुन्नी रमैया से लिपट गई। बोली "मेरे लिये तुम ही बिरजू हो।" और उठ बैठी चुन्नी, और रमैया का सिर प्यार से अपनी गोदी में रख लिया। रमैया ने पहचाना उसकी साँसों से आती हुई पहचानी गंध को, उस मोह को। वह नौद में गोते लगाने लगा।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

गृहस्वामिनी डॉ. मंजु शर्मा



प्रो. (डॉ.) मंजु शर्मा

प्राचार्य - राजकीय लोहिया कॉलेज, रेलवे
स्टेशन के सामने, शास्त्री बाजार, नया
बास, चूरू, राजस्थान 331001
मोबाइल- 9414665955
ईमेल- manjudinesh.8@gmail.com

गली में सब्जी वाले की आवाज़ सुनते ही जमना ताई झट से उठी और डलिया सँभालते हुए आँगन से बाहर दरवाजे पर आ पहुँची। सुबह आठ बजे से ही सब्जी वाले की आवाज़ पर कान गड़ाए खुल्ले पैसे, कुछ नोट बटुए में रखकर तैयार हो जाती है। वह कभी साढ़े नौ, कभी दस तो कभी उससे भी देर से आता है पर ताई उसके इंतज़ार में सुबह से ही तैनात हो जाती है। यूँ केवल सब्जी वाला ही नहीं, कामवाली बाई, दूधवाला, ज़मादारनी सभी के निश्चित समय से पहले ही उतावली होकर बाट जोहना अब उनकी दिनचर्या का एक अहम हिस्सा ही हो गया।

हर दिन के इस उलाहने को सुनकर सब आदि हो गए। पति के जाने के बाद से अकेली रहती जमना ताई के बेटा-बहू गुजरात में रहते हैं; जहाँ बेटा अपने छोटे से व्यापार को थोड़ा बढ़ाने में में लगा है और बेटे-दामाद ऑस्ट्रेलिया में आनंद पूर्वक अपने बच्चों के साथ जीवन जी रहे हैं। पोता-पोती में बुढ़िया की जान बसती है पर पोती दादी का बहुत खयाल रखती है। मीठी आवाज़ में फ़ोन पर बतियाती पोती पर दादी न्योछावर हुई जाती है और उसकी मीठी आवाज़ के कारण ही उसका नाम दादी ने कोयल रख दिया। बेटा रविन्द्र माँ से बहुत प्यार करता है और माँ से सूरत चलने की ज़िद करता रहता है पर वह महीना भर जाती है फिर गाँव लौट आती है। शहरों के फ़्लैट वाली ज़िंदगी उन्हें रास नहीं आती है और अंत में रविन्द्र उन्हें गाँव छोड़ जाता है।

मन के मुक्त आकाश में विचरण करने-सा ही तो है गाँव के घर में विचरना... पूरे जीवन की बँधी दिनचर्या से अलग बंधनों से मुक्त एकाकी जीवन ही अब ताई को लुभाता है। एक उम्र के बाद जहाँ लोग और संसारी हो जाते हैं, परिवार के बीच अपनी अहमियत और अस्तित्व पर आए संकट से दुखी रहते हैं, उनमें से नहीं है जमना ताई। जब तक पति ज़िंदा थे तब कठोर अनुशासन में जीवन बिताया। कठोर स्वभाव वाले मास्टर जी के साथ वय के पन्द्रहवें साल से बँधी जमना ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे। मास्टर जी के घर में आते ही कफ़रू लग जाता था, दोनों बच्चे सहम कर किताबें खोल पढ़ने लगते। जमना तो वैसे ही कभी कपड़ों के ढेर को लिए आँगन में साबुन के झागों के बीच भरी-भरी काँच की चूड़ियों वाले हाथों से मोगरी से कपड़े पीट रही होती, कभी बर्तनों के ढेर में धँसी होती, कभी पलंगों की निवाड़ कस रही होती तो कभी रिश्तेदारों के लिए थाली लगा रही होती। दम लेना भी पाप ही था। कभी हारी बीमारी खटिया पर लेटी दिख जाती तो मास्टर जी की भवें तन जाती, घर का माहौल एकाएक गरमा जाता तो अंततः जमना खटिया छोड़ रसोई घर में घुस कामों के अंबार में से कोई न कोई काम में उलझा लेती खुद को। अकेले बैठ कितनी ही यादों की जुगाली करना और आज के दिनों में खुद को आज़ाद पाना भी जमना ताई को अपनी जीत की तरह लगता। बैठे बिठाए कितने ही दिन उसके सूने घर में सिनेमा की कहानी की तरह आँखों के आगे तैरने लगते। यातनाओं से भरे दिनों को आँखों में भरना और फिर अपने उन्मुक्त मन को एकांत के आकाश में उड़ने देना अब उनका शगल हो गया। हर एक पीड़ा भरे दिन को याद कर पीड़ा महसूस करना और फिर मुक्त होने का भाव... अपने अस्तित्व का भान करना, किसी नियंत्रण से परे अपने घर में अपने तरीके से रहने का सुकून ताई को मोहल्ले की महिलाओं से अलग करता है।

अलग करता है पत्नी, माँ और दादी, नानी के खाँचे में बँधी-बँधई स्त्री के कारुणिक और दयालु रूप से जहाँ स्त्री के लिए अब मृत्यु के इंतज़ार और बेटे-बेटियों पर स्नेह लुटा, खुद को उसी संसार में भुलाने के सिवाय स्व के लिए सोचना निषिद्ध है। उनकी बातें बनाते हैं रिश्तेदार, मोहल्ले की महिलाएँ आदि पर उन्हें फ़र्क़ नहीं पड़ता। ब्याह के समय उनकी माँ ने कहा था इस घर की लाज रखना, पति और ससुराल ही तुम्हारा स्वर्ग है, शिकायत का मौक़ा मत देना तो जमना ने माता-पिता के रहते कभी कोई मौक़ा नहीं दिया। मास्टर जी के जीते भी वचनों को पल्लू के बाँधे रखा। उन्हीं के अनुसार जीवन निभाया... जो वे कहें वही पकाना, जहाँ कहें वहीं जाना, जो कहें वही पहनना। अब उनकी दुनिया में गली भर के बच्चे, बहुएँ, युवा सब हैं। मास्टर जी गली में निकलने ही नहीं देते थे न ही मोहल्ले की महिलाओं से गपें हाँकने की इजाज़त थी। बस काम से काम और दूर से दुआ सलाम। यूँ मास्टर जी ने मोहल्ले के बच्चों को पढ़ाया, सबकी

मदद की पर उन्हें यह पसंद नहीं था कि पत्नी मोहल्ले में किसी के घर आए जाए या घण्टों मनोरंजन में व्यतीत करे। कभी गली में महिलाओं संग बतिया रही होती और मास्टर जी स्कूल से आ जाते तो सब अपने-अपने घरों में गुम हो जाती। सभी को मालूम था मास्टर जी कड़क स्वभाव हैं।

अब जमना ताई का समय इन्हीं मोहल्ले वालों के बीच व्यतीत होता है। सब्जी वाले की आवाज़ के साथ ही घण्टे भर के मन लगने का जुगाड़ हो जाता। उलाहने, टेढ़ा बोलना, कभी स्नेह ढोलना तो ताई के स्वभाव के हिस्से ही हो गए। डलिया सँभालती ताई ने कहा "इतनी महँगी सब्जी कर रखी है भाया कोई क्या खाए, काचरे, ग्वार फली, टिंडे सबके भाव आसमान छू रहे हैं।"

"माँजी आप जैसे सेठ लोग भी महँगी कहेंगे तो हम गरीब गुरबे क्या खाएँगे?" कहकर सब्जी वाला मालू एक झोले में से बाड़ करेले निकालने लगा।

"अरे बाड़ करेले लाया है मालू ? क्या भाव दिए?"

"अरे ताईजी आपके लिए लाया हूँ, किसी भायले के खेत से लाया था सोचा एक साग के आपको दे दूँ एक साग जितने मेरे घर ले जाऊँगा।"

"अरे नारे मैं बिना पैसे नहीं लूँगी... टाबरों को क्या खिलाएगा अगर यूँ बाँटता फिरेगा तो?"

"तो क्या खेत से तोड़कर लाई चीज के भी पैसे लूँ ? आप भी तो कितना कुछ देती रहती हो, पिछली सर्दियों में ही दुशाला दिया, आपकी दी हुई साड़ी तो कालू की माँ अब तक ब्याह शादी में पहनती है। आपके हाथ की चाय दुखते हाड़ गोड़ों को दवाई जैसी लगती है, यह अपनापा कैसे भूलूँ ताईजी?"

"बस कर अब मालू... मायत तो टाबरों के लिए करते ही हैं।"

ताई चहकते हुए आलू, बैंगन, फली तुलवाने लगी। यूँ अकेली रहती है पर दो वक्रत अच्छा खाना, मेवे और फल खाकर अपनी सेहत का पूरा ध्यान रखती है। जवानी में अपनी थाली में सबसे कम लगावण रखने

वाली ताई को लगता है, अब उसे अपने घर के लिए स्वस्थ रहना है... इस एकांतवास में वह खुद को स्वस्थ रखना चाहती है ताकि किसी से सेवा न करवानी पड़े। मास्टर जी की पेंशन से घर परिवार के खर्चें, धरम-पुन के सब काज आराम से पूरे हो जाते हैं।

सुबह की रौनक से गली में ताई का खूब मन रमता है। डलिया लिए भीतर जाकर लड्डू गोपाल से बतियाने लगी "अरे लड्डूड़ा तुझे भूख लगी होगी न? अब देख झट से भोग तैयार करती हूँ। क्या करूँ सब्जी वाला भी प्रेम रखता है थोड़ी देर न बात करूँ तो पूछता है "ताई जी उदास क्यों हो" अब बता उसका भी खयाल रखना पड़ता है। सामने वाली ममता को सब्जियाँ देखनी नहीं आती उसको भी चुन कर सब्जियाँ तुलवाती हूँ। वह सत्यनारायण जी का किराएदार श्रीधर तो कुँवारा ही है उसे तो पता ही नहीं कितनी सब्जी लेनी चाहिए, मुझे माँ की तरह मानता है उसको भी सब्जी दिलवाना मेरा धर्म है। अब देख रविन्द्र कहता है माँ तू सूरत चल न मेरा मन तेरे बिना नहीं लगता। अब उसे क्या पता मोहल्ले में सब मुझसे कितना मोह रखते हैं। सबको कुछ भी पूछना हो मुझसे ही पूछते हैं चाहे व्रत हो, त्योहार हो या कोई नेगचार हो, मेरे से ही सलाह करते हैं। तू ही बता लड्डू इन सबको कैसे छोड़ जाऊँ ? ले मैं भी कितनी बावली हूँ तुझसे बतियाने लगी, तू तो गुँगा है न, नहीं बोलता पर सुनता सारी है। ले जीम और मेरे घर परिवार को धन धान्य से भरा पूरा रख।"

बाहर धूप में तेज थी, सब घरों से छौंक बघार की खुशबुएँ उठने लगी। रसोई की खिड़की से ताई पड़ोसियों की छत पर कपड़े सुखाती दिलीप की बहू को देखने लगी। बड़ी मुश्किल से दिन चढ़े हैं तीन बार गर्भ गिर गया। कुछ खाती भी नहीं। तभी ताई ने बाड़ करेले की सब्जी कटोरी में रखी और दिलीप की बहू को देने चल पड़ी।

"ले दिलीप की माँ बहू को खिलाना ऐसे समय में दूसरों के हाथ की बनी चीजें बहुत भाती है।"

"अरे ताईजी आप तो कुछ न कुछ लाती ही रहती हो, क्यों कष्ट किया?"

"अरे मेरी बहू नहीं क्या? चल अब तो मैं चलती हूँ, सुबह से कुछ खायी नहीं कल व्रत था, अब व्रत खोलना है।"

इस वक्रत धीरे-धीरे गली में चुप्पी सी छाने लगी। भोजन कर ताई ने टीवी चला ली। तेज आवाज़ में समाचार चलते रहे और ताई को वहीं झपकी आ गई। दोपहर सरक रही थी घर में टीवी की आवाज़ और ताई के खरटि मिलकर एहसास करवा रहे हैं कि इस घर में बस्ती ही बस्ती है। तभी ताई की आँख खुली देखा फ़ोन की घण्टी बज रही है। ताई ने चोंक कर फ़ोन उठाया बेटे का फ़ोन था।

"माँ इतनी देर से फ़ोन कर रहा हूँ, उठाया नहीं तो मुझे घबराहट होने लगी, ठीक हो न?"

"अरे मैं तो ठीक ही हूँ, मुझे क्या होगा टीवी बंद करते हुए बोली।"

"अकेली रहती हो तो चिंता होगी न...मैं फिर कह रहा कुछ दिन मेरे पास आ जाओ मन भी लग जाएगा।"

"मन ?? मेरा तो मन खूब लग रहा है बेटा, अभी टीवी देखते हुए आँख लग गई तो फ़ोन की घण्टी नहीं सुनी।"

"अरे माँ हमें तो आपकी याद आती है न ? हमारे लिए ही आ जाओ। देखो न हम घूमने चलेंगे।" बेटे की बात काटते हुए वह झट से बोल पड़ी "बेटा आजकल यहाँ चोरियाँ बहुत हो रही हैं, सूने घर को देख ताले तोड़ लेते हैं।"

"तो क्या दौलत रखी है माँ, आ जाओ न क्या ले जाएगा कोई ?"

ताई को यही डर लगता है कि बेटा अपने पास न बुला ले और इसलिए जल्दी से बातों का प्रसंग बदल कहने लगी "तेरा काम कैसा चल रहा है? बच्चों की पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

"सब ठीक है आप होते तो और ठीक होता माँ, सारे दिन कैसे रहती हो? बस ज़िद पकड़ ली आपने।"

"अरे बेटा मेरा खूब मन लगता है गली मोहल्ले में, सब खूब खयाल रखते हैं। मुझे कहते हैं ताईजी आप अगर चली गई तो हम कैसे रहेंगे, आप तो हमें तीज, त्योहार, ऊँच-नीच सब बताते रहते हो।"

माँ की उन्हीं रटी रटाई बातों और न आने

के बहानों से परेशान होकर रविन्द्र ने थोड़ी बात करके फ़ोन रख दिया।

ताई ने एक नज़र घर के आँगन में डाली और एक लंबी साँस भरी। इस घर में देवर, ननद और बेटे-बेटी के ब्याह, भात, बच्चों के जन्म और कितने ही आयोजन हुए। ये लम्बी दीवारें साक्षी हैं, सब अवसरों की। साँझ को दिया बाती के साथ ही चौके में साग तरकारी बनाने, आटा गूँथने, अमरस बनाने और फिर सास-ससुर, देवर, ननद और बच्चों की थालियाँ लगाकर चौक में सबको जिमाने के बाद बची-खुची साग-सब्ज़ी से रोटी खाकर चौका समेटने की सारी स्मृतियाँ चलचित्र सी आँखों के आगे चलने लगी। आँगन में अब जहाँ पक्का चौक है कभी वहाँ अमरूद, शीशम, आँवला और गुलमोहर के पेड़ों पर सुबह-सुबह चहकती चिड़ियाएँ और हरी घास पर परिवार के सब लोगों का सर्दियों में गाजर, मूली, अमरूद, बेर, कीनू, खाना और क्रिस्से कहानियों, हँसी-मजाक का दौर अब ताई को बहुत याद आता है। मास्टर जी के घर रहते तो कोई चूँ भी नहीं बोल सकता था पर उनके स्कूल जाते ही सब मौज मस्ती में डूब जाते। बड़े परिवार में भात, मायरा, पूजा-पाठ, उजमण, विवाह, उढावणी, नांगल सब चलते ही रहते... इस तरह खर्चे आते ही मास्टर जी चलते-फिरते एटम बम ही बन जाते थे। बतलाते ही बिखर पड़ते पर जमना परिवार की साख को ध्यान में रखते हुए सभी कार्यों के लिए कपड़े लते, गहने, बर्तन और नकदी की व्यवस्था में जुट जाती। मास्टर जी की झिड़कियाँ खाती रहती, दोनों की बहस और तनाव के बाद कन्हैया वस्त्रालय से उधार कपड़े आते, जीवन सोनी से सामर्थ्य अनुसार सोने-चाँदी के आभूषण आते, खेमजी से लड्डू, बूँदी और भुजिया आते, बिंदल किराने से खांड, खोपरे, घी, बेसन, तेल, गुड़, मेवे, साबुन, मंजन सब आते। इसी चौक में चौकन्ने होकर बिल से सामान का मिलान करते बच्चे और मुँह फुलाए मास्टर जी। हर आयोजन से पहले घर में गोधम तो होता ही था। मध्यमवर्गीय परिवारों की ज़िम्मेदारियों और आय में गहरा अंतर होने के कारण उपजी

खिन्नता कुछ दिनों तक घर में किसी ओपरी छाया सी बिचरती रहती और फिर उत्सव के आयोजन के दिन सब कुछ भूलकर बस परिवार की प्रतिष्ठा को बचाये रखने की ज़िद के साथ सब पूर्ण होता।

कितना बड़ा जीवन इस घर में ताई ने जिया और वह भी अपने मूल स्वभाव को दबाकर एक आज्ञाकारी पत्नी के रूप में सब कर्तव्य निभाए। अब इस घर-आँगन की दीवारों में समाई अनन्त स्मृतियाँ, हवन की सुगंध, कड़ही में छनती पूरियों की सन-सन, मिठाई के खोमचे, कमरों में परिवार के लोगों और रिश्तेदारों की हँसी ठिठोली, मझले ननदों की मसखरी, खरे माल की चूँदड़ी, बंगड़ी, माँगटीके और नथ की झलमल के साथ कोहनी तक रची मेहँदी और भरी चूड़ियों वाले हाथों में पूजा की थाली में चोपड़ा, नारियल, मोली, पानी की गड्डी, दूर्वा, पुष्प लिए दौड़ती-फिरती स्वयं जमना। सोचते-सोचते कलेजे में हूक सी उठी... तब सब कुछ था बस अपने फ़ैसले लेने की आज़ादी नहीं थी, मास्टर जी पैसा खर्च करते थे तो उनकी धौंस पूरा परिवार सहता था और पूरे दिन खटती जमना थी। मास्टर जी की डॉट-फटकार, सबके सामने जमना को नीचा दिखाने की आदत से उसके मन में भी बहुत क्रोध आता, जिसे वह बस सह सकती थी पर अधिक बोल नहीं सकती थी। हर आयोजन को परिवार की प्रतिष्ठा के अनुसार करने में महीनों की उसकी मेहनत को कोई नहीं गिनता। आयोजन के बाद सब मास्टर जी की बड़ाई करते और मास्टर जी परिवार जनों व मित्रों से घिरे पूरा श्रेय ले रहे होते। यह कुढ़न जमना को कचोटती रहती थी... आजीवन इस घर-परिवार के लिए खटती रही पर सास-ससुर, ननद या पति किसी ने भी शाबासी नहीं दी।

इस घुटन के साथ पूरी ज़िंदगी निकल गई। अब जमना स्वयं के बूते पर अकेली घर में रह रही है, बेटा भी रूठा हुआ है कि माँ उसके पास नहीं रहती, बेटी भी रूठी हुई है कि क्यों अब माँ अकेली रह रही है, कुछ हो गया तो हम लोगों को क्या जवाब देंगे। कहे कोई कुछ भी पर जमना को किसी की भी अधीनता में

नहीं रहना। बहू-बेटी सबके घरों के अपने-अपने नियम क़ायदे हैं पर अब वह आज़ाद है, वह इस घर की मालकिन है अपने तरीक़े से रहेगी। लोग बेटे को ताने देते हैं कि माँ को अकेला छोड़ रखा है, बेटा परेशान है, बेटी दूर देश में बैठी परेशान है। वह समझती है पर अपनी आज़ादी की कीमत पर किसी के तानों की परवाह नहीं करेगी... इतनी आत्म केंद्रित वह कभी नहीं थी पर अब न जाने क्यों किसी की भी सलाह मानने का मन उसका नहीं। लोग उसे भी कहते हैं "बेटा रखता नहीं क्या ताई, इस उम्र में भी काहे का खटना?"

लोगों का क्या वे बोलेंगे ही सही पर वह स्वतंत्र है, बेटे के घर में बहू के क़ायदे चलेंगे, बेटे की चलेगी। मैं अपने घर की मालिक खुद हूँ, अब कोई मास्टर जी परिवार जनों की भीड़ में आँखें दिखाकर चुप रहने का संकेत नहीं करेंगे। जमना के दिल में पति द्वारा की गई उपेक्षा से गहरे छिपे चोट के निशान कभी भी दुखने लगते हैं। चाहे बरसों हुए पर स्वाभिमान पर लगी अनन्त चोटों को सहलाना और मालकिन बन अपने अस्तित्व को महसूस करना उसे अच्छा लगता है। इस मोहल्ले के लोगों में जमना ताई अपना रुतबा बनाए हुए है, इससे उनको बड़प्पन की अनुभूति होती है, चाहे वह कहीं न कहीं जानती है कि मोहल्ले वालों का काम आराम से उनके बिन चलता है और वे उनकी राय के मोहताज नहीं। फिर भी अपनी उपस्थिति को हर जगह बनाए हुए मन में गर्व की अनुभूति होती है। मन में दबी छिपी उपेक्षित स्त्री होने की भावनाएँ कभी भी विद्रोह कर देती हैं फिर उसे न बेटे का प्रेम खींचता है, न बेटी की माँ को लेकर चिंताएँ... स्वाभिमान की मंद सी जलने वाली बाती अब भभक कर ज्वालामुखी बन गई है और जीवन के उत्तरार्द्ध में जमना है अपने घर की अकेली मालकिन; जहाँ उसी के नियम क़ायदे चलते हैं। गली में लौह-प्लास्टिक खरीदने वाले की आवाज़ से ताई की तन्द्रा टूटी। स्वच्छ हवा के मीठे झोंकों के स्पर्श से वह तरौताज़ा महसूस करने लगी। अब उसके पास घर ही नहीं घर का स्वामित्व भी है, अब ताई स्वतंत्र और उन्मुक्त है।

हक्र

अमिता प्रकाश



अमिता प्रकाश

सहायक प्राध्यापक हिन्दी

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

सोमेश्वर, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड 263653

मोबाइल -7055663576

ईमेल- amitaparakash78@gmail.com

कल से भागवत कथा है, जरूर आना! प्रयाग के पंडूज जी हैं कथावाचक, अरे! वही जिनकी कथाएँ हम लोग टीवी और मोबाइल में भी सुनते हैं।

सच्ची कह रही हो लीला काकी ? सब आश्चर्य से पूछते।

ले, अब इसमें भी झूठ बोलने वाली कौन सी बात हुई? लीला काकी स्वर में हल्का रोष सायास लातीं।

अरे! पर तुम्हारी कहाँ से हुई उनसे जान-पहचान?

जान-पहचान का क्या?, मेरे मैत के बगल वाले गाँव के तो ठहरे वो, और फिर जिन साहब जी का भागवत हो रहा है उनके बचपन के दगड़िया, 'खास मिज्जू'। इलाहाबाद तो बारहवीं के बाद गए ठहरे, पहले तो हमारे साथ ही गोर-बछेरू चराये ठहरे उन्होंने। अपना-अपना भाग्य है सब। हमारे 'साब जी' दिल्ली जाकर बड़े आदमी बने और पंडूज जी प्रयाग जाकर आचार जी।

लीला काकी अब रुकने वाली कहाँ थीं? बस एक बार उनकी जुबान की रेल पटरी पर दौड़नी शुरू हुई तो राजधानी एक्सप्रेस सी बस दौड़ती ही चली जाती, रुकती तो तभी जब श्रोता 'हुंकारे' देना बंद करता या फिर अपनी जिज्ञासा और अविश्वास की चेन जोर से खींच देता।

लीला काकी को सब कुछ बर्दाश्त था, पर कोई उनकी बातों पर अविश्वास करे, यह उन्हें कतई पसंद नहीं था। विश्वास और अविश्वास इन दोनों शब्दों ने उनकी जीवनगाथा में रोल भी तो बहुत बड़ा अदा किया था। वैसे पुनर्विचार कर कहा जाए तो कह सकते हैं, लीला काकी का विश्वास तथा साबजी और दुनिया भर के अविश्वास की दो आती-जाती साँसों की डोर से बँधी रही उनकी जिंदगी। लीला काकी ने खूब जिया है इस जिंदगी को भी खुलकर, सबको धता बताते हुए, बताते हैं सभी। कम से कम मैंने और मेरी पीढ़ी की बहुओं ने जितना देखा-जाना है उन्होंने यही महसूस किया है। मैं विवाह के बाद जब इस गाँव में आई तो जिन पहले शब्दों ने मेरे किंकर्तव्यविमूढ़ दिल को नए उजाले से भर दिया था वह लीला काकी के ही थे।

मेरी शादी दिल्ली में हुई थी। ससुरजी को छुट्टी नहीं मिल रही थी, तो लगभग एक माह के इंतजार के बाद अपने पैतृक गाँव में सत्यनारायण की कथा और इस बहाने अपने पैतृक घर-गाँव, धारे-नौले, खेत-खलिहान से परिचय कराने के लिए मुझे ले जाया गया। मेरे मायके का परिवार जहाँ पूरी तरह से पलायन कर चुके अधिसंख्य परिवारों में था जो कई-कई सालों में सिर्फ पूजा या किसी समारोह के नाम पर दो दिन के मेहमान बनकर जाते थे। वहीं ससुराल का परिवार अभी पूरी तरह से कटा नहीं था गाँव से। सासू माँ तो हर छह महीने में हो ही आती थी घर, वैसे भी वह कुछ साल पहले ही पूर्ण रूप से आकर दिल्ली की निवासी बनने की कोशिश कर रही थीं। लेकिन महानगर की न उन्हें हवा-पानी रास आ रही थी न सोहबत। यूँ भी जिस औरत ने लगभग सारी जिंदगी पति से दूर सास-ससुर, ढोर-डाँगरों तथा बाखली की सास-बहू, भाभी-ननदों के साथ हँसी-ठिठोली कर जीवन यापन किया हो, वह फ्लैटरीय सभ्यता संस्कृति में कैसे सहज हो पाती? वह भी उम्र की ढलान पर? तो हर दो-चार माह में लौट ही जाती हैं वह अपने पैतृक घर के दरो-दीवार से भेंट-घाट करने। वैसे भी उनका व्यक्तित्व सब कुछ समेट लेने का है, वह कुछ भी अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर छोड़ने में विश्वास नहीं रखती। मैं विवाह के बाद अभी दिल्ली के

छोटे से घर-आँगन की समतल जमीन पर अपनी जड़ों को धीरे-धीरे फैला ही रही थी कि अचानक एक दिन मुझे गाँव के इस ऊबड़-खाबड़ पटांगन में ला खड़ा किया मेरी सास ने, इस आशा और निर्देश के साथ कि मैं भी खींच लूँगी जान-पहचान और लोक व्यवहार का खाद-पानी उस जमीन से जिसमें मेरी भावी पीढ़ी की जड़ें न जाने कितनी पीढ़ियों पूर्व जमी थी।

मैं अभी बाखली के घरों को ही पहचानने की कोशिश कर रही थी कि कई सारे गोरे-चौड़े से मुँह वाली, नाक से माथे के अंतिम छोर तक लाल पीले टीके के मध्य करीने से लगे अक्षत के भाल लिए अनेक स्त्रियाँ आ गईं मेरे सामने। कोई सास, कोई बूढ़ी सास, कोई जेठानी कोई देवरानी, तो कोई ननद। चेहरे पहचानने तो मेरे बस की बात कभी रही ही नहीं, इसलिए मैंने अधिक परिश्रम न करने का मन बना ही लिया था। वैसे भी दो-चार दिन ही तो रहना है, की मानसिकता के साथ मैं क्यों कर ही किसी को पहचानने में अपना दिमाग खपाती? लेकिन तभी शब्द टकराया कानों से, इन ससुरालियों के नाते में एक अकेली मैं ही हूँ मायके की, लीला काकी।

मैंने नजरें उठा कर देखा, सामने जो चेहरा नुमायादार हुआ, उसकी गुलाबी रंगत और आँखों की चमक ने मेरी पलकों को झपकना भुला दिया कुछ पलों के लिए। माथा कुछ ज्यादा चौड़ा था, उस पर लगा टीका अन्य महिलाओं की तरह नाक और माँग के बीच पुल का कार्य न कर, सिर्फ दोनों भवों की कालिमा को कुछ और रंगत दे रहा था। टीके के नीचे चमकती आधी छुपी आधी दिखती लाल बिंदी अर्द्ध चंद्राकर हो उसे चौड़े माथे पर कुछ अधिक ही खिल रही थी। मेरी आँखों में 'काकी' शब्द के प्रति उमड़ी जिज्ञासा को वह ताड़ गई थीं। तुरंत बोली, "मैं जगत् काकी हूँ, रिश्ता चाहे कोई भी हो। इस गाँव के ही नहीं, आसपास के सभी गाँव के, मेरे से कम उम्र वालों की मैं लीला काकी हूँ, क्योंकि मैं अच्छी काकी की तरह न माँ हूँ न माँ से कम हूँ।"

पता नहीं सामान्य से शब्दों में आवाज की कसक का कुछ अद्भुत-आकर्षक सा मिश्रण

इस प्रकार मिला रही थीं वह कि कोई भी बच न पाए उसके जादू से। मैं भी बँध सी गई।

दिन भर और उसके बाद के कई दिनों में भी ससुराल की उस बाखली, और उससे बाहर खेत-खलिहान धारे-नौलों, छानी आते जाते कितनी ही सासुओं, ननदों, जेठानियों-देवरानियों को देखा, बातचीत की, पर काकी का चेहरा नजरें खोज नहीं भी रहीं थी, पर मिल नहीं रही दुबारा वाला भाव कई बार आया और गया।

भागवत कथा की यह परिघटना मेरे विवाह के एक साल की अवधि पूरी होने व एक साल बाद पुनः गाँव आने के समय की है। लीला काकी मेरे सामने ही गाँव में घूम-घूम कर सबको न्योता दे रहीं थीं। उनकी स्निग्ध मुस्कान मन को रिमझिम गिरती बारिश में तर गीली मिट्टी सी अंदर तक भिगो दे रही थी। अचानक से सासू माँ का चेहरा आँखों में तैर गया, मेरी सास एक सुघड़ गृहणी, जिसने बंद कर रखा है मुट्ठी में अपनी सारी दुनिया को, सूर्य की तरह धुरी बनी रही हैं वह अपने परिवार की। उनके चारों ओर चक्कर काटते ग्रह सदृश्य परिवार के सारे सदस्य, जरा किसी दिन कुपित हो जाए तो पूरा घर अंधकारमय हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य के बादलों में ढक जाने पर अंधकार मय हो जाता है पृथ्वी का ज़र्रा-ज़र्रा। 'उनकी मुस्कान में क्यों नहीं है यह स्निग्धता?' मैं सोच रही थी और सामने खिलखिलाती लीला काकी को देख रही थी।

मैंने इन बारह महीनों में लीला काकी का जिक्र जितने भी लोगों से सुना सबके लिए वह शीतल छाँव सी सुखद ही बनी रहीं, तब भी जबकि जिंदगी आठों पहर जून की धूप बनकर तपाती ही रही उन्हें। उनके साथ उनकी 'सौत' भी थी गाँव में न्योता देने में शामिल, बिल्कुल सहेली की तरह उसका हाथ पकड़कर गाँव के हर घर-चौक में खींचे ले जा रही लीला काकी, मिला रही थी उन्हें हर अपरिचित से। लेकिन वह, बिल्कुल शांत, चुप। किसी गहरी गुफा सी, जिसके अंदर की गहराई और रहस्यों से आदमी डर की वजह से दूरी बना लेता है। क्या अपराध बोध है उनके मन में? नहीं, अपराधबोध नहीं हो सकता, क्योंकि वे

आज ही इतनी चुप नहीं हैं। दिल्ली में भी, जब भी मिलीं, इसी मुख मुद्रा में मिलीं। जब भी बात करतीं तो यूँ लगता जैसे गहरी खाई से शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर लाना पड़ रहा है उन्हें। लेकिन, लीला काकी की प्रशंसा में कंजूसी कभी नहीं करती वह भी। मैंने खुद सुना है उन्हें लीला काकी की तारीफ़ करते हुए, और अपने बच्चों को समझाते हुए कि मेरा जैसा ही मान-सम्मान उन्हें भी देना।

यह तो आज की बात है, पहले भी क्या इतना ही सौहार्द रहा होगा इन दोनों के बीच? तब भी जब 'साबजी' जीवित थे? मैं पूछ बैठती हूँ अपनी सास से।

"रुक्मणी का तो मुझे नहीं पता, तब तक हम जानते ही कहाँ थे उसे? वह तो पिछले साल से ही घर आने लगी है, वह भी लीला के बुलाने पर। पर लीला ऐसे ही ठहरी हमेशा से, मस्त मौला। लगा ही नहीं कभी उसे देखकर की पति से धोखा खाई औरत है। ऐसी औरत जिसे पति ने न छोड़ा न अपनाया। बस अपनी दुनिया बसा ली इससे दूर।" सास जी कहना शुरू करतीं तो फिर पूरी कहानी सुना कर ही चुप होतीं, "लीला अट्ठारह-उन्नीस साल की रही होगी, जब इसकी शादी हुई, मेरी शादी के ठीक पंद्रह दिन बाद। पराई जगह पर एक साथ लाई गई हम दोनों के दिल के तार कुछ अलग ही तरीके से जुड़े। मेरा मायका तो फिर भी नज़दीक था, लेकिन लीला का.. उस समय की बसों में पूरा दिन लग जाता था पहुँचने में।

मेरे बाद गाँव में जब वह दुल्हन बनकर आई तो इसके रूप सौंदर्य ने सब की आँखें चुँधियाँ दी। मुझे तो गाँव वाले ऐसे देखने लगे जैसे मैं बरसों से उन्हीं के बीच थी। जहाँ देखो नई ब्योली के रूप में सिर्फ लीला की ही चर्चा। पन्देरे पर पहली मुलाकात हुई हमारी, मेरे मन में तो सच कहूँ एक डाह सी उठी, पर वह मुझसे ऐसे लिपट कर मिली जैसे ठंगरे पर बेल लिपटती है सहारे के लिए। मेरी डाह क्षण में बिला गई। इसके बाद उसके पल-पल की साक्षी बनी मैं," कहते हुए मेरी सास का सख्त चेहरा थोड़ा और सख्त हो जाता, गर्मी में झुलसती चट्टान सा।

"ब्याह के दो महीने बाद ही शरद की

नौकरी लग गई दिल्ली केंद्रीय सचिवालय में। घर वालों ने लीला को भाग्यशाली कहकर सिर आँखों पर बिठा लिया। लेकिन जिसको बिठाना चाहिए था, उसने सिर आँखों पर तो छोड़, क्रदमों में भी जगह नहीं दी।"

"क्यों?"

"क्यों? जिंदगी में कभी-कभी क्यों का कोई जवाब किसी के पास नहीं होता। इस क्यों के जवाब में मनुष्य का लाजवाब होना ही 'होनी' या 'भाग्य' कहलाता है। कोई और औरत होती, तो घर बाहर सारी दुनिया में हंगामा बरपा देती, लेकिन लीला वैसे ही हँसती-खिलखिलाती, पत्नी और बहू धर्म में रत। फिर जब चार-पाँच साल बाद शरद की दूसरी शादी की खबर गाँव पहुँची तो सब स्तब्ध। पर वह चाँदनी सी शीतल बनी रही। शरद के माँ-बाप ने कोहराम मचा दिया, बेटे को बेदखल और पुत्र धर्म से च्युत करने की धमकी, पर लीला ने कुछ नहीं कहा।

फिर एक लंबी साँस लेकर बोलीं, "लीला की सास तो यह देखकर हैरान-पेशान, कैसी औरत है? कहीं इसी में कोई कमी तो नहीं? हर बार की तरह सीता की ही अग्नि परीक्षा। उन्होंने लीला को शब्दों के सबबलों से उल्टा-पलटा कर देख लिया, पर वह किसी चट्टान सी निर्लिप्त उस मिट्टी से, उन गारों से, उन छोटे-छोटे जीव जंतुओं से जिन्होंने ले रखी थी उसकी शरण। बस इतना ही कहा उसने, "जिसको जैसे खुशी मिल जाए, उसे वैसे ही हासिल कर लेनी चाहिए।"

"और तुम्हारी खुशी?"

"मेरी खुशी मेरे साहब जी की खुशी में ही तो है।" कई लोग लीला पर ही संदेह करने लगे, लेकिन पता नहीं क्यों अरबी के पत्ते सी वह मूसलाधार बारिश में भी सूखी ही बनी रही। सूखना भी ऐसा कि जड़ में नमी यथावत, पोषण देती हुई, सारे परिवार को ही नहीं अपने आसपास सब कुछ को पुष्ट करती हुई। लीला ने ही सुलह करवाई माँ-बाप और बेटे में। जब भी शरद को घर आना होता वह मायके चली जाती, इसलिए नहीं कि उसके मन में मैल था, बल्कि इसलिए कि वह असहज न हो उसके रहने से। माँ-बाप उसकी वजह से कुछ जली

कटी न सुना दें अपने ही बेटे को।

"लीला अपने हक के लिए लड़ना ही तो धर्म है, कृष्ण ने गीता में यही तो समझाया था अर्जुन को," जब मैंने उसे समझाने की कोशिश की तो उसने निरुत्तर कर दिया हमेशा के लिए यह कहकर, "दीदी हक वस्तुओं पर होता है, मनुष्य पर कैसा हक? अर्जुन ने लड़कर के भी सिर्फ राज्य ही जीता था, अपने लोगों के स्नेह को तो वह, कृष्ण के साथ होने के बावजूद नहीं जीत पाया था। स्नेह तो राम ने ही जीता था सब कुछ त्याग कर।" अब इससे आगे कहने को रह ही क्या गया था? उसके जीवन दर्शन को जानने समझने के बाद मैं ही नहीं सब ने चुप लगा ली थी, लेकिन वह चुप नहीं रही। उसकी खिलखिलाहट, चेहरे की चमक और बच्चों सी चंचलता कभी कम न हुई। पूरे घर-गाँव को मोह लिया था उसने अपने कार्य-व्यवहार से।

धीरे-धीरे शरद का गाँव आना और भी कम होता गया। लीला निर्द्वंद्व सास ससुर की बेटी बनकर जी रही थी। उसके एकरेखीय जीवन में थोड़ा बदलाव तब आया जब शरद के बच्चे अपनी बुआ के साथ दादा-दादी से मिलने आने लगे। शुरू-शुरू में वह लीला से एक सजग दूरी ही बनाकर रखते थे। स्वाभाविक प्रवृत्ति या माता-पिता की सीख, दोनों में से कोई एक या दोनों ही कारण संभव थे।

पर लीला से कोई दूर रह सकता है क्या कभी? एक-दो बार दूर रहने की कोशिश के बाद उन्होंने भी समर्पण कर दिया। अब तो हर छह महीने में, दोनों बेटे अपनी गर्मियों की छुट्टियाँ ही नहीं होली दिवाली भी यहीं बिता देते हैं।" सास के शब्द गहरी गुफा में गूँज रहे थे और मेरे सामने पूरे एक साल की तमाम खट्टी-मीठी बातें, रील की तरह एक के बाद एक तैरती जा रहीं थीं- 'रसोई में बिना पूछे कुछ बना लेने का चित्र हो, या डाइनिंग टेबल की कटलरी सेट को अपनी मर्जी से बदल देने का दृश्य, बैठक में रखी चीजों को सिर्फ चेंज के लिए इधर-उधर खिसकाना हो, या अपने बेडरूम के पर्दे बदलने का विचार, या फिर बालकनी में रखे गमले के क्रम को बदलना

हो, या त्योहार पर कुछ नया करने का या बनाने का प्रयास, सब कुछ मेरी माँ तुल्य सास को न केवल अनाधिकार चेष्टा लगता, बल्कि वह उसे अपने अस्तित्व के संकट के रूप में सबके सामने ऐसे चित्रित करती हैं कि हमेशा अपने क्रदम पीछे खींच लेने की सिवाय मेरे पास चारा ही कुछ नहीं रहता।

"अरे मृदुला! बेटी जरा तू आज शाम आ जाना घर पर, आज की लड़कियों को ज्यादा पता होता है साज-सज्जा के बारे में। तू आकर एक बार देख जाना, कुछ बता दोगी, तुमने तो दुनिया देखी ठैरी, हमारी तरह जो क्या हुए तुम कुएँ के मेंढक?" लीला काकी की स्मित के साथ शहद से भरे शब्द कानों में रस खोल रहे थे।

मैं हॉ कहती इससे पहले ही सास बोलीं, "इसी को जो हुआ अंदाजा! पर, तेरा कहा रखने के लिए भेज दूँगी शाम को," इन शब्दों में उनके अस्तित्व की रक्षा और मेरे व्यक्तित्व की तुच्छता दोनों थी। पर मैं मुस्कराती लीला काकी की चमकीली आँखें देख कर सोच रही थी, 'यह किसी किस मिट्टी से बनी औरत है, जिसने पति के दिए घावों ही हँसते-हँसते नहीं सहा बल्कि सहपत्नी को सह, उसके बच्चों को भी गले लगा लिया। पति के रिटायरमेंट में मिले पैसों से पति के पुश्तैनी घर की मरम्मत करवाने के अलावा एक पैसा नहीं लिया। क़ानूनी रूप से पति की पेंशन की एकमात्र हक़दार होने पर भी उसको यह कह कर दो भागों में बँटवा दिया, 'मुझे चाहिए ही कितना?'। और आज उस ही आदमी की मुक्ति के लिए यह भागवत कथा, जिस आदमी ने बंधन के अतिरिक्त उसे कभी कुछ दिया ही नहीं...!!

त्विषा की रिटायर्ड जज सास का बयान टीवी पर चल रहा था, "वह स्वच्छंद प्रवृत्ति की लड़की थी, उसे बच्चा नहीं चाहिए था, वह तो पौधों को पानी भी नहीं देती थी..." मैं उन शब्दों के ऊपर बाहर काकी के शब्दों को सुन रही थी, "बहुत विद्वान थे साबजी, मैं कहाँ ठहरी उनके लायक, मेरा क्या हक़ सब कुछ उनका ही तो ठैरा?"

000

श्री डी शुभ्रा ओझा



शुभ्रा ओझा

406, ग्राउस लेन, डियरफील्ड, इलिनॉय,

यू एस ए.

मोबाइल- 847-393-5126

ईमेल- imshubhra.ojha@gmail.com

पिछले एक साल से हर दिन सुबह चार बजे जिम में मिलने वाले तीन लोग मिस्टर डेविड, डॉल्सिन और दिशा अब बहुत अच्छे दोस्त बन चुके थे। चौबीस घंटे खुले रहने वाला शहर का यह जिम, जिसका नाम "प्लेनेट फिटनेस" था, हर समय लोगों से भरा रहता था लेकिन सुबह तीन से छह बजे के बीच बहुत कम लोग आते थे जिनमें से एक थे "डेविड"। मिस्टर डेविड उमर में अस्सी पार कर चुके थे परंतु हर सुबह चार बजे जिम पहुँच जाते थे। वह जिम में ट्रेडमिल पर सबसे स्लो स्पीड पर धीरे-धीरे चलते फिर कुछ मिनट बाद स्टॉप बटन को क्लिक करके खड़े हो जाते, उसके बाद फिर कुछ मिनट के लिए चलते। यह सिलसिला लगभग तीस मिनट तक चलता, फिर वह चुपचाप जिम के वेटिंग एरिया में बैठकर आर्ट नोटबुक पर कुछ बनाने लगते।

डॉल्सिन जिसकी उमर पचास के आस-पास थी, वह भी हर रोज सुबह चार बजे जिम में आता और एक घंटे वर्कआउट करने के बाद पंद्रह मिनट में शॉवर लेकर तैयार होकर जिम के वेटिंग रूम में आ जाता फिर पंद्रह मिनट डेविड और दिशा से कुछ बातें करके साढ़े पाँच बजे ऑफिस जाने के लिए वह पास के मेट्रो स्टेशन पर पहुँच जाता।

दिशा, जिसने जिम को अपनी दिनचर्या में शामिल करने के लिए प्लेनेट फिटनेस को जॉइन किया था। उसने सबसे उपयुक्त समय चुना सुबह चार बजे का ब्रह्म मुहूर्त और साथ में मिले दो दोस्त; जिनसे दोस्ती हर रोज थोड़ी ज्यादा गहरी होती रही। जहाँ डॉल्सिन को बात करने के लिए सिर्फ पंद्रह मिनट मिलते थे, वही दिशा को डेविड से बात करने के लिए पूरे तीस मिनट मिलते थे। इस बीच दिशा डेविड से एमिली के बारे में खूब बातें करती या यूँ कहा जाए कि अस्सी वर्षीय डेविड ने दिशा को एक नई दिशा दी, जिससे कि उसे एमिली को समझने और उसका ध्यान रखने में मदद मिली। एमिली आठवीं ग्रेड में पढ़ती थी। वह ऑटिज्म से पीड़ित थी, जिस वजह से उसकी देखभाल के लिए स्कूल में एक असिस्टेंट की जरूरत थी, जो हर समय स्कूल में एमिली के साथ रहे। दिशा ने इस पोजीशन के लिए आठ महीने पहले आवेदन किया था और उसे एमिली के साथ काम करने का अवसर भी मिल गया।

शुरू के एक महीने स्कूल में दिशा को बहुत दिक्कत हुई, उसे समझ में ही नहीं आता कि वह एमिली के साथ कैसे पेश आए कि वह उसकी बात सुने। मिडिल स्कूल में सामान्य बच्चों के साथ ही स्पेशल एजुकेशन के लिए अलग से एक क्लास (सेल्फ कंटेंट) थी जिसमें छह से आठ तक के स्पेशल नीड वाले बच्चे एक साथ पढ़ते थे। वैसे तो उन बच्चों का पाठ्यक्रम एक-दूसरे से बहुत भिन्न था, लेकिन कुछ कक्षाओं के लिए इन स्पेशल बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ अपनी कक्षा साझा करनी पड़ती थी, जिनमें से आर्ट, संगीत और फिजिकल एजुकेशन (पी.ई) की कक्षा प्रमुख थी। दिशा को सेल्फ कंटेंट वाली क्लास में सिर्फ एमिली के कार्यक्रम को उससे फॉलो करवाना था लेकिन यह काम इतना आसान नहीं था। कभी एमिली दिशा की बात न

सुनकर भागने लगती तो कभी पूरी कक्षा के सामने फ़र्श पर लेट जाती, कभी वह चुपचाप बैठी रहती और अपनी जगह से बिल्कुल भी नहीं हिलती। एक दिन जब यह सारी बातें दिशा ने मिस्टर डेविड को बताईं तो उन्होंने दिशा को सबसे पहले साइन लैंग्वेज के बारे में बताया कि कैसे हम अपनी अँगुलियों, आँखों और कम शब्दों द्वारा इन बच्चों को अपनी सारी बातें समझा सकते हैं, साथ में यह भी बताया कि ऑटिज़्म से पीड़ित बच्चों के पास कोई विशेष शक्ति होती है, जिसके कारण वह कोई कौशल सीख सकते हैं तो तुम्हें यह कोशिश करनी चाहिए कि तुम एमिली के भीतर छुपे उस कौशल को ढूँढ़ सको। इसके साथ ही तुम्हें यह भी ध्यान देना चाहिए कि जब तुम इन बच्चों के साथ रहो तो अपने भीतर का सबसे सुन्दर और साफ़ मन का प्रयोग करो।

सच भी है न, इस झूठी, बनावटी दुनिया में एक सच्चा मन किसी दूसरे सच्चे मन से वाई-फाई नेटवर्क के जैसे बहुत जल्दी कनेक्ट हो जाता है।

मिस्टर डेविड के टिप्स को ध्यान में रखकर दिशा, एमिली की टीचर मिसेज़ मिलेंड्रा से मिली और बातों-बातों में एमिली के परिवार के बारे में पूछा। अब चूँकि दिशा हमेशा एमिली के साथ रहती थी तो मिसेज़ मिलेंड्रा ने दिशा को सब सच बताते हुए कहना शुरू किया "एमिली आजकल मानसिक रूप से बहुत परेशान है, उसके माँम-डैड अलग हो चुके हैं तो अब उसे एक हफ्ता अपने डैड के साथ तो अगला हफ्ता अपनी माँम के साथ बिताना होगा। एमिली अपने डैड के साथ ही रहना चाहती है क्योंकि उसे लगता कि उसके डैड उसे वह सब कुछ करने देते हैं जिसके लिए उसकी माँम मना करती हैं जैसे- देर रात तक वीडियो देखना या फिर जंक फूड खाना लेकिन उसे क़ानून के नियम को मानना पड़ेगा।" यह कहकर मिसेज़ मिलेंड्रा ने एक लंबी गहरी साँस लेते हुए फिर कहना शुरू किया "हम दोनों को मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि एमिली स्कूल के वातावरण में सुरक्षित महसूस करते हुए कुछ नया



सीखती रहे।"

इन बातों ने दिशा को झकझोर दिया, वह सोचने लगी मासूम सी एमिली इतनी छोटी उमर कितना कुछ झेल रही। उसने मन ही मन निश्चय किया कि अब वह एमिली के साथ बहुत प्यार से रहेगी। दिशा ने एक नए आत्मविश्वास के साथ एमिली को लेकर अपना काम शुरू किया, अब वह एमिली को किसी बोझिल काम की तरह नहीं लेती थी बल्कि उस के साथ ऐसा व्यवहार करती जैसे कि वह उसके घर की सदस्य हो। बहुत प्यार से और बहुत कम शब्दों में दिशा, एमिली को अपने हाथों की उँगलियों से निर्देश देती तो एमिली उसकी बात सुनने की कोशिश करती। धीरे-धीरे प्यार और अपनेपन का नाता उन दोनों के बीच जुड़ गया। स्कूल बिल्डिंग में वे दोनों एक साथ बहुत प्यार से चलते हुए देखे जाते। कुछ दिनों में दिशा ने यह भी जान लिया कि एमिली को नंबर से प्यार है और उसे डॉट से डॉट मिलाकर तस्वीर बनाने में बहुत मज़ा आता है फिर क्या था दिशा ने डॉट टू डॉट पिकचर बुक एमिली के लिए ऑर्डर कर दी। जब वह बुक लेकर दिशा स्कूल पहुँची तो उस दिन एमिली का बर्थडे था। डॉट वाली वह बुक हाथ में पकड़े हुए एमिली खुशी से गोल-गोल घूमने लगी। वह चक्कर खाकर गिर न जाए इसलिए दिशा ने उसे रोकते हुए कहा "मुझे यह देख कर अच्छा लगा कि तुम्हें यह बर्थडे गिफ्ट पसंद आया।"

"मिस डी, मुझे बहुत ज़्यादा पसंद आया

मेरा गिफ्ट। थैंक यू सो मच।"

एमिली दिशा को मिस डी कहकर बुलाती थी। दिशा की मदद से डेली रूटीन के काम करने वाली एमिली, अब अपने सारे काम खुद करने लगी थी जैसे- अपना बैग पैक करना, बिना किसी सहायता के बाथरूम जाना और अपने आप स्कूल बिल्डिंग से निकल कर बस पर चढ़ना। कई महीनों की मेहनत का इतना सुंदर परिणाम देखकर दिशा बहुत खुश होती और जिम में मिस्टर डेविड को खूब धन्यवाद कहती।

एक दिन सुबह स्केच बनाते हुए जिम में मिस्टर डेविड ने दिशा से पूछा कि "एमिली का प्रेजुएशन डे कब है?"

"अगले महीने की पंद्रह तारीख को आठवीं कक्षा का प्रेजुएशन डे है। मैं उस दिन को लेकर बहुत उत्साहित हूँ।" दिशा मुस्कराते हुए बोली।

यह सुन मिस्टर डेविड पेंसिल से आर्ट पेपर पर श्री डी ट्यूलिप की आकृति को उकेरते हुए बोले "तुम्हारे साथ ही मैं भी बहुत खुश हूँ। तुमने एमिली के साथ बहुत मेहनत की है, उसके साथ ही प्रेजुएशन डे तुम्हारे लिए भी बहुत विशेष है क्योंकि एमिली के मिडिल स्कूल से निकल कर हाई स्कूल में जाना यह सिद्ध करता है कि इस देश में हर स्पेशल नीड वाले बच्चों को तुम जैसी मेहनती असिस्टेंट्स मिलनी चाहिए।"

यह सुन दिशा थोड़ा अचरज से बोली "यह आप क्या कह रहे हैं मिस्टर डेविड ? आपके सहयोग के बिना तो मैं कुछ कर नहीं सकती थी। आपने मुझे रास्ता दिखाया। क्या मैं आपसे जान सकती हूँ कि ऑटिज़्म को लेकर आपके पास इतनी जानकारी कैसे है?"

यह सुनते ही मिस्टर डेविड के बूढ़े हाथ में पकड़ी पेंसिल रुक गई, वे उदास होते हुए बोले "जो घाव भर चुके हों उन्हें न कुरेदा जाए तो बेहतर होता है। मेरा एक बेटा था, जिसका नाम कॉलिन था। वह डाउन सिंड्रोम से पीड़ित था और बहुत ही प्यारा था। उसके होने से घर भरा रहता था, उसके मासूम सवाल और मुस्कराती आँखें मेरे दिन भर के थकान को दूर कर देती थी। वह भी स्कूल जाता था और

स्कूल की कुछ बातें पूछने पर मुझे बताता था, लेकिन अफ़सोस वह मात्र तेरह वर्ष की अवस्था में मुझे छोड़कर इस दुनिया से चला गया। वह अपने ग्रेजुएशन डे तक भी नहीं रुक पाया।"

"रियली, सॉरी मिस्टर डेविड, आपका दिल दुखाने का मेरा कोई इरादा नहीं था।" दिशा भावुक होती हुई बोली।

"क्या मैं एमिली के ग्रेजुएशन डे पर डॉल्सिन के साथ आ सकता हूँ, तुमसे और एमिली से मिलने?" यह पूछते ही उनके आँखों में चमक सी आ गई।

"बिल्कुल आ सकते हैं। मुझे उस खास दिन आपसे मिलकर खुशी होगी।"

"मैं तुम्हारे लिए ट्यूलिप के फूल लेकर आऊँगा।" यह कहकर मुस्कराते हुए मिस्टर डेविड ट्यूलिप की स्केच बनाने लगे।

"मैं इंतज़ार करूँगी, आपका भी और अपने पसंदीदा फूल का भी।" दोनों एक साथ हँस दिए।

दिशा ने देखा मिस्टर डेविड के हाथ इस अवस्था में भी बहुत फुर्ती से चल रहे थे, ट्यूलिप की पंखुड़ियाँ और पत्तियाँ ऐसे दिख रही थीं कि वह पेपर से बाहर आ रही हो। यह देख दिशा से रहा नहीं गया और वह पूछ बैठी "श्री डी स्केच बनाने का आपका सीक्रेट क्या है? आप कोई भी आकृति बनाए, देखने से लगता है कि वह पेपर से बाहर आ गया है।"

यह सुन मिस्टर डेविड बोले "यह मेरा कमाल नहीं है, रेखाओं का है। सभी रेखाएँ एक-दूसरे से मिलती जाती हैं और आकर का रूप ले लेती हैं परंतु इसमें अहम रोल होता है 'आधार रेखा या बेस लाइन' का, जो होकर भी नहीं दिखती और इसे ही श्री डायमेंशनल (त्रि-आयामी) या श्री डी स्केच कहते हैं।"

दिशा कुछ समझने की कोशिश कर ही रही थी कि तभी पीछे से डॉल्सिन ने आवाज़ दी "दिशा अभी तुम यह समझो कि हम तीनों के पहले लेटर 'डी' से ही श्री डी बना है।" यह सुनकर तीनों जोर से हँस दिए।

कुछ समय बीतते ही एमिली का ग्रेजुएशन डे आ गया। पेरेंट्स, टीचर्स और बच्चों से स्कूल के प्ले एरिया का ज़िम खचाखच भर



चुका था। तीनों तरफ़ से पेरेंट्स को बैठाने का इंतज़ाम था और बीच में आठवीं ग्रेड के सभी बच्चों के बैठने के लिए कुर्सियाँ लगाई गई थी। सभी कुर्सियों पर बच्चों के नाम का स्टीकर लगा था, जहाँ वे आराम से बैठ सके। एक अस्थायी मंच का निर्माण भी किया गया था, जिस पर चढ़ कर बच्चे प्रिंसिपल से अपना ग्रेजुएशन सर्टिफिकेट ले सके।

एमिली अपने पेरेंट्स के साथ आई हुई थी, उसने पर्पल कलर की ड्रेस पहनी हुई थी। ड्रेस के मैचिंग के हेयर क्लिप से उसके थोड़े से बाल फँसे हुए थे और बाकी के बाल खुले हुए थे। आज दिशा को एमिली थोड़ी ज़्यादा सुंदर और भावुक दिख रही थी।

समय से कार्यक्रम शुरू हुआ, प्रिंसिपल के स्पीच और ऑर्केस्ट्रा के परफॉर्मेंस के बाद बच्चों को सर्टिफिकेट देने का सिलसिला प्रारंभ हुआ। एक-एक करके सभी बच्चे अपना नाम सुनकर दाहिनी तरफ़ से स्टेज पर जा रहे थे और प्रिंसिपल से सर्टिफिकेट लेकर बाई तरफ़ से उतर रहे थे। एमिली का जब नाम लिया गया तो वह उठकर जाने को हुई, दिशा भी उसके साथ खड़ी हो गई लेकिन एमिली ने इशारे से कहा कि वह अकेले स्टेज तक जाएगी। दिशा ने पूरे विश्वास के साथ एमिली को जाने की अनुमति दे दी। वह धीरे-धीरे आइल से होती हुई स्टेज तक पहुँची, वहाँ पहुँचते ही उसके क्लास के स्टूडेंट्स और उसके पेरेंट्स ने एमिली-एमिली कहकर उसका हौसला बढ़ाया। वह मुस्करा दी।

प्रिंसिपल से सर्टिफिकेट लेकर एमिली ने बाओ किया तो सभी ने जोर से तालियाँ बजाई। दिशा अपनी कुर्सी से उठकर बाई तरफ़ जाकर खड़ी हो गई जहाँ से बच्चे स्टेज से उतर रहे थे। दिशा ने देखा कि वह जहाँ खड़ी है वही से थोड़ी दूर पर मिस्टर डेविड और डॉल्सिन बैठे हुए हैं, उन दोनों के हाथ में ट्यूलिप बुके था। दोनों ने दिशा को देखकर अपना हाथ हिलाया और मुस्करा दिए। दिशा उन्हें देखकर खुश हो गई तभी एमिली सर्टिफिकेट लिए आई और उससे लिपट गई। दिशा को लगा जैसे थोड़ी देर के लिए सब कुछ ठहर गया हो, जिस लड़की से वह दूर भागती थी अब वह उसे अपनी ममतामयी आगोश से छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उसने खुद को सँभाला और एमिली को लेकर वापस अपनी जगह पर बैठ गई।

कुछ देर बाद ग्रेजुएशन डे बहुत व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हुआ। मिस्टर डेविड, डॉल्सिन हाथ में ट्यूलिप लिए दिशा और एमिली से मिले और उन्हें बधाई दी, फिर मिस्टर डेविड ने दिशा से हाथ मिलाकर उसे "थैंक यू" कहा। यह सुन दिशा बोली "थैंक यू तो मुझे आपको कहना चाहिए मिस्टर डेविड कि आप यहाँ आए।"

"तुम्हारी वजह से आज मुझे इस ग्रेजुएशन डे इवेंट में सम्मिलित होने का मौक़ा मिला, मुझे लगा जैसे कि मैं अपने बेटे कॉलिन के ग्रेजुएशन डे में हूँ।" फिर दिशा को ट्यूलिप देते हुए वह बोले "तुम वह बेस लाइन हो जिसने पिछले आठ-नौ महीने में अपनी स्टूडेंट एमिली पर मेहनत करके उसे 'श्री डी' आकार की तरह उभारा है, जब वह हाई-स्कूल पूरा करके वास्तविक दुनिया में जाएगी तो असल में अपनी ज़िंदगी को सरल और आसान तरीक़े से जी पाएगी।"

अभी दिशा कुछ बोल पाती उससे पहले ही डॉल्सिन बोल उठा "मिस्टर डेविड चाहे जितने प्रकार से श्री डी का मतलब तुम्हें समझा लें, मेरे लिए तो हम तीनों के नाम का पहला लेटर मिलकर ही 'श्री डी' बनाता है।"

यह सुनकर तीनों दोस्त साथ में हँस दिए।

000

अपवाद शैलेन्द्र शरण



शैलेन्द्र शरण

79, रेलवे कॉलोनी, आनंद नगर

खंडवा, मप्र 450001

मोबाइल- 8840789318

ईमेल- ss180258@gmail.com

भोर में बिस्तर पर आँखें खुल जाने पर सोचना पड़ा कि आज ये नींद आखिर खुल कैसे गई, अन्यथा सुबह की नींद से अच्छा कभी कुछ लगा ही नहीं। कानों में बुला लेने वाली खर-खर की आवाज़ आई और फिर चट्ट-चट्ट की। दोनों ध्वनियों में गजब का सामंजस्य था। खिंचता चला गया। खिड़की की संदी से देखा तो कुछ दिखाई नहीं पड़ा। धीरे से लकड़ी की खिड़की के पल्लों के बीच थोड़ी दूरी बढ़ाई और झाँकने लायक बनाकर नज़रें दौड़ा दीं। चट्ट-चट्ट की ध्वनि उसके पैरों की स्लीपर से उठ रही थी और खर-खर की आवाज़ सड़क पर झाड़ू लगाने का परिणाम। स्लीपर पहनकर जब वह अपना काम करते हुए चलती है, तो यह आवाज़ निश्चित अंतराल से आती है। जैसे मानसिक मानचित्र पर विकसित संगीत का कोई "विचार नियंत्रित" यंत्र हो, जो तंद्रा में ले भी जाता है और तंद्रा को तोड़ता भी है। कान इसके अभ्यस्त हो चले हैं।

कमरा सड़क से लगकर है। इसी कमरे में पढ़ाई-लिखाई होती है और इसी में रात गुज़रती है किन्तु नींद खुलने के बाद तलब सी लग जाती है। वजह, एक तो विचार नियंत्रण कर लेने वाली आवाज़, दूसरे उसका हाल ही में नया-नया देखा हुआ उसका रंग-रूप, तीसरा उसकी चाल। नींद खुलते ही खिड़की की दरार से निगाहें उस पर थिगा देता। पतंग उड़ाने वाले की नज़र पतंग पर टिकी रहती है ठीक वैसे। वह न पतंग थी और न ही मेरे हाथों में कोई डोर। मन की एक अदृश्य डोर उससे अंजाने ही जुड़ गई। इस उम्र में यह लगाव भी स्वाभाविक ही था। फिर भी उम्र ऐसी नहीं थी कि इस बारे में बहुत आगे तक सोच पाता। कुछ खास लेना-देना भी नहीं था उससे। बस इतना भर था कि उसे इस तरह देखना अच्छा लगता, भीतर से पुलक उठने लगती।

नियम बन गया। खिड़की की संध से होकर मेरी नज़रें दूर तक जातीं और अंत में ढूँढ़ते हुए उस पर टिक जातीं। मेरे घर की यह सड़क, सड़क नहीं अपितु दोनों तरफ़ बने हुए घरों के बीच से गुज़रती एक वीरान गली है, जिसके किनारे कोई वृक्ष नहीं है। धूल उड़ती रहती है। कई बार धूल पतझड़ के संकेत देती रहती। फागुन आने में कुछ दिन शेष हों तो सुबह थोड़ी ठंडी और सुकून देने वाली होती हैं, दोपहर कुछ गर्म और शाम नशीली। उन दिनों की सुबहें ही नशीली साबित हो रहीं थी। बहुत देर तक कहीं खोया रहता। यह तल्लीनता तभी भंग होती जब भीतर से दादाजी की पूजा की घंटी टुनटुनाती या फिर कचरे से भरी हाथ गाड़ी को ठेलते हुये, वह मेरी गीली, ठंडी और कठोर हो चुकी आँखों से निकलकर, गली से बाहर जाने की स्थिति में आ जाती। तब मैं हथेलियों को एक-दूसरे पर रगड़ता और गर्म हथेलियों से अपनी आँखों को ऊष्मा प्रदान करता। मैं तंद्रा से बाहर आकर सचेत हो जाता। ऐसे समय अक्सर मुझे भान आता कि मेरा ब्लेडर भर गया है और उसका तुरंत खाली हो जाना अत्यंत आवश्यक है।

उसकी उम्र और मेरी उम्र में कोई साम्य नहीं था। मैं हाई स्कूल का विद्यार्थी और वह एक नव-विवाहिता। उसमें और मुझमें कुछ बरस का अंतर तो होगा ही, मुझे जिसका मान रखना चाहिए किन्तु मेरे भीतर अनुभूतियों के अंकुर फूटते रहते। इस मनोविज्ञान से तो मैं, उस उम्र में पूर्णतः अंजान ही था। मैं क्या, मेरी उस आयु का कोई भी किशोर इसका विश्लेषण करने में समर्थ नहीं होता।

इन घटनाओं को अब सोचता हूँ तो याद आता है कि बहुत दिनों तक मैं उसका चेहरा नहीं देख पाया था। उसकी सामाजिक परम्पराओं के घूँघट ने मुझे बेज़ार रखा था। उसकी शारीरिक बनावट और त्वचा के रंग से ही उसके चेहरे की रोज़ नई-नई मूरत गढ़ता रहता। गेहुँए रंग की कई स्त्रियों को ध्यान से देखा करता, उनके नख से शिख तक अंग-प्रत्यंग का जायज़ा लेकर, तुलना उससे करता। गर्दन, कंधे, वक्ष प्रदेश, कटि प्रदेश और शरीर के आकार की जाने कितनी

छविyaँ निहारने के बाद भी उसके मुख-मण्डल की ठीक-ठीक कल्पना नहीं कर सका। इस मामले में मेरी कल्पना का मुखमण्डल, सामने से गुजर रही महिलाओं या साथ पढ़ रही स्कूल की भोली सूरत से आगे नहीं जा सकी। अंदाज़ की सटीकता को लेकर असमंजस की स्थिति में लगभग असंतुष्ट ही बना रहा। अब मैं खिड़की को थोड़ा सा खोलकर बैठने लगा था। लगता कभी तो उसका घूँघट हटेगा, कभी तो उसका मुख-मण्डल दिखाई पड़ेगा !

उस दिन उसका काम खत्म होने को ही था कि फाटक पर आकर माँ ने उसे आवाज़ दी... "राधा बाई... जाने के पहले मिलते हुये जाना।" मैं अपने कमरे से बाहर, ब्रश पर टूथपेस्ट लेकर, आँगन में टहलते हुये ब्रश कर रहा था तभी उसका आना हुआ। "आँटी जी..." उसके स्वर मेरे कानों में मंदिर की घंटी जैसी बजी। लगा जैसे यह आवाज़ पहले भी कहीं सुन चुका हूँ। माँ अंदर से एक साड़ी, ब्लाउज पीस, कुछ कच्चा अनाज और सौ रुपए लेकर बाहर आई। आँगन में उसे बैठाया और गोद में अर्पित कर दिया। माँ उससे बोली "राधा- शादी में तो हम आ नहीं सकते थे, सोचा तुम आओगी तो घर पर ही गोद भरेंगे।" सोचता रह गया, आखिर माँ ने उसे आदर पूर्वक अंदर क्यों नहीं बुलाया, घर के बाहर तक ही क्यों सीमित रखा ? इतना तो पता था कि "ब्राम्हण-शूद्र" जैसा कुछ मसला है, तभी तो माँ ने उसे जो भी दिया, उसकी गोद से एक फीट ऊपर से छोड़कर ही दिया।

उस दिन उसका चेहरा देखने को मिल गया। मुख-मण्डल का सौन्दर्य ऐसा कि मेरी आँखें और मुँह दोनों एक साथ खुल गए और टूथपेस्ट के झाग सहित कुछ हिस्सा मेरे कपड़ों पर टपक गया। उसने घूँघट ओढ़ा तब तक मैं भागकर बेसिन तक पहुँच चुका था। मैं नहीं चाहता था, माँ मेरा खुला मुँह और फटी आँखें देख ले और उन्हें मेरी किसी बेजा हरकत का अहसास तक छू जाए। वैसे भी माँ, पिताजी से ज़्यादा सतर्क रहकर मेरी किशोरवय को अपने नियंत्रण में रखती है, यह मैं जानता था।

अब मेरे भीतर से बाहर तक उत्कंठा और

कौतूहल ने हमला करना आरंभ कर दिया था। जिज्ञासाओं के कीड़े भीतर कुलबुलाने लगे थे। यदि राधा नव-विवाहिता है तो नगर-पालिका की कर्मचारी तो हो ही नहीं सकती !! इसके आने के पहले तो इसकी सास झाड़ू-सफाई के लिए आया करती थी, तो क्या उसके बदले अब इसे...? ऐसी कौन सी मजबूरी है कि नई बहू से भी काम लेना पड़ता है ? क्या यह सामाजिक, जातिगत अथवा पुश्तैनी कोई अनिवार्य परंपरा है ? क्या राधा, इस काम को सहर्ष करती है ? इतने सलीके से रहती है तो निश्चित ही पढ़ी लिखी भी होगी... फिर भी यह काम ? ज़रूरी है क्या ? विरोध क्यों नहीं करती ? अनेपक्षित प्रश्नों की श्रृंखला से उठते बैठते सामना होने लगा। अतिरेकी उत्सुकता घर करने लगी। मेरे किशोर मन के पास किसी प्रश्न और किसी आदि-इत्यादि का कोई उत्तर नहीं था। माँ या किसी और सदस्य से पूछ लेना मेरी फितरत में भी नहीं था। खुद ही सब कुछ पता कर लेने का एक संकल्प जाग उठा।

अब यदा-कदा मैंने उसका पीछा आरंभ कर दिया। जैसे ही गली के बाहर हाथ गाड़ी लेकर वह निकली, पीछे जाकर देखा तो पता लगा कि लगभग दो गलियों को छोड़कर मैदान के किनारे बड़ा सा कंटेनर रखा हुआ है, हफ्ते में एक बार जिसे उठाकर एक ट्रेक्टर, ट्रेचिंग ग्राउंड तक ले जाता है। उसी में मोहल्ले भर की यह गंदगी उंडेल दी जाती है, इस कंटेनर से हवा के साथ अक्सर बदबू का भभका उठा करता है। उसकी सास भी उसे वहीं मिल जाती, जो यही काम किसी और गली में सम्पन्न कर इसी प्रक्रिया का पालन करती है, फिर सास-बहू घर के लिए प्रस्थान कर जाती हैं। अब उत्कंठा उसका घर जानने की होने लगी। एक दिन पीछे-पीछे गया तो देखा, दोनों कोई डेढ़ किलोमीटर का पैदल सफ़र तय कर, गांधी नगर के गेट से अंदर चली गई हैं।

गांधी नगर बस्ती पहले नगर के छोर पर हुआ करती थी, किन्तु अब नगर का विस्तार, रेल्वे लाइन के उस पार दूर तक हो चुका है। गांधी नगर में लगभग ढाई सौ घर होंगे। छोटे-छोटे ऐसे घर जो नगर निगम ने इन्हें क्वार्टर्स के

नाम पर दे रखे हैं। गली के अंत में आठ-दस घरों के बीच पाँच कॉमन संडास बने हुये हैं। दुर्भाग्य से पहली ही गली के इस संडास वाले कोने से मेरा गुजरना हुआ, दुर्गंध का एक तीखा भभका मेरा मन मलिन कर गया। नाक पर हथेली रख, भोंडा सा मुँह बनाकर तेज़ी से मैं इस हिस्से को पार कर गया।

लौटते वक़्त मैंने सोचा जब ये घर बने होंगे तब एक मंजिल के डेढ़-दो कमरों के इन मकानों में दो-तीन सदस्य रहते होंगे। सदस्यों की संख्या भी बढ़ी होगी, कैसे रहते होंगे ये लोग इस कोठरियों जैसे मकानों में ? प्रश्न कौंध गया। मैंने देखा नाली किनारे, एक मादा सूअर अपने दस-बारह दुधमुँहे बच्चों के साथ कीचड़ में पड़ी है। राधा बाई भी ऐसे ही एक मकान में रहती है। सास-ससुर के अतिरिक्त घर में जेठ-जेठानी भी हैं। उस समय मेरी समझ नहीं आता था कि राधा बाई जैसे सैंकड़ों परिवार इस बस्ती में कैसे जीवन यापन करते होंगे। फिलहाल मेरी प्राथमिकता में यह सब नहीं था। एक गहरा जुड़ाव मेरा राधा बाई से होता चला आया था, जानना ज़रूरी लगा शायद इसी कारण इस बस्ती से साक्षात्कार करने चला आया।

जब से उसकी आवाज़ ने मुझे सम्मोहित और मुख-मण्डल ने मोहित किया, एक अजीब सी सिहरन मेरे शरीर में हरकत करती रहती। अब मैं खिड़की को थोड़ा खुला रखने लगा था। सुबह जितना भी समय खिड़की पर गुज़रता वह दिन भर की प्रफुल्लता के लिए काफी था। धीरे-धीरे आसक्ति में वृद्धि होती गई। एक दिन उसका काम पर आना नहीं हुआ। उथल-पुथल सी मच गई, चैन से बैठना मुश्किल जान पड़ा, पढ़ाई में मन भी नहीं लगा। दोबारा सो जाने की इच्छा ने भी हार मानकर बिस्तर से उठा दिया। उठकर दूसरी गली का चक्कर भी मार आया। राधा बाई की सास अपने काम में मग्न दिखाई पड़ी। कुशंकाओं ने फिर माथा पकड़ लिया। पास ही के बगीचे में जाकर पेड़ के नीचे जा बैठा। न पेड़ पौधे अच्छे लगे, न फूल और न ही करीने से लगाई गई बगीचे की नर्म अमेरिकन नेपियर दूब। कोहनियों को पैर पर रखा और हथेलियों

से माथा पकड़कर बैठा रहा। मेहँदी हसन द्वारा गाई गई गज़ल याद आ गई "गुलों में रंग भरे बाद-ए-नौ-बहार चले।" अंजाने ही गुनगुनाने लगा.... "कभी तो सुबह तिरें कुंज-ए-लब से हो आगाज़, कभी तो शब, सर-ए-काकुल से मुश्क-बार चले।" इसका ठीक-ठीक अर्थ पता नहीं था, और इससे कोई सरोकार भी नहीं था। अपने मोबाइल पर आज दो-तीन बार सुना। उदासी की बदली कुछ छटने लगी तब घर चला आया।

घर आना भी, घर आने जैसा नहीं लगा। बस एक डेरा था जो बंजारे का डेरा प्रतीत हो रहा था। स्कूल चले जाना ही श्रेष्ठ विकल्प लगा। तैयार होकर साइकिल निकाली फिर भीतर रख दी। पैदल निकल गया। समय जो काटना था। रास्ते भर लोगों के चेहरे ताकता रहा। कोई अपना नहीं लग रहा था न ही किसी चेहरे पर रौनक दिखाई पड़ी। सड़क रुकी पड़ी थी और मैं चल रहा था। स्कूल आ चुका तो लगा आज स्कूल भी उदास है। इमारत चुपचाप खड़ी है। तन्हा। पेड़ खामोश हैं, हवा की सरसराहट बंद है और पेड़ों की पत्तियाँ झूल रही हैं। सोचा शायद इनकी भी सुबह आज ठीक से नहीं हुई। फिर कानों में सुनाई पड़ा... "कभी तो सुबह तिरें कुंज-ए-लब से हो आगाज़।" चुपचाप कक्षा में जाकर बैठ गया। दोपहर बाद छुट्टी होते ही शांत क्रदमों से घर लौटा और आकर बिस्तर पर पड़ गया।

आज सुबह राधा बाई के कार्य सम्पन्न करके जाने के बाद मन में विचार आया "तुझे देखकर तसल्ली मिलती है, वरना यह सुबह अधूरी लगती है"। कवि हो जाने का भान हुआ। इस वाक्य को दोहरा पाता उससे पहले ही अचानक माँ मुझ पर बिफर पड़ीं। इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। आते ही खिड़की के पल्ले जोर से बंद किए और मुझे लगभग खींचते हुये भीतर ले गईं। मेरी हरकतों की अच्छी तरह लानत-मलामत की और बुरी तरह झिंझोड़ कर, हाथ उठाने की वाली थी कि दादा जी बीच में आ गए। "क्या करती है बहू? ऐसा क्या कर दिया इसने जो सुबह से घर में कोहराम मचा रखा है।" दादा जी ने मुझे वहाँ से हटा दिया। उसके बाद माँ के साथ उनकी



जो बातें हुई वे मुझ तक नहीं पहुँची। इतना अंदाज़ जरूर लगा कि दादा जी ने माँ को कुछ समझा दिया है। "किसी दिन तो यह होना ही था", मैंने सोचा किन्तु यह नहीं जान पाया कि माँ मुझ पर कब से निगरानी रख रही है। मन उदास होकर गर्त में जाने लगा। मैंने खुद को अपराधी और अवसाद से घिरा पाया। अब न पढ़ाई में मन लगता न स्कूल में दोस्तों से बहलता और न ही हँसी-मजाक ही सुहाता। एक अजीब सी कश्मकश से गुजरते हुये घर से स्कूल और स्कूल से घर आता-जाता रहता। माँ ने मेरा कमरा भी बदल दिया था। अब दादा जी मेरे साथ अधिक समय बिताने लगे थे। मुझे अपने बचपन और गाँव के क्रिस्से सुनाते। उनकी बातों ने धीरे-धीरे मुझे अहसास करवा दिया कि मैं जो कर रहा था, उसे किसी भी स्तर से अच्छा नहीं कहा जा सकता। प्रेम की तलाश जरूरी नहीं कि किशोर अवस्था में प्रेमिका से ही मिले। मैं दादा जी के प्रति प्रेम और आदर से भरने लगा। उनके जीवन भर के अनुभवों ने मेरा हाथ थाम लिया और मुझे अवसाद से घिरने से रोक लिया। उनके प्रति मेरी श्रद्धा इस क्रदर बढ़ गई कि जब दादा जी स्वर्ग सिधार गए तब अग्नि संस्कार के समय मेरा मन धधकती चिता में कूद जाने का हुआ किन्तु लोगों की उपस्थिति ने थामे रखा। जब सारे लोग चिता को पंच-लकड़ी देकर लौट रहे थे, लोगों के बीच से तेजी से मैं आगे बढ़ गया फिर मैंने शमशान घाट की नदी के पुल की ओर दौड़ लगाई और

बीच पुल पर जाकर नदी में छलाँग लगा दी। चार तैराक भी मेरे पीछे कूदे और मुझे जिंदा नदी से खींच लाए। किसी ने पूछा ऐसा क्यों किया तो मुँह से बस इतना निकला "मेरे मन को समझने वाले दादा जी तो गए, अब जीने की इच्छा नहीं बची"।

इस घटना के बाद माँ का ममत्व मेरे प्रति बढ़ता चला गया फिर भी दादा जी के जाने से खाली हुये स्थान ने मेरे मन के भीतर का एक कोना खाली रख छोड़ा था। पिता जी शनिवार को तीन सौ किलोमीटर से आते और रविवार रात चले जाते। उनके लिए मेरी भावनाएँ हमेशा से अलग तरह की रहीं। उनके और मेरे बीच की सैद्धांतिक दूरी को कभी न पिता जी ने पाटने का प्रयास किया न मैंने।

माँ पहले पिता जी के पास अधिक नहीं जाती थीं किन्तु दादा जी के चले जाने के बाद, जिम्मेदारियाँ कम हो जाने से अब जाने लगीं हैं। पिता जी का साप्ताहिक फेरा बच जाता है। माँ जाती हैं तो मेरे खाने की व्यवस्था दो गली छोड़कर रह रहे चाचा जी के घर कर जाती हैं। इस बार माँ पंद्रह दिनों के लिए गई हैं अतः मन और घर कुछ ज़्यादा खाली-खाली लग रहा था। राधा बाई को निहारने की कोई बंदिश मुझ पर नहीं थी। सुबह का एक घंटा उसे देखने में ही बीतने लगा था किन्तु मन अब उससे बात करने को बेचैन होने लगा। मैंने आँगन में कूड़ा एकत्र करना आरंभ कर दिया और एक दिन राधा बाई को बुला कर कहा "राधा बाई, मम्मी नहीं हैं... आँगन में ढेर लग गया है... आप इसे साफ कर देंगी क्या?" राधा के मन में तो कुछ था ही नहीं। उसने सहर्ष हाँ कह दिया और सफाई में लग गई। जब वह जाने लगी तो मैंने कहा... रुको राधा... पानी पी जाओ। सामने से प्रश्न उछला... "हम कैसे पी सकते हैं आपके बर्तन में पानी?" मैंने कहा... "मैं यह सब नहीं मानता... रुको मैं लाता हूँ।" राधा रुक गई। मेरे दिल की धड़कनें तेज हो आईं। दौड़कर लोटा-गिलास भर लाया। राधा ने धोने के लिए हाथ आगे कर दिये। गुलाबी हथेलियाँ देख मेरा मुख मण्डल लाल हो गया। धड़कनें फिर से बढ़ गईं। हाथ धुलाकर मैंने गिलास आगे बढ़ाया तो राधा ने दोनों हथेलियों की



सोलो ट्रेवलिंग गरिमा चवरे

"ओह दादी मैंने आपको कितना मिस किया।" श्रेष्ठा ने दादी के गले में बाँहें डालते हुए कहा।

"यह जो घूमने-फिरने के विडियो बनाती रहती है तू ऑफिस वाले कुछ कहते नहीं तुझे।"

"दादी मैं तो केवल छुट्टी वाले दिन घूमने जाती हूँ। हफ्ते में पाँच दिन काम, और बाकी का समय अपने शौक 'सोलो ट्रेवलिंग' को देती हूँ।"

"काम तो बेटा हमने भी खूब किया, घर पर भी और खेत पर भी। लेकिन छुट्टियों में जब भी बाहर जाते थे, सारे परिवार वाले साथ, और कभी-कभी तो कुछ रिश्तेदार भी साथ होते थे।"

"लेकिन दादी वह ज़माना और था, ज़िंदगी हमसे और हम ज़िंदगी से क्या चाहते हैं, वह जानने के लिए कभी-कभी सबसे दूर हो जाना अच्छा होता है।"

"बेटा वह जानने के लिए तुम्हें कहीं बाहर नहीं, अपने भीतर जाना चाहिए, रोज़ कुछ देर के लिए। तब होगी असली, क्या कहते हैं उसे 'सोलो ट्रेवलिंग'।"

000

श्रीमती गरिमा चवरे

द्वारा श्री निशांत चवरे, 67,

रिटायर्ड कालोनी,

रतलाम मप्र 457001

ईमेल- gchawre660@gmail.com

ओक बना दी। कहा कुछ नहीं... सिर्फ आँखें ऊपर कर इशारा कर दिया। मैंने पानी की धार उसकी हथेलियों में छोड़ दी। उसके गले से पानी बड़ी शांति से नीचे उतारने लगा था। गले के नीचे जो दिखाई दिया उसकी अब तक सिर्फ कल्पनाएँ ही करते आया था। सिहरन पूरे शरीर पर तारी हो गई। पानी पीकर उसने गीले हाथों से चेहरा ठंडा किया और हाथ पल्लू से पोंछ लिए। उसके मुख मण्डल ने मेरे भीतर एक सौम्य छवि भर दी, जिसे भूलना मेरे लिए कभी संभव नहीं हो सका। मैं समझ नहीं सका आज जो कुछ मेरे शरीर से होकर गुज़रा वह आकर्षण था या उसके प्रति मेरा प्रेम। राधा जाने लगी तो मैंने कहा "आपसे कुछ पूछना था।" राधा रुक गई। मैंने ताबड़तोड़ अपने प्रश्न दागना शुरू कर दिये। "मायका कहाँ है?", "यह काम क्यों करती हो?", "कहाँ तक पढ़ी हो?", "पढ़ी लिखी हो तो कहीं और नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं?"

दो-तीन प्रश्नों के उत्तर देकर राधा, यह कहकर चली गई कि मुझे देर हो रही है। सासू जी अगली गली में मेरा रास्ता देख रही होंगी। आज के इस प्रसंग पर मन खुशी से भर रहा था, तो एक उदासी खुशी के ऊपर दूध में मलाई की तरह जमने लगी थी। अब मैं तीन दिन कूड़ा एकत्र करता और उसे बुला लेता। उससे बातें करता। पता लगा बड़े शहर का मायका है उसका। कॉलेज में पढ़ती है। एम.ए. हिन्दी साहित्य उत्तरार्द्ध में पढ़ रही थी कि शादी हो गई। परीक्षा देने जाने वाली है। उसी ने बताया कि यह तो हमारे समाज की परंपरा है, हमारी भाभी ने भी मेरी माँ के साथ यही काम शादी के बाद से आरंभ कर दिया था। इसमें हमें लज्जा नहीं आती और न ही किसी तरह की ग्लानि होती है। शहर बढ़ता है तो नगर निगम हमें रजिस्टर कर इस काम का वेतन देने लगता है। आखिर नए सफाई कर्मी आएँगे कहाँ से? समाज आगे बढ़ रहा है तो नए बच्चे अच्छे जॉब में बाहर जाने लगे हैं। कम पढ़े लिखे यही काम करते हैं। इतना जानने के बाद मैंने ही उससे कहा था तुम? तुम अच्छा जॉब क्यों नहीं कर लेतीं? जवाब मिला था करूँगी...पी.जी. के बाद! कहीं न

कहीं तो मिल ही जाएगा। नहीं तो प्रतियोगी परीक्षाओं की कोचिंग खोल लूँगी। जब तक कुछ नहीं, सासू जी के साथ यही सही.... इतना कहकर उसके मुख पर संतोष की जो मुस्कान आई थी उसने मुझे गहन विस्मय में छोड़ दिया था। और मैं अवाक् दूर तक उसे जाते हुये देखता रह गया था। किन्तु इस मुलाकात के कारण हमारे बीच निच्छल रिश्ता बन गया था। शायद उसे पहले से आभास था मैं उसे खिड़की से देखता हूँ। मेरे घर के सामने आते ही चेहरे पर छाई परदेदारी कुछ कम हो जाती थी। मैंने कई बार उसे खिड़की की तरफ नज़र उठाते और मुस्कराते देखा था।

कुछ दिनों बाद वह परीक्षा देने चली गई और इधर मेरे ट्वेल्थ के एग्जाम सम्पन्न हो गए। समाज शास्त्र में आगे पढ़ाई के लिए मैंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की परीक्षा दे रखी थी। समाज शास्त्र के प्रति रुचि मेरी राधा के कारण ही जागी होगी। जब से उसकी बस्ती में जाकर आया था तभी से निचले तबकों के जीवन के प्रति शोध का अभीष्ट मन में घर कर गया था। मुझे आगे पढ़ाई के लिए बनारस जाना था।

अवसर देखकर मैंने राधा को इस बारे में बता दिया साथ ही यह भी कहा कि तुम्हारी बस्ती पर अध्ययन करने का अवसर मिला तो तुमसे सहयोग लेने तुम्हारे घर जरूर आऊँगा। बनारस आकर अपनी ही एक सहपाठी से मुझे इश्क हो गया। किन्तु राधा मेरे जेहन से कभी नहीं निकली। बचपन की दहलीज़ लाँघते हुये राधा मेरा पहला प्यार जो थी। कैसे भूल जाता उसे।

समाज-शास्त्र की पढ़ाई के दूसरे सेमेस्टर में लघु शोध प्रबंध के लिए मैंने 'मलिन बस्ती का अध्ययन' चुना और अपनी प्रेमिका के साथ उसके घर चला आया। पता लगा राधा को उसके ही शहर में, उसके ही कॉलेज में एडहॉक पर जॉब मिल गया है और अब वह पीएच.डी कर रही है। मैं वापस बनारस आ गया हूँ किन्तु अपनी प्रेमिका को बिना बताए राधा से मिलने जाने का मार्ग अभी भी खोज रहा हूँ।

000

मैं क्या करूँ, प्रभाष डॉ. पूरन सिंह



डॉ. पूरन सिंह

240 एवं 935 डी

बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई

दिल्ली-110008

मोबाइल- 9868846388

ईमेल- drpuransingh64@gmail.com

'सर कोई पाठक जी आपसे मिलना चाहते हैं।' चपरासी हाथ बाँधे खड़ा था।

'कहाँ से हैं।'

'सर कोई एनजीओ चलाते हैं।' चपरासी को जैसा साहब के सीनियर पी.पी.एस ने बताया था, वही बता रहा था।

'ठीक है। दस मिनट बाद उन्हें भेजो। अभी कुछ जरूरी फ़ाइलें साइन करनी हैं।' प्रभाष कुमार ने चपरासी से कहा। चपरासी चला गया था।

प्रभाष कुमार भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय में सुयुक्त सचिव हैं। केरल काडर के अधिकारी हैं। दबंग आई.ए.एस. में गिने जाते हैं। शायद ही कोई विभाग या मंत्रालय रहा हो, जहाँ दो साल रहे हों। नेताओं या मंत्रियों से छत्तीस का आँकड़ा है। यही कारण है कि लोग उनकी कर्तव्य-निष्ठा और ईमानदारी के क्रायल हैं। समाज में हाशिए पर फेंके गए समुदाय से हैं, सो इमोशनल भी हैं और सहृदय भी। ब्यूरोक्रेट हैं लेकिन विनम्र भी।

प्रभाष कुमार ने काम पूरा कर लिया था। बेल बजाई। चपरासी भागता हुआ आया। इशारा किया कि पाठक जी को भेजो।

कुछ ही पलों में, पाठक जी, प्रभाष कुमार के समक्ष हाथ बाँधे खड़े थे।

सोफ़े पर बैठने का इशारा किया था।

पाठक जी बैठ गए।

प्रभाष कुमार अपनी सीट से उठे और पाठक जी के पास ही आकर बैठ गए थे।

'जी।' इतना ही कहा था।

'सर मैं, पाठक हूँ। भारतीय भाषा परिषद् नाम की हमारी एक संस्था है। हमारी संस्था हर साल हिन्दी के उन्नयन और विकास में समर्पित व्यक्तियों को सम्मानित करती है। साथ ही समाज में ग़रीबों, असहायों के लिए समर्पित लोगों को भी परिषद् पुरस्कार देती है। पुरस्कार दिवस पाँच अक्टूबर को, हम ये आयोजन करते हैं सर।' डॉ. पाठक पूरा ब्यौरा दे रहे थे कि बीच में ही रोक दिया था प्रभाष कुमार ने।

'मुझसे क्या अपेक्षा है, पाठक जी।' बहुत विनम्रता से पूछा था प्रभाष कुमार ने।

'सर परिषद् के स्थापना दिवस पर आप चीफ़ गेस्ट रहें, यह मेरा आग्रह है।' पाठक जी ने अपना उद्देश्य बता दिया था।

'दो मिनट।' इतना ही कहा था प्रभाष कुमार ने और अपने सीनियर पी.पी.एस. को बुला लिया था। सीनियर पी.पी.एस. उनके आगे अपनी नोटबुक लिए खड़ा था।

'पाँच अक्टूबर को कोई जरूरी मीटिंग तो नहीं है। अगर नहीं है तो पाठक जी के लिए देख लो। मुझे पाठक जी के कार्यक्रम में जाना है।' कहा था प्रभाष कुमार ने।

'सर पाँच अक्टूबर को सनडे है।' सीनियर पी.पी.एस ने पूरा ब्यौरा दे दिया था।

'मतलब हम जा सकते हैं।'

'जी सर।' सीनियर पी.पी.एस ने हाँ में सिर हिला दिया था।

'ठीक है पाठक जी हम आएँगे आपके आयोजन में। पक्का।' प्रभाष कुमार ने अपनी

स्वीकृति दे दी थी।

तभी चपरासी चाय और बिस्कुट ले आया था। उसने दो प्यालों में चाय डाल दी थी। सीनियर पी.पी.एस. ने आज्ञा ली और वह कमरे से बाहर चला गया था।

पाठक जी और प्रभाष कुमार चाय पी रहे थे। बातें भी कर रहे थे। तभी एडीशनल सेक्रेटरी साहब का फ़ोन आ गया।

प्रभाष कुमार ने पाठक जी से कहा, 'सर का फ़ोन है।' जिसका सीधा अर्थ था कि उन्हें जाना होगा। चाय भी ख़त्म हो गई थी।

पाठक जी को आश्वस्त कर दिया था उनके आयोजन में जाने के लिए, सो पाठक जी भी चलने लगे थे। पाठक जी बहुत खुश थे।

000

पाँच अक्टूबर..

अटल सामाजिक समता स्थल के हाल नंबर तीन को दुल्हन की तरह सजाया गया था। यहीं आयोजन था भारतीय भाषा परिषद् का।

बाहर बड़े-बड़े टेलीविजन लगे थे जिन पर लाइव दिखाया जाना था सारा कार्यक्रम। बड़े-बड़े होर्डिंग्स लगे थे। हाल के अंदर की सुंदरता अद्वितीय थी। फूलों से मंच सजा था। महान् व्यक्तियों के विचारों को पोस्टर का रूप देकर सजाया गया था। मंच के ठीक पीछे बहुत सुंदर बैनर लगा था जिस पर 'भारतीय भाषा परिषद् का वार्षिक उत्सव एवं पुरस्कार वितरण समारोह' लिखा था। ठीक उसके नीचे लिखा था, 'मुख्य अतिथि माननीय प्रभाष कुमार जी, संयुक्त सचिव संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार।' फिर उसके नीचे परिषद् के अध्यक्ष डॉक्टर सुधारक पाठक जी का नाम और दूसरी ओर महासचिव आर. के. सक्सेना का नाम चमक रहा था।

मंच पर पाँच कुर्सियाँ सजाई गई थीं; जिनपर अतिथियों को सुशोभित होना था।

मंच के ठीक सामने दो पक्तियाँ रिजर्व थीं। विशिष्ट अतिथियों के लिए और उसके बाद तीन पक्तियाँ पुरस्कार विजेताओं और अन्य समाज सेवियों के लिए थीं, जिन्हें सम्मानित किया जाना था, उसके बाद समग्र अतिथिगण।

हाल ख़चाख़च भरा था। मंच पर

संचालक महोदय संचालन कर रहे थे। बीच-बीच में कुछ शेर सुना देते तो कभी हिन्दी साहित्य के पुरोधाओं की सारगर्भित पक्तियाँ भी।

तभी घोषणा हुई कि अब माननीय मुख्य अतिथि श्री प्रभाष कुमार पधारने वाले हैं।

घोषणा हो ही रही थी, तब तक श्री प्रभाष कुमार आ गए। उनके साथ परिषद् के अध्यक्ष डॉ. पाठक और अन्य गणमान्य व्यक्ति भी थे।

पाठक जी ने सीधे मंच पर चलने को कहा, तो प्रभाष कुमार मंच पर रखी कुर्सियों में पाठक जी के इशारे पर बीच वाली कुर्सी पर बैठ गए। उनके इधर-उधर परिषद् के संरक्षक, डॉ. पाठक जी और दो अन्य महानुभाव जिनमें एक स्थानीय विधायक और एक वयोवृद्ध साहित्यकार सुबोध सक्सेना भी थे।

आयोजन शुरू हुआ ही था कि प्रभाष कुमार के मोबाइल पर मैसेज आ गया, 'मीट आफ्टर वन आवर प्लीज', मैसेज उनके सचिव महोदय का था।

प्रभाष कुमार ने पाठक जी के कान में यह बात बता दी जिसका सीधा अर्थ था कि पुरस्कार वितरण और मुख्य अतिथि का वक्तव्य पहले करा लिया जाए।

पुरस्कार वितरण शुरू हुआ। प्रभाष कुमार के हाथों पुरस्कार दिलवाए जा रहे थे। वे बड़े प्यार और स्नेह से पुरस्कार वितरण कर रहे थे। उनके साथ शेष चारों महानुभाव भी थे।

पुरस्कारों के पश्चात्, समाज को अपना सर्वश्रेष्ठ देने वाले, समाज के लिए समर्पित व्यक्तियों को सम्मानित किया जाना था। सम्मान समारोह चल रहा था तभी....तभी उद्घोषक ने आवाज़ दी- 'अब आपके सामने सामाजिक कार्यकर्ता, समाज के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली, देश की गौरव, यंग जनरेशन के लिए प्रेरणास्रोत बहुत सम्माननीय, श्रद्धेया माया जैन जी से आग्रह है कि वे आएँ और आज के मुख्य अतिथि से सम्मान ग्रहण करें। उन्हें सम्मानित करके परिषद् स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रही है।'

प्रभाष कुमार को माया जैन नाम सुनकर कुछ लगा फिर उन्होंने अपने ही आप से कहा,

'अरे नहीं। वह यहाँ कहाँ।' हुआ भी यही। दर्शकदीर्घा से एक बहुत सुन्दर सी स्त्री चली आ रही थी। उसने क्रीम कलर की साड़ी पहनी थी। साड़ी के ही रंग का ब्लाउज। उनका ललाट चमक रहा था। घने सुनहरे, लंबे बाल लहर रहे थे।

लंबी पतली। सुघर। चाल हँसिनी सी, वे चल रही थीं तो लग रहा था मानों कोई विषकन्या चली आ रही हो।

जब वे मंच की प्रथम सीढ़ी पर थीं कि प्रभाष कुमार के मुँह से अनायास ही निकल गया था, 'माया।'

पाठक जी पास ही खड़े थे, 'आप जानते हैं सर।'

'हाँ, शायद नहीं।' इतना ही निकला था प्रभाष कुमार के मुँह से। तब तक वे...अर्थात् माया जैन पास आ गई थीं।

प्रभाष कुमार को देखकर 'तुम' निकलने ही वाला था उनके मुँह से कि रोक लिया था माया जैन ने अपने आप को सिर्फ़ 'आप' ही बोल पाई थीं।

प्रभाष कुमार ने सिर्फ़ आँखें झपकाई थीं जिसका सीधा अर्थ था 'हाँ मैं।' उद्घोषक लाइव कमेंट्री किए जा रहा था। वह माया जैन के गुणगान करता, तो कभी प्रभाष कुमार की प्रशंसा में दीवाना हुआ जाता था।

एक बहुत सुंदर सी शॉल, पाठक जी ने प्रभाष कुमार को दी। प्रभाष कुमार ने शॉल बड़े सम्मान से माया जैन को ओढ़ाई। फिर चाँदी का बना शिवलिंग, स्थानीय विधायक महोदय ने उन्हें भेंट किया।

एक बहुत सुंदर सी पुस्तक भी भेंट की गई माया जैन को, जिसे वयोवृद्ध साहित्यकार सुबोध सक्सेना जी ने ससम्मान दिया और अन्त में गुलाब के फूलों से सजा सुंदर-सा हार प्रभाष कुमार को दिया गया, जिसे माया जैन को सम्मान सहित पहनाना था।

प्रभाष कुमार ने गुलाब के फूलों से सजा हार हाथ में पकड़ा तो कुछ झनझना-सा गया अंदर तक। एक पल को जीवन के बीस साल सामने आकर खड़े हो गए हों। हाथ कैपकैपाए। स्वयं को सँभाला। पूर्ण रूप से संयमित हुए और हार माया जैन के हाथों में देने

लगे थे कि माया जैन ही बोली थीं, 'सर चाहे तो गले में ही डाल सकते हैं। अब पुरानी रूढ़ियाँ नहीं रहीं कि पुरुष किसी स्त्री के गले में हार डालकर सम्मानित नहीं कर सकता।'

'कोई बात नहीं। सम्मान ही तो है। स्त्री तो सदैव से पूजनीय और वंदनीय रही है, चाहे माँ हो, पत्नी हो या बहन।' प्रभाष कुमार सकपकाते हुए बोल रहे थे।

माया जैन समाजसेवी थीं। बोलना अच्छा तरह जानती थी। रोज़ ही किसी न किसी आयोजन में रहती थीं। प्रभाष कुमार ब्यूरोक्रेट थे। ऑफिस, मीटिंग, फ़ाइलें, जूनियर्स के अलावा देश-विदेश के टूरर्स। वे बाहरी दुनिया से बहुत दूर थे। माया जैन मुँहफट भी थीं कि बोल गई थीं, 'सर, आपने माँ, पत्नी, बहन बोला तो कुछ रह गया आपसे।'

'क्या।'

'प्रेमिका' माया जैन कभी चूकती नहीं थीं।

'प्रेमिका रिश्ता नहीं होता मिस जैन।' प्रभाष कुमार लगभग कँपकँपा रहे थे।

'तो क्या होता है सर।' माया जैन रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी कि तभी उद्घोषक ने घोषणा की, 'अब मैं अनुरोध करूँगा बहुत सम्मान के साथ, माया जैन मैडम से कि वे दो शब्द परिषद् और मंच तथा अतिथियों के लिए, समाज के लिए कहें तो हमें बेहद खुशी होगी। परिषद् उनका आभार मानेगी।'

माया जैन डायस पर आ गईं। माइक स्टैण्ड से उतारा। किसी फिल्मस्टार की तरह हाथ में लिया और बोली थीं, 'सम्मानिय मंच, पुरस्कार विजेताओं, उपस्थित विद्वतजन, मेरे साथियों अग्रज और अनुज। साहित्य समाज का दर्पण है। जीवन के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलने में संबल है।' फिर थोड़ी सी सँभली थीं, 'हिन्दी इस देश की मूल भाषा है। डॉ. सुधाकार पाठक जी के प्रयास देशहित में हैं। जब-जब देश का इतिहास लिखा जाएगा आदरणीय पाठक जी को याद किया जाएगा।' फिर प्रभाष कुमार की ओर देखकर बोली थीं, 'प्रेम, प्यार इस देश की नींव में है...जड़ों में है। प्रेम के बिना कोई राष्ट्र, राष्ट्र नहीं होता। प्रेम जीवन की अमूल्य निधि है। अब ये बात और है कि कुछ लोग प्रेम का मूल्य ही नहीं जानते।



सेक्रीफाइज़ प्यार का धरातल है लेकिन किसी की भावनाएँ न समझना, प्रेम का अपमान है।' फिर लगभग रुआँसी हो आई थी, 'काश यह बात कुछ लोग भी समझ पाते।'

इसके बाद वे एक शब्द नहीं बोल पाई थीं और मंच से अब वे उतर नहीं रही थीं, मानों भाग रही थीं। तालियों की गड़गड़ाहट से पूरा हॉल गूँज रहा था। स्थिति यहाँ तक हो आई कि लोग 'माया...माया..' करने लगे थे।

उद्घोषक ने उन्हें शांत किया था।

प्रभाष कुमार ने पाठक जी के कान में कुछ कहा था। पाठक जी सिर्फ गर्दन हिला रहे थे जिसका सीधा अर्थ था 'हाँ' उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा था, 'मैं ले आऊँगा, सर। पक्का।'

प्रभाष कुमार को ऑफिस जाना था। मुख्य अतिथिवाला वक्तव्य भी नहीं दे पाए थे। दोबारा सचिव सर का मैसेज आ गया था। वे चल दिए थे।

पाठक जी उन्हें छोड़ने चलने लगे तो प्रभाष कुमार ने उन्हें रोक दिया था, 'आप प्लीज़ प्रोग्राम सँभालें। हाँ, उस बात का ध्यान रखना। आपका आभार मानूँगा।'

'श्योर सर' कहकर पाठक जी मंच पर आ गए थे

प्रभाष कुमार को कुछ लोग उनकी गाड़ी तक छोड़ने गए। ड्राइवर गाड़ी स्टार्ट किए उनका इंतज़ार कर रहा था। वे बैठे। गाड़ी चलने लगी और साथ ही चलने लगा था बीस साल पहले का एक-एक लम्हा...

'माँ को नहीं देखा था। पिता बताते थे कि

माँ उनके पैदा होने के तीन महीने बाद ही भगवान् के घर चली गई थीं। लौटकर ही नहीं आईं। पिता ने ही पालन-पोषण किया और जब वे पाँच साल के थे तब पिता ने भी चलाचली की ठान दी।

पिता की मृत्यु पर सभी रिश्तेदार इकट्ठे हुए थे। पिता की मृत्यु के साथ-साथ दुख यह भी था कि अब इस मासूम बच्चे को कौन पाले। सुख में साथी होने का दावा करने वाले रिश्तेदार, एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे।

तब सावित्री बुआ ही आगे आई थीं। बुआ के कोई संतान नहीं थी। फूफा वही करते जो बुआ कहती थीं। बुआ ने ही अपने आँचल का सहारा दिया था। अपने घर ले आई थीं। पाला-पोसा, बड़ा किया। बुआ का घर क्रस्बे से दूर था। फूफा सिलाई करते थे। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की कमी न थी। पढ़ने लिखने में शुरू से ही होशियार थे प्रभाष कुमार सो बुआ-फूफा खूब खुश होते। बारहवीं तक तो कॉलेज था पास में ही घर के; लेकिन जब बीए में आए तो क्रस्बे में जाना पड़ता था। क्रस्बा अर्थात् महावीर नगर। यहीं कॉलेज था-महावीर दिगम्बर जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय। यहीं पढ़ने जाते थे साइकिल से। फूफा ने सेकेन्ड हैण्ड साइकिल खरीद दी थी। क्रस्बा उनके गाँव से आठ किलोमीटर दूर था लेकिन पढ़ने की लालसा और ऑफिसर बनने की महत्वाकांक्षा के आगे आठ किलोमीटर की दूरी कोई मायने नहीं रखती थी।

बीए का द्वितीय वर्ष था तभी मिली थी माया जैन उनसे। पढ़ती तो साथ ही थी लेकिन ठीक से बोलचाल बीए की दूसरी साल में ही हुई थी।

तब बीए अर्थात् स्नातक दो वर्ष की हुआ करती थी।

अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के साथ दोनों अंग्रेजी अर्थात् अंग्रेज़ी साहित्य और सामान्य अंग्रेज़ी विषय लिए थे। पहली साल में बहुत अच्छे नम्बर लाए थे प्रभाष कुमार। माया भी साथ ही थी लेकिन ज्यादा जान-पहचान तब नहीं थीं। हाँ इतना था कि वे साथ-साथ पढ़ती थीं।

माया क्रस्बे की ही रहने वाली थीं। उनके पिता नेमीचन्द्र जैन बहुत विनम्र, सरल, मृदुभाषी और बहुत पैसे वाले व्यक्ति थे। क्रस्बे में सदर मार्केट की आधी दुकानों के मालिक थे। दो बेटे और दो बेटियों में माया सबसे छोटी थी। दोनों बेटों की कपड़ों और जनरल स्टोर की बहुत बड़ी-बड़ी अलग-अलग दुकानें थीं। सभी की शादी-ब्याह हो गए थे। माया अभी पढ़ रही थी इसलिए इसकी शादी नहीं हुई थी।

कॉलेज से माया का घर मात्र दो किलोमीटर दूर भी नहीं था लेकिन वह घर से कॉलेज कार से आती थी जबकि प्रभाष कुमार आठ किलोमीटर एक तरफ़ से और आठ किलोमीटर दूसरी ओर से अपनी खचाड़ा साइकिल से कॉलेज आते-जाते थे।

माया से भी पहली मुलाकात बड़ी अलग ही तरीके से हुई थी। हुआ यह था कि प्रभाष कुमार अपनी खचाड़ा साइकिल चलाते हुए आ रहे थे। पीछे से माया की कार थी। ड्राइवर से कोई चूक हो गई कि न जाने सड़क पर कोई गड़ड़ा था सो गड़ड़ा बचाने के चक्कर में कार प्रभाष कुमार की साइकिल से टकरा गई। प्रभाष कुमार गिर पड़े और उनके हाथ में चोट लग गई। ब्लड आने लगा। ड्राइवर ने गाड़ी रोकी। प्रभाष कुमार की खचाड़ा साइकिल वहीं छोड़ी और उन्हें हॉस्पिटल ले गई माया अपनी ही कार से।

डॉक्टर ने एक्सरे किया। पता चला हाथ में फ्रैक्चर है। प्लास्टर चढ़ाना होगा।

तब माया अपने ड्राइवर को लेकर प्रभाष कुमार के हाथ पर प्लास्टर चढ़वाकर उन्हें, उनके घर छोड़ने गई थी। प्रभाष कुमार का साधारण-सा घर था। शायद यह पहली बार था जब इतनी महँगी और लंबी कार उनके गाँव में आई थी। बुआ ने देखा तो रोने लगी थी। प्रभाष कुमार को बुआ ने पैदा ही तो नहीं किया था, पाला तो बेटे की तरह ही था।

'अम्मा ज्यादा चोट नहीं है। प्लास्टर एक सप्ताह में कट जाएगा।' कहा था प्रभाष कुमार ने।

'ठीक है लला लेकिन पहले जा बात बता कौन कुत्ता, कुतिया थे जाने तोय टक्कर



मारी।' बुआ बोली थी। इसके पहले कि प्रभाष कुमार कुछ बोलते, माया ही बोली थी-

'मैं... मैं ही वो कुतिया थी आंटी जी।' बुआ सहम गई थीं। प्रभाष कुमार हँस दिए थे। माया भी हँसने लगी।

जब तक प्लास्टर नहीं कटा, माया प्रभाष कुमार को उनके गाँव से लाती और वापिस छोड़ कर आती थी। और इसी छोड़ कर लाने-लेजाने में प्यार पनपने लगा और जड़ें पकड़ लीं। दरअसल प्यार का कोई हिसाब-किताब तो होता नहीं है। यह बनिया का बही खाता भी नहीं है और न ही बैंक का अकाउंट जहाँ सब सही तरह से होगा। यह तो होना होता है तो हो जाता है। प्यार गरीबी-अमीरी नहीं देखता। ऊँच-नीच नहीं देखता। उम्र का मोहताज तो कभी रहा ही नहीं कि समान उम्र वालों में ही प्यार हो।

माया और प्रभाष कुमार का प्यार अमीरी-गरीबी के धरातल से उपजा निश्छल और ईमानदारी वाला प्यार था। ख़ैर होने को तो प्रभाष कुमार आठ-दस दिनों में ठीक हो गए थे; लेकिन माया रोज़ ही उन्हें लाने ले जाने लगी थी। यह वह समय था। जब लड़का-लड़की बात भी नहीं कर पाते थे, तब माया इतनी बोलूँ और बहादुर थी जो वह प्रभाष कुमार की दीवानी होने लगी थी।

बात फैली तो हवा में सुगंध सी महकने लगी। क्रस्बे के तमाम रईस लड़के जो माया से कम उसकी संपत्ति से ज्यादा प्यार करते थे, माया के चारों ओर मँडराते थे। एक दिन सबने

प्रभाष कुमार को घेर लिया।

'टूटी खचाड़ा साइकिल पर आते हो। माया की चप्पल की एड़ी पर पूरी औक्रात टिकी है तुम्हारी और उससे आशिकी करने चले हो। माया की छोटी उँगली के नाखून के बराबर भी नहीं हो। शर्म करो।' राजीव गुप्ता उन्हीं के साथ एक ही कक्षा में पढ़ता था, बोला था।

'और सुन माया से ज्यादा मत चिपका कर। पढ़ाई पर ध्यान दे। पढ़-लिखकर कहीं चपरासी-अपरासी बन जाना। मैं जानता हूँ सालों, तुम बड़े हरामी होते हो। रईस घरों की लड़कियों को फँसाते हो और उन्हें ले उड़ते हो। कभी दिखना मत उसके आगे-पीछे।' देवदत्त चौहान ने भी धमकाया था।

और यही सब बातें एक दिन प्रभाष कुमार ने माया को बता दीं।

ग़ज़ब हो गया था उस दिन। माया ने उन लड़कों को वे सुनाई, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।

कॉलेज का प्रांगण था। वहीं सब इकट्ठे थे तभी माया बोली थी, 'ए सुनो, तुमने मेरे प्रभाष को क्या बोला था। अगर आइंदा ऐसा कुछ बोला तो देख लेना। मैं माया हूँ, माया जैन। जैन बहुत ही विनम्र और सीधे-सादे लोग होते हैं; लेकिन अगर मेरी पूँछ पर पैर रखोगे तो डस लूँगी, हरामजादों।'

उस दिन के बाद कोई भी प्रभाष कुमार के सामने नहीं आता था।

उस दिन कुछ शेष भी नहीं रह गया था, सब कुछ शीशे की तरह साफ़ था कि प्यार अपने चरम पर है।

प्रभाष कुमार पढ़ने में तो होशियार थे ही, सो ख़ूब अच्छी तरह पढ़ते, नोट्स बनाते और उनके बनाए हुए नोट्स को ही माया भी पढ़ती। वार्षिक परीक्षा हुई। दोनों पास हुए। प्रभाष कुमार के बहुत अच्छे नंबर आए लेकिन माया पास ही हो पाई। माया पर इस बात का कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा।

बीए के अंतिम वर्ष के परिणाम आने के बाद माया ने ज़िद की, कि प्रभाष कुमार उनके पिता नेमीचंद्र जैन से मिलें। उस समय यह बहुत बड़ी बात थी और एक दिन माया ही ले

गई थी अपने पिता के पास प्रभाष कुमार को।

'पापा ये प्रभाष है। मेरे साथ पढ़ता है। हम दोनों....।' आगे नहीं बोली थी। नेमीचंद्र जैन सब समझ गए थे।

'तुम अंदर जाओ। मैं प्रभाष से कुछ बात करना चाहता हूँ।' बोले थे नेमीचंद्र जैन। माया अंदर चली गई थी।

'आपका नाम प्रभाष है।' पूछा था नेमीचंद्र जैन ने।

'जी।'

'माँ-पिता क्या करते हैं?'

'माँ-पिता नहीं हैं। बुआ-फूफा ने पाला है। फूफा सिलाई करते हैं। यहाँ से आठ किलोमीटर दूर गाँव है। वहीं रहते हैं।' निष्पक्षता और ईमानदारी प्रभाष कुमार का आज भी लक्षण है।

'मेरी बात सुनो।' चीखे नहीं ये नेमीचंद्र जैन बहुत प्यार से बोले थे, 'मैं अपनी बेटी के साथ आपकी शादी कर दूँगा। आप जीवन भर कुछ न करना। जीवन खूब शान शौकत से गुज़ार सकते हो। मेरे पास तमाम दुकानें हैं। धन है। दौलत है लेकिन मैं चाहता हूँ आप अपनी मेहनत से अर्जित करो। पढ़ लिया है। अच्छी सी नौकरी करो फिर माया तुम्हारी होगी। स्वाभिमान का जीवन, परजीवी के जीवन से लाख गुना अच्छा होता है। मेरी सारी धन संपत्ति में माया एक बटे चार की अधिकारी है लेकिन उसमें आप कहाँ होंगे। यह आप सोचें। मेहनत करो कठिन ताकि तुम अपने नाम से जाने जाओ, माया के नाम से नहीं। माया तुम्हारी है जब चाहे ले जा सकते हैं। स्वाभिमान से या परजीवी की तरह, यह तुम पर है।' नेमीचंद्र जैन विनम्र थे, उन्होंने प्रभाष कुमार को उनकी औकात नहीं बताई थी।

प्रभाष कुमार का स्वाभिमान जाग गया। झुककर पूरी श्रद्धा और सम्मान से नेमीचंद्र जैन के पैर छुए और उनकी सीख को गाँठ बाँध लिया।

माया ने पूछा था तो सारी बात सच-सच बता दी थी।

'नौकरी लगते ही बारात लेकर आ जाऊँगा।'

'और तब तक मैं क्या करूँ।' माया कोई आम लड़की तो थीं नहीं, जिसे झुनझुना दे दो और वह बजाती रहे।

'आप इंतज़ार करना। हमारे प्यार पर भरोसा करो। मैं बड़ा आदमी बनकर ही लौटूँगा।' कहा था प्रभाष कुमार ने।

माया को कितना संतोष आया कितना नहीं, यह तो वही जाने। फिर भी सिर्फ़ इतना ही पूछा, 'लौट कर आओगे तो।'

प्रभाष कुमार ने 'हाँ' में पलकें उठाई थीं और इसके बाद वे अपनी किताबें, कपड़े, लेकर दिल्ली आ गए थे।

फूफा सिलाई करते थे, सो उन्हीं से सिलाई का कुछ काम सीख लिया था। जब छुट्टियाँ होती थीं तो उनके पास बैठ जाते थे। दिल्ली में उनके गाँव के कुछ लड़के एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट में काम करते थे, उन्हीं के साथ काम पर लग गए, 'आप मेरा साथ देना। मैं भी काम करूँगा। आप पर बोझ नहीं बनूँगा। एग्जाम की तैयारी करूँगा।' लड़कों को खुशी हुई थी। इतनी बड़ी पढ़ाई करने वाला लड़का उनके साथ रहेगा।

बस पूरे दिन मेहनत करते। रात में उसी फैक्ट्री में सोते। सिलाई की मशीनें एक तरफ़ कर देते। जगह बन जाती। किताबों से जूझते रहते।

सिविल सर्विस की पढ़ाई मेहनत चाहती है। अथक मेहनत करते। जी तोड़ परिश्रम। यूपीएससी से फॉर्म भरा। समय से परीक्षा हुई और पहली ही बार में प्री क्लियर।

घर पर भी ख़बर भिजवा दी और किसी तरह से ख़बर माया जैन को भी मिल गई। माया खुश हुई। सपना साकार होने की तरफ़ था।

मेन के लिए बहुत ज़्यादा मेहनत करनी थी। फिर जुट गए और उसे भी क्लियर कर लिया। इस बार खुद गए गाँव और बुआ-फूफा को बताया तो बुआ-फूफा खुश हुए; लेकिन वह यह नहीं जान पाए कि उनका बेटा बहुत बड़ा अफ़सर बनने वाला है, वह सिर्फ़ इतना जान पाए कि उनका बेटा मेहनत करता है और जल्दी ही उसकी नौकरी लग जाएगी।

एक दिन माया से मिलने गए। माया बहुत खुश हुई। और वादा लिया, 'लौटकर तो

आओगे। मैं राह देखूँगी।'

'हाँ, जब पढ़ता हूँ तो तुम्हारा चेहरा याद रहता है, अगर इंटरव्यू भी क्लियर रहा तो सारा क्रेडिट तुम्हारा।' कहा था प्रभाष कुमार ने।

माया दबंग थीं। धनवान थीं। प्यार किया था लेकिन निश्छलता में जीवन का सच भूल गई थीं। बेईमान तो प्रभाष कुमार भी नहीं थे।

अगले दिन दिल्ली लौट आए थे प्रभाष कुमार। फिर जीतोड़ मेहनत की अर्थात् इंटरव्यू भी क्लियर और यूपीएससी की सिविल सर्विस परीक्षा में चयनित हो गए थे।

ट्रेनिंग हुई। इस ट्रेनिंग में ही मिली थी मालती सिंह।

मालती सिंह बेहद सुंदर थी, परियों सी। पिता गोरखपुर में ज़मींदार थे। सैकड़ों बीघा ज़मीन। अपने पिता की अकेली लाडली मालती सिंह, प्रभाष कुमार की बैचमेट थी। लगाव, झुकाव, प्यार कब हुआ, पता ही नहीं चला। माया जैन को एक झटके में ही भुला दिया प्रभाष कुमार ने।

ट्रेनिंग के बाद पहली पोस्टिंग मिली देवरिया में। एसडीएम देवरिया। दो साल से ज़्यादा कहीं टिके नहीं। नेताओं और सीनियर्स की उतनी ही बात मानते, जितनी ज़रूरी होती।

फिर मुड़कर नहीं देखा प्रभाष कुमार ने। मालती सिंह से शादी कर ली। मालती सिंह स्टेट गवर्नमेंट के शिक्षा विभाग में सयुक्त सचिव हैं। बुआ-फूफा को अपने साथ रखने लगे। मालती सिंह के प्यार के आगे माया जैन का प्यार हवा में लहरा गया। और आज.... आज वही माया जैन उनके सामने किसी पुराने दर्द के समान कराह दे गई थी।

सोच रहे थे कि ड्राइवर ने कहा, 'सर ऑफिस आ गया।' और कार का दरवाज़ा खोल दिया था।

'ओह, यस' कहकर बाहर आ गए थे और अपने कमरे में गए कि सचिव साहब का फिर मैसेज आया था, 'वेट प्लीज़। एटलीस्ट टू आवर्स। आयम विथ एम ओ एस अर्थात् मिनिस्टर ऑफ स्टेट। वेरी अर्जेंट। विल बी मीट सून।'

अब यह दो घंटे कैसे काटें। काम में मन

नहीं लग रहा था कहने को तो कह दिया था पाठक जी से कि माया जैन को ले आना। अगर वे आ गईं तो। तो क्या। वे कोई दोषी थोड़े ही हैं। उन्हीं के पिता ने तो कहा था कि स्वाभिमान से जियो। तो उन्होंने यह भी तो कहा था.... तब आना मेरे पास। माया आपकी है। चाहे अभी ले लो या बाद में। मन में कोई हलचल मचाए था। तूफान चल रहा था कि.....कि चपरासी आया था अंदर, 'सर कोई माया जैन मैडम मिलना चाहती है आपसे।'

'भेजो।'

माया जैन अंदर आ गई थी और सामने पड़े सोफे पर बैठ गई।

'पाठक जी ने कहा कि आपने बुलाया है।' बात माया जैन ने ही शुरू की।

'आ..... हाँ..... नहीं....हाँ, हाँ मैंने....मैंने ही कहा था आपसे मिलने के लिए।' हड़बड़ा रहे थे। इतना बड़ा ब्यूरोक्रेट माया जैन जैसी सामान्य स्त्री के सामने नरवस हो रहा था।

'क्या हुआ। आप ठीक तो हैं।' पूछा था माया ने।

'या...या आ'म ओके। आई वांट टू से इज देट...आप कैसी हैं।' मन शांत नहीं था अभी भी।

माया को जब प्रोग्राम में देखा था तब ढंग से नहीं देख पाए थे। अब पास थी। उम्र गवाही दे रही थी कि कहीं न कहीं तो कुछ टूटा है। इतनी ग्लेमरस नहीं लग रही थीं। सोचा शादी कर ली होगी। बच्चे होंगे। बिजनेसमैन पति होगा सो पूछ लिया था, 'और....शादी-वादी कर ली। आई मीन बच्चे.....।'

'आपने की।' माया की बोलडनेस बिल्कुल कम नहीं हुई थी।

'या...या.....या पत्नी है यही स्टेट गवर्नमेंट में जे.एस. है। बेटा स्विट्ज़रलैंड में है। एमबीए कर रहा है। बेटा ब्रिटेन में है, वहीं से एलएलबी की फाइनल ईयर में है। एवरीथिंग इस ओके।' और जेब से पर्स निकाला था 'यह... यह है माइ फ़ैमिली।' एक फ़ोटो था जिसमें बहुत सुंदर सी स्त्री थी उनके साथ। दो यंग बच्चे। माया देखती रही थी।

'आप नहीं दिखाएँगी....योर हस्बैंड एण्ड चिल्ड्रन। यू नो।' प्रभाष कुमार उतावले थे माया की फ़ैमिली देखने को।

'क्या करेंगे देखकर।'

'प्लीज़ शो मी।'

माया ने अपने बैग से पर्स निकाला। छोटा सा पर्स। उसमें कुछ रुपये थे। बैंकों के एटीएम थे और उन्हीं में एक फ़ोटो था। बीए के एग्जाम देने के लिए खिंचवाया था। तभी ज़िद कर गई थी, 'प्रभाष मैं और तुम।' फ़ोटो में प्रभाष कुमार थे और माया।

'यही है मेरी फ़ैमिली। लो देखो।' न जाने क्यों आँखें गीली हो आई थीं माया की।

फ़ोटो देखा तो सन्न रह गए थे प्रभाष कुमार। 'यह..... दिस.....। यह तो मैं और तुम....यू नो हमारा.....आई नो.....यू थिंक.....आपने...मैरिज नहीं।' हकला रहे थे।

'हाँ, प्रभाष मैंने शादी नहीं की। जब तुम नहीं तो कोई नहीं।' अब आँखें गीली नहीं थीं, बह रही थीं।

'आपने ठीक नहीं किया माया।' बहुत हिम्मत की थी तब बोल पाए थे प्रभाष कुमार।

'और आपने.....आपने ठीक किया।' बैग से छोटा-सा रुमाल निकाल कर आँसू पोछ लिए थे।

'ठीक है मान लिया मैंने.....आई एम राँग... एब्सोल्यूटली राँग.... बट यू....।' आगे कुछ कहना चाह रहे थे प्रभाष कुमार कि रोक दिया था माया ने बीच में ही, 'जानते भी हो कुछ....स्त्री का मन.....एक बार जिसको दिया फिर वापस नहीं लेती। लोग कहते हैं औरतें बेवफ़ा होती हैं। मैं नहीं मानती.....होती होगी। सारे पुरुष भी बेवफ़ा नहीं होते लेकिन आप.... बेवफ़ा तो हैं ही स्वार्थी भी हैं। सिर्फ़ अपना ही देखा।' फिर प्रभाष कुमार के बिल्कुल सामने चेहरा करके बोली थी, 'क्या वायदा किया था। याद है या वह भी भूल गए... आऊँगा..... आऊँगा मैं लौटकर। और मैं बेवफ़ूफ़... आज तक रास्ता ही देखती रही। मेरा.... सिर्फ़ मेरा, प्रभाष आएगा। तुम नहीं आए... तुम्हें नहीं आना था। दुख इस बात का नहीं है कि तुम नहीं आए। दुख इस बात का है

कि मेरे प्यार में कहाँ चूक हो गई। सच बताती हूँ प्रभाष मैंने कोई ग़लती नहीं की। मेरा प्यार बिल्कुल सच्चा था.... बिल्कुल... जैसे माँ का आँचल.... प्रभाष तुमने क्यों किया ऐसा...क्यों।' और मासूम बच्चे की तरह बिलख-बिलखकर रोने लगी थी। प्रभाष कुमार ने उसे मंच पर चीखते हुए देखा था। उसका भाषण सुनकर वे डर गए थे लेकिन उस माया में और इस माया में.... ज़मीन आसमान का फ़र्क़ था। यह तो मोम है जो सिर्फ़ हथेली की गर्मी से ही पिघल जाता है।

हिम्मत की थी। सोफ़े से उठे और माया के सामने घुटनों के बल बैठे थे दोनों हाथ जोड़कर माफ़ी की मुद्रा में।

माया बिलख-बिलखकर रो रही थी। हाथ उसकी दोनों आँखों पर थे। हाथ हटाए, 'अरे....यह क्या।'

'प्रभाष' कहकर उनके दोनों हाथ अपने हाथों में भर लिए थे। आँखें प्रभाष कुमार की भी गीली थीं।

'नहीं.....नहीं प्रभाष....प्रभाष मेरे प्यार हो तुम.... तुम्हें जीवन में कभी कमज़ोर नहीं देखना चाहा....।' और अपनी दोनों हथेलियाँ उनकी आँखों पर रख दी थीं। यह क्या अब प्रभाष कुमार की आँखें गीली नहीं थीं, वह तो बहे जा रही थीं मानों सारे तटबंध तोड़कर नदी भूल गई हो कि कहाँ से बहे।

अपना बिलखना छोड़ माया जितना ही प्रभाष कुमार को चुप कराती, वे उतना ही और ज़्यादा रो रहे थे। फिर थोड़ी हिम्मत की थी और सिर्फ़ इतना ही बोल पाए थे, 'माया, आपका गुनहगार हूँ, मैं। हो सके तो मुझे मा.....फ़।'

आगे नहीं बोलने दिया था माया ने उन्हें और सिर्फ़ इतना ही कहा था, 'माफ़ किया प्रभाष....माफ़ किया।' फिर थोड़ी रुकी थी फिर बोली, 'मैंने तुम्हें कभी कमज़ोर नहीं होने दिया। आज भी नहीं होने दूँगी लेकिन इतना बता दो कि मैं क्या करूँ प्रभाष...मैं क्या..... क.....र....ऊँ।'

प्रभाष कुमार के पास कोई उत्तर नहीं था माया के प्रश्न का।

000

मैं गली नंबर 9 डॉ. आरती स्मित



डॉ. आरती स्मित

डी 136, द्वितीय तल, गली नंबर 5, गणेश
नगर पांडव नगर कॉम्प्लेक्स, दिल्ली
110092

मोबाइल- 8376836119

ईमेल- dr.artismit@gmail.com

'ओह! जाड़ा पड़ने लगा है तब भी लोग-बाग को चैन नहीं। रात भर चौकीदार कभी मेरी देह पर तो कभी घरों के मुँह पर डंडा बरसाता रहता है, चिल्लाता रहता है— जाऽऽगऽऽतेऽऽऽ रहोऽऽऽ। कोई उससे पूछे तो भला, 'अरे भई, जब दुबले-पतले आदमी जैसे चार मंजिले-पाँच मंजिले मकान के भीतर, फ़्लैट के नाम पर बने दस बाय दस के दड़बे जैसे कमरे में भी दिन भर के थके-माँदे, नर-नार और बच्चा फ़ौज को रात भर जगे ही रहना है, तो तुमको किस बात के पैसे मिलते हैं?'

कभी-कभी तो ऐसा लगता है मानों अपने ही डर को भगाने के लिए वह हर मकान के सामने कभी डंडे के सिर को जोर से झुकाता है, कभी जोर से सीटी फूँकता है। बेशक! जिसको कलाकारी आए, वह तो हॉट गोल करके इतनी मीठी सीटी बजाए कि मन झूम जाए लेकिन इस नासपीटे को तो दसटकिया सीटी मुँह में लेकर बस 'फूउउउ' करना आता है। मेरे तो सिर में दर्द रहने लगा है।

दस बरस पहले जब गाड़ी फिसल नहीं पाती थी, तब खुद तो चोट खाती ही थी, मुझे भी चोटिया देती थी। वह तकलीफ़ देर तक सहन नहीं होती थी। अब मेरी देह तो सँवर गई लेकिन अब रात में भी चैन नहीं। एक अल्सुबह, गाड़ियों की आवाजाही जो शुरू होती है, क्या कहूँ, दिन-रात बराबर हो गए। नुकड़ के मकान के तीसरे माले के फ़्लैट पर जो लड़के रहने आए हैं, जाने क्या काम-धंधा करते हैं! कोई रात के एक बजे लौटता है तो कोई दो बजे। बारह बजे तक तो लगता ही नहीं कि रात हुई है और ये, बीचों बीच खड़े तीन मंजिले मकान के मालिक का बिगड़ैल पोता, आए दिन, रात को पीकर आता है और दरवाजा खोलने में ज़रा देर हो तो माँ-बहन की गाली देता है। राम! राम! भगवान् ऐसी कुलंगार औलाद किसी को न दे। परसों रात, नशे में अपनी दादी को गंदी-गंदी गालियाँ देते उसकी जुबान भी न छिली। बेशर्म कहीं का! बाप एक्सीडेंट में कब का परलोक सिधार गया। फिर माँ भी पीछे-पीछे चल दी। तब इसी दादी ने कलेजे पर पत्थर रखकर, पाल-पोसकर इतना बड़ा कर दिया। मेरी तो नींद हराम हो गई। दादी के दुलार ने बिगाड़ दिया लला को। अब तो इतना बदतमीज़ हो गया है कि छोटे-बड़े का लिहाज तक भूल गया है। कभी घर में अपने ही जैसे बिगड़ैल साथी-संगी के साथ पूरी-पूरी रात कानफोडू संगीत बजाएगा; हो-हल्ला मचाएगा; बंदर जैसा उछल-उछलकर नाचेगा मानों मिरगी का दौरा पड़ा हो। एक बार खिड़की का परदा ज़रा हटा रह गया था तो भीतर का नज़ारा दिख गया। उन लोगों की हरकत देखकर मेरा तो जी चाहा, चौकीदार से लाठी छीनकर उनकी पिटाई कर दूँ। पता नहीं, बेचारी बूढ़ी कैसे सहती होगी! बड़े दिनों से देहरी पर भी नहीं आई, नहीं तो बाहर बने चबूतरे पर बैठती थी, धूप सेंकती थी और आते-जाते चिर-परिचित से थोड़ा बोल-बतिया लेती थी। मुझ से भी राम-सलाम हो जाता था। अब तो कामवाली बाई ही चबूतरे पर बैठी मोबाइल टिपटिपाती दिखती है। भीतर से बाहर आती है। पौधे में पानी देने के लिए, फिर घंटा भर यही पसरकर बैठ जाती है और मोबाइल टुनटुनाती रहती है। उस समय मोबाइल के कीबोर्ड पर उसकी उँगली ऐसे दौड़ती है जैसे कोई जाहिल गिटार बजा रहा हो।

गिटार से याद आया। मकान संख्या 174 के दो मंजिले सामने वाले फ़्लैट में या उसके बाजू वाले फ़्लैट में कोई गिटार बजा रहा था। दो आवाज़ें साथ-साथ गिटार की धुन से सुर मिलाते हुए गा रही थीं। भले लड़के हैं। संगीत सुनते हैं, गाते हैं, मगर मोहल्ले वालों के कान नहीं फोड़ते और न ही कोई ऐसा गीत बजाते हैं कि उसकी ड्रम बीट से हार्ट बीट बढ़ जाए। भई, सब जवान-जहान ही तो न बसे हैं यहाँ, बूढ़े भी हैं और बच्चे भी। वे भले युवक दिन में दिखते भी नहीं, पढ़ाई करते हैं या नौकरी, राम जाने। धोबिन काकी को पता होगा, वे उनसे ही तो कपड़े प्रेस करवाते हैं। वैसे भी धोबिन काकी इनसाइक्लोपीडिया हैं, इनसाइक्लोपीडिया। सारी गलियों की पक्की खबर रखती हैं। किस मकान के किस मंजिले में कौन-कौन रहते हैं, किनके-कितने बच्चे हैं, परिवार कितना बड़ा है, किस देश का है, कितने दिन टिकेगा, उसका बोली-व्यवहार, जाति-धर्म वगैरह-वगैरह। उन्हें सब कुछ मालूम है। कभी-कभी तो समझ में नहीं आता है कि लोग उनसे कपड़े प्रेस

करवाने आते हैं या अपनी कुंडली बनवाने!

काकी अपनी बोली में पूरा मधुमक्खी का छत्ता बसाए है; शहद टपकाती रहती हैं, मगर दिमाग फिर जाए, कोई कहा-सुनी हो जाए तो बोली से ही काट खाएँगी। सबसे पुरानी हैं, इस इलाक़े में, इसलिए धाक भी है। सत्तर कब का पार कर गईं, मगर क्या मजाल कि प्रेस करना बंद कर दें। वही उनकी पूजा है। प्रेस करना बंद कर दें तो दो दिन में ही हाहाकार मच जाए। जब काका परलोक सिधारे, तभी पंद्रह-बीस दिन उनका काम बंद रहा। काम-क्रिया, पूजा-प्रयोजन पूरा हुआ और प्रेस के लिए कोयला सुलगने लगा। लोहे के प्रेस में उनकी जान बसी है। घंटों खड़ी रहकर उस भारी प्रेस को कपड़े पर घुमाती हुई वे मुस्कराती रहती हैं, आ-आकर बैठी महिलाओं से सुख-दुःख बतियाती रहती हैं, मगर ध्यान पूरी तरह कपड़े पर मानों नवजात को तेल मालिश कर रही हों। शुरू-शुरू में तो लगा, घर में तंगी के कारण बूढ़ी इतनी मेहनत करती हैं, मगर जल्द ही भ्रम का परदा हट गया। दो-दो अधेड़ मुटल्ले बेटों, घर सँभालतीं बहुओं और जवान होते पोते-पोतियों से भरा-पूरा संसार है उनका। दोनों बेटे कोई व्यापार करते हैं, हाँ मगर देखकर बेरोज़गार लगते हैं। कभी इस कोने, तो कभी उस कोने गप्पें हाँकते हुए मिल जाएँगे। बड़ा तो फिर भी कम दिखता है, छोटे को तो मानों तड़ीपार की सज़ा मिली हो। सिर्फ़ खाने के समय ही बाहर नहीं दिखता, नहीं तो किसी मकान की चौखट और सीढ़ियाँ न बची होंगी; जहाँ वह घंटों बैठा मुहल्ले के अपने जैसों के साथ बकवास की आँच न सुलगा रहा हो। लॉक डाउन जैसे समय में भी....। बहुएँ कम नज़र आती हैं।

काकी नियम की पक्की हैं। सुबह नहा-धोकर शिवलिंग पर जल चढ़ाए बिना मुँह में चाय तक नहीं डालतीं। शिवलिंग पर जल चढ़ाने तो मकान नंबर 120 वाली पंजाबन आंटी भी जाती हैं, मगर रोज़ नहीं, कभी-कभी। कई लोग मत्था टेकने भी जाते हैं, तो कई जूते बँधे होने के कारण मंदिर के द्वार पर से ही शिव के दरबार में सलामी देते हुए आगे अपने-अपने काम से जुड़े ठिकाने की तरफ़

बढ़ जाते हैं। वह छरहरी देह वाली साँवली लड़की भी तो- शायद वह भी किराएदार ही है। उम्र यही कोई तीस के आसपास होगी। अब लड़की है या औरत, राम ही जाने। कभी-कभी साड़ी-चूड़ी पहनती है, मगर सिंदूर नहीं लगाती। भगवान् जाने, ब्याहता है या कुँवारी; खसम से अलग है या विधवा! पिछले पाँच वर्षों से देख रही हूँ, वह घर से निकलती है और बिना किसी को टोक-टाक किए आगे बढ़ती हुई मंदिर के द्वार पर जाकर ठिठकती है। उसके होंठ और आँखें बंद होते हुए भी बोलते हुए-से लगते हैं। वह कभी हाथ जोड़कर, तो कभी हृदय पर हाथ रखकर प्रणाम करती है और आगे बढ़ जाती है। नकचढ़ी तो नहीं लगती। धोबिन काकी दिख जाए तो उनसे दुआ-सलाम करती है, राशन वाले मोहन-सोहन से भी और मंदिर के ठीक सामने वाली दुकान की मालकिन श्रीवास्तव भाभी जी से भी। भाई जी से मूक अभिवादन।

मंदिर के दरवाज़े से ज़रा हटकर लगी चाय की चलती-फिरती दुकान के पास खड़े या सामने बनी दुकानों की सीढ़ियों पर बैठे, कागज़ के प्याले में चाय सुड़कते ग्राहक उसे गौर से देखते हैं, खासकर तब, जब वह सुबह टहलकर लौटती है, पाँव मजबूती से कसे स्पोर्ट्स शू, पैंट-टीशर्ट, सिर पर स्पोर्ट्स बैंड, दाहिनी कलाई पर चमचमाती इलेक्ट्रॉनिक घड़ी उसके बढ़ते क़दम को दर्ज़ करती हुई-इस इलाक़े में इस तरह के लिबास में लड़कियाँ कम ही दिखती हैं, औरत तो कोई नहीं। इसलिए पुरुषों की सिकुड़ी नज़र उस पर जा टिकती है। नज़र टिकती तो है, मगर होंठ पिंजरे में बंद पंछी की तरह फड़फड़ा कर रह जाते हैं। कोई उसे टोकने की हिम्मत नहीं कर पाता। वह चुप रहती है, मगर चेहरा बोलता रहता है- उस वक़्त और अधिक जब दुपहिया, तिपहिया, चारपहिया वाहन रास्ते में बेतरतीब खड़े रहते हैं और वाहन मालिक दूसरों की तकलीफ़ से बेफ़िक्र रहते हैं। उस समय क्षितिज पर लेट रहे सूरज की लाल किरणों की तरह उसकी आँखें फैल जाती हैं। होंठ फिर भी बंद रहते हैं, और नज़र एक बार चारों ओर घूम जाती है। उसका गुस्सा मुझे भी जायज़

लगता है। भई, सरकार ने चौड़ी और पक्की राह इसलिए तो नहीं बनाई कि वह तुम्हारे लिए गराज का काम करे या दुकान के आगे ऐसे खड़ी कर दो कि प्राइवेट गाड़ी अटक जाए। भोज-भात, नाच-गान, श्राद्ध-पूजा- सब तो रास्ता रोककर करते ही हो, लेकिन कम से कम बाक़ी दिन तो चैन लेने दो। वैसे भी हर चार दिन के बाद किसी न किसी का मकान टूटता-बनता रहता है तो सीमेंट-बालू से रास्ता घिरा रहता ही है। मैं तो लाचार हूँ सहने के लिए, वह क्यों सह रही है? क्यों नहीं कहीं अच्छी सोसाइटी में चली जाती है? अपने जैसे पढ़े-लिखे और अमीरों के बीच। अमीर तो यहाँ भी कम नहीं, लेकिन संस्कार नहीं हैं। ... कहीं उसका पहरावा दिखावा तो नहीं? दिखावे का ज़माना है'।

(जम्हाई लेती हुई) 'मैं भी क्या सोच की दुकान खोलकर बैठ गई! नींद तो अब क्या ही आएगी! उबर-ओला के चौबीस घंटे की सेवा ने रही-सही शांति भी छीन ली है। गाड़ियों की इतनी तेज़ चमकती आँखों में कोई भला कैसे सो पाएगा! चाँद अपनी उजली डोर समेट, धुँधलाने लगा है। वह पूरा हो तब भी पूरी रात दिखता कहाँ है? मेरे हिस्से के आसमान के बचे-खुचे टुकड़े को पलक झपकते पार कर जाता है। पौ फटने से पहले घड़ी भर सुस्ता ही लूँ। आसमान अभी लोहित नहीं हुआ है, इसका मतलब सूरज देवता के आने में घंटा भर तो होगा ही। ... लेकिन, क्षितिज अब दिखता कहाँ है? जब से मेरी दोनों बाज़ुओं पर पाँच मंजिले मकान सट-सटकर खड़े हुए हैं, भोर देखने का वह सुख मुझसे छिन गया है। अब अफ़सोस करके ही क्या होगा! सोने की कोशिश करूँ, नहीं तो तड़के भोर से वही चिल्ल पो। रविवार छोड़कर कोई भोर ऐसी नहीं जब घरों के भीतर ज़रा देर से भोर हो और रात! वह तो महानगरों में घंटती हुई बौनी हो ही गई है'। अम्मम आह (उबासी)

'माघ अपनी ठिठुरन बाँटकर लौट गया। फागुन की खुमारी भी महसूस नहीं हुई। बसंती हवा की हिलोर का पता भी नहीं चला, न किसी घर के आगे बड़े-बड़े गमलों में गेंदा

मुस्कराता दिखा। गाड़ियों की आवाजाही के लिए चौड़ी की गई मेरी देह पर बड़े-बड़े गमलों में बोनजाई वृक्ष लगाकर इन्हें लगता है, ये पर्यावरण की रक्षा कर रहे हैं। वैसे, ये बेचारे कर भी क्या सकते हैं! जगह कहाँ है? और अब यह नया तमाशा! होलिका दहन के उत्सव के नाम पर मेरे मुहाने पर घर के टूटे फ़र्नीचर का ढेर लगा दिया है। धू-धूकर जलेगी आग, उठेगी लपट और मंदिर के भीतर से देवी-देवता मुस्कराएँगे या सिर धुँगे, ये तो वे ही जानें। मगर, हवा में गरमाहट आ जाएगी। फागुनी हवा यों भी धूल उड़ाती चलती है।

'ओह! नौ बज गए, बच्चियाँ अब तक घरों में बंद हैं। कुछ बच्चे अपनी-अपनी बालकनी में दिख रहे हैं। कोई बाहर नहीं निकल रहा, क्या बात है? रंग का यह पर्व अब क्या रूप ले रहा है! कहीं बच्चे और बच्चियों के लापता होने की घटना से माँ-बाप डरे हुए तो नहीं हैं? हो भी सकते हैं। हजारों बच्चों का गायब होना खेल है क्या? लगता है, इस बार बच्चों की रंग-भरी मस्ती के बिना ही होली बीत जाएगी!'

'दारू से मताएँ छोकरोँ ने कल जो ऊधम मचाई, उससे मेरी देह ही नहीं, मेरा मन भी दुख गया। नाले की गंदगी और कैमिकल वाले रंग से दूसरों को परेशान करना होली है क्या! जगह-जगह दाग की तरह उग आया चितकबरा रंग भी ठीक से नहीं धुला और न ही मेरे कान के पर्दे सामान्य हुए हैं। उमस भी कितनी है! हवा सुस्त है। लगता है मानों आसमान सूरज के रथ को क्षितिज से खींचकर समय से पहले ऊपर ले आया है। मकान मालिकों के चार पहिए और किराएदार के दुपहिए से घिरी बीस फ़ीट चौड़ी मेरी देह हर रोज़ की तरह आज भी सुबह-सुबह मंदिर को जाती स्त्रियों, रोज़गार पर जाते युवाओं और आलू-प्याज चिल्लाते रेहड़ीवालों और उन जैसे कई रेहड़ीवालों से आबाद है। इस चहल-पहल से कबूतर के दड़बे जैसे टू बीएचके, श्री बीएचके वाले फ़्लैट में रहते और आधी रात को ड्यूटी से लौटे पुराने लोगों को बहुत फ़र्क़ नहीं पड़ता। जो नए-नए आए हैं, वे भी इस आधे भरे रास्ते की गुनगुन के अभ्यस्त हो ही जाएँगे। वैसे रेहड़ी वाले न आएँ तो इन लोगों

का काम भी न चले। सुबह-सुबह ताज़ा सब्ज़ी, आलू-प्याज, साग-पात से लेकर फल और सूखे मेवे वालों के अलावा अनाज और गुड़ की गाड़ी भी आती है तो चहल-पहल बढ़ जाती है। और तो और साइकिल पर कपड़े और मनहारी के सामान भी- औरतें उन्हें मोबाइल दुकान कहती हैं। लुगाइयों की ठिठोली से बेचारे गरीब दुकानदार का जी जुड़ा जाता है, कमाई तो क्या ही होती है! मगर फिर भी, सबको मेरे बसरे में आना पसंद है। वे कहते हैं, उन्हें यहाँ जीवन रस मिलता है। संघर्ष में भी हँसते-ठठाते जीने का गुर मिलता है। वह अनुभव मिलता है जो बड़े-बड़े मकानों जैसे वो-वो क्या कहते हैं- विश्वविद्यालय! हाँ, विश्वविद्यालय में भी नहीं मिल सकते। वे तो किताबी ज्ञान देते हैं। नीरस और उबाऊ। पढ़ो और रोज़ी-रोटी की जुगाड़ में पिल जाओ। यहाँ-वहाँ नौकरी के लिए मगजमारी करो। वहाँ भी इतनी मारामारी कि धक्के खाते जवान-जवान लोग धीरे-धीरे खुलकर हँसना भूल जाते हैं। चिंता उनके भीतर चिता जला जाती है। खुद को बोझ समझने लगते हैं और फिर.... ओह! मैं फिर क्या से क्या सोचने लगी।

क्या करूँ, घरों से टीवी की आवाज़ मुझ तक आती है और आए दिन ऐसी ही दहलाने वाली ख़बरें सुना जाती हैं। कहाँ तक कान बंद करूँ!

हाँ तो मैं रोज़ कमाने-खाने वालों की बात कर रही थी, जिनके आने-जाने से माहौल ज़रा खुशनुमा बना रहता है। मजे की बात यह कि सबको पता है, किस समय इधर आना ठीक होगा। रिक्षे पर क़ालीन लादे क़ालीन वाले तो ज़रा बेर से आते हैं। इसके अलावा देख रही हूँ, दिनोंदिन एक्सचेंज ऑफ़र से जुड़े धंधे बढ़ गए हैं। कोई लाउडस्पीकर पर चिल्लाता हुआ टूटे-फूटे मोबाइल के बदले कुछ सामान देने की घोषणा करता जाता है तो कोई बाल के बदले कुछ और। कोई फटे-पुराने कपड़े के बदले नई दरी और क़ालीन देने की घोषणा करता है। हर एक अपने ही अंदाज़ में अपना विज्ञापन खुद करता चलता है। भोर से दोपहरी तक आती-जाती रिक्षा-गाड़ी से मेरी देह को

ज़रा भी आराम नहीं मिलता। दुपहरी में सुस्ताना चाहती हूँ तो बड़े बच्चे बैडमिंटन लेकर हाज़िर हो जाते हैं और उनके जाते ही छोटे बच्चे। शाम से रात तक फिर वही कचर-कचर। वैसे यह न हो तो मैं कितनी नीरस लगूँगी! बेजान-सी या डराने वाली जगह! तब शायद लड़कियाँ दिन में भी गुज़रने से डरें। राम क़सम! अब तक मेरे जीते जी यहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं हुई है। कुछ जाहिलों के झगड़े चौखट पार कर, भले ही मुझ तक आ जाते हैं और पढ़े-लिखे रहवासियों के लिए, ख़ासकर नए किराएदारों के लिए यह दृश्य चौंकाने वाला होता है, धीरे-धीरे उन्हें भी मेरी तरह आदत हो जाती है।

ज़्यादातर किराएदार अपने काम से मतलब रखते हैं, बेकार किसी से राग-द्वेष नहीं लगाते। तो शादी-ब्याह, मरनी-हरनी में मकान-मालिक ही पड़ोसी होने का फ़र्ज़ और रस्म-दोनों निभाते हैं। कुछ घरों के दरवाज़े कभी-कभी खुले दिखते हैं, कुछ के तो पूछो ही मत! रोटी भी मेरे ही सीने पर बैठकर खाएँगे मानो कमरे में कोई भूत रहता हो। ख़ैर, मुझे क्या? जैसे भी हैं, मेरे अपने हैं। इनके सुख-दुःख की साक्षी भी मैं ही हूँ और भागीदार भी। कितनों के आँसू पिए हैं मैंने और कितनों की मुस्कान मुझमें समाई है। नन्हे-मुन्ने को जवान होते देखा, परदेस बसते और उसे याद कर-करके देहरी पर बैठी माँ को बगल की देहरी पर टिकी माँ से बतियाते देखा। उदासी और मुस्कान का अनूठा संगम उन आँखों में देखती ही तो रही हूँ। साँझ बीत रही है। आसमान का रंग मलिन हो आया है। अब लौटेंगे वे रेहड़ी वाले बच्चे-खुचे सब्ज़ी-फल को कम दाम में देकर बचा माल ख़त्म करने। मैं आज तक समझ नहीं पाई, लौटाकर क्यों नहीं ले जाते! शायद, हर रोज़ एक नई शुरुआत का मन बनाया हो! ताज़े फल-सब्ज़ी से भोर की शुरुआत का मन ताकि ख़रीदार भी ख़रीदते हुए खुश दिखे और उन्हें सही क़ीमत के साथ-साथ ग्राहक का भरोसा मिल जाए।

भरोसा बड़ी चीज़ होती है। मैं देखती आ रही हूँ, कुछ एक घरारी अपने परिचित सब्ज़ी-फलवाले से ही ख़रीदती हैं। वे रेहड़ी

वाले भी उनकी देहरी के सामने दो की जगह चार बार आवाज़ लगाते हैं। कितना सुंदर रिश्ता है यह- अबोला, अनाम मगर अपना-सा। मॉल के भीतर खरीदार किसी कर्मचारी से ऐसे जुड़ते होंगे? दो-पाँच रुपये कम कराने के लिए खट्टी-मीठी नोक-झोंक करते होंगे? ओहो, मैं भी क्या सवाल लेकर बैठ गई! मॉल की तो छोड़ो, सुना है, मुझे परे सड़क पर दुकानें ही दुकानें हैं। किराने की भी। मगर फिर भी अपने योगेश के पास जब देखो तब दुकान के सामने लाइन लगी रहती है। कितनों को तो खुद पहुँचा आता है। बोली-व्यवहार बड़ी चीज़ है। उसने बोली से बाँध रखा है। सेवा भाव भी कम नहीं। और लालच? न भई न, कम मुनाफ़ा लेंगे लेकिन काम ईमानदारी का। कोई घालमेल नहीं, तभी बरकत है, और क्या। दुकान बड़ी हुई लेकिन स्वभाव वही। मुझे गर्व होता है कि वह मेरा हिस्सा है। मेरे अपनों में से एक। उसकी दुकान कभी बंद हो तो मुझे बड़ा सूना-सूना लगता है। यह आवाज़! ओ, मंदिर में आरती का समय हो गया। देखूँ ज़रा!

'बैशाख में जेठ की तपन उतर आई है। अभी सुबह के ग्यारह भी तो न बजे हैं। ऑफ़िस जाने वाले सब जा ही रहे हैं, कोई पैदल जाकर आगे मेट्रो या बस लेगा तो कोई अपनी गाड़ी से तो कोई कैब बुक करके। रेलमपेल। मेरी देह जल रही है। अब इतना पानी भी कहाँ मिलता है कि वह पंजाबन आंटी अपने बड़े-बड़े पौधों के साथ ही मुझे भी नहला दे। कुछ तो ठंडक मिलेगी। अरे रेऽऽऽ! हाथ में छुरा, तलवार, बल्लम-भाला लिए, मुँह पर गुलाल मले यह झुंड कहाँ से घुस आया? और... और... हाथ उठाकर धूप में उन हथियारों की चमक बढ़ा रहा है। पीछे छोटी गाड़ी पर कोई प्रतिमा है। अभी मूर्ति! अभी तो कोई पर्व भी नहीं है। ओह! मेरी आँख चुँधियाने लगी है। लगता है, धूप भी घबराकर दीवार चढ़ने लगी है। उसी पाँच मंजिले मकान के दो मंजिले के बाएँ फ्लैट के अंधेड़ हड़बड़ाकर बालकनी में निकल आए हैं। कानफोड़ू ढोल-बाजे से उनकी नींद खुली है या भगवान् के नाम पर कर्कश स्वर में उठते

निनाद से या कि भजन की जगह बजते वाहियात क्रिस्म के गाने से, शायद वे समझ नहीं पा रहे। मैं भी नहीं। उनके चेहरे से लगता है मानों आवाज़ हथौड़े की तरह उनके सिर पर चोट कर रही हो। शायद, किसी सोच से घिरे हैं! शायद वे भी यही सोच रहे हैं कि 'जीने नहीं देंगे ये लोग। पिछले एक सप्ताह से लगातार देर रात तक गली में किसी न किसी घर का जश्न मनाया जा रहा है। वह भी भक्ति के नाम पर भोंडे गानों के साथ या उसी ताली पार्टी को बुलाकर। म्यूजिक सिस्टम भी इतना शानदार लगाते हैं कि आसपास की कुछ और गलियों के लोग सो न सकें। बिल्डिंग में और भी परिवार हैं। सब बाल-बच्चे वाले हैं और इसलिए गुंडे क्रिस्म के भक्तों से सब डरे-सहमे रहते हैं। तू-तू मैं-मैं करने का फल सबको भुगतना पड़ सकता है। नहीं, इन जाहिलों के मुँह लगकर खुद को या किसी और को मुसीबत में डालना ठीक नहीं। किराएदार तो बस किराएदार हैं। उनका कौन सगा!'

उस अंधेड़ के हाथ बालकनी की जालीदार खिड़की खोलने के लिए बढ़ते-बढ़ते रुक गए हैं, शायद उन मवालियों का चेहरा देखने का विचार उन्होंने त्याग दिया है। ठीक ही किया। खिड़की खुलते ही कई सिर उस तरफ़ उठ जाएँगे। इन उन्मादियों की नज़र में चढ़ना ठीक नहीं, सब सुबह-सुबह बोटल उड़ले हुए लग रहे हैं। एक भी मेरे अपने नहीं। यहाँ क्या, आसपास भी इनमें से कोई कभी आते-जाते नहीं दिखा। फिर कौन हैं ये लोग? सिर पर पट्टी, आँखें लाल-लाल, हाथ में हथियार। ज़रूर भाड़े के टट्टू होंगे। सुना है, आजकल ऐसे टट्टू सीधे-सादे लोगों की ज़िंदगी में आतंक मचाने का ठेका लेते हैं। पुलिस आसपास दिख भी नहीं रही। वैसे भी खास मौकों पर ही यहाँ पुलिस आती है। ऐसे उनका क्या काम! कोई अरबपति तो रहते नहीं यहाँ, जिनकी सुरक्षा ज़रूरी हो। खाते-पीते नौकरी या छोटा-मोटा धंधा करने वाले लोग हैं जो पहले मिडिल क्लास, अब लोअर मिडिल क्लास समझे जाते हैं। कई की अंदरूनी हालत तो लोअर क्लास से भी खराब है, पर करें

क्या? अब तक शान से रहते आए हैं, झुग्गी में जाकर रह भी नहीं सकते। और झुग्गी भी कहाँ मुफ्त पड़ी है! डिग्री उन्हें झुकने नहीं देती, खाली जेब चैन से रहने नहीं देती तो ज़िंदगी नरक किए जाते हैं। लेकिन ये लड़के! ये भी पढ़े-लिखे बेरोज़गार होंगे जिन्हें थोड़े पैसों का लालच देकर इस जुलूस में आने को किसी ने कहा होगा। मगर किसने और क्यों? और इनके पास हथियार आया कहाँ से? किससे पूछूँ? इन मवालियों का जुलूस देखकर बच्चे-बूढ़े घरों में घुस गए हैं। शुक्र है, अभी कोई रेहड़ी वाला नहीं। क्या पता, बात-बेबात पिटाई हो जाए! इसलिए सब चुप्पी साधे हैं। मैं चुप कैसे रहूँ? मेरे सीने पर चलकर डर का माहौल बनाने वाले इन अजनबियों को बिना सवाल किए ऐसे कैसे जाने दूँ? मगर क्या पूछना ठीक होगा?' दृष्टि ऊपर-नीचे, अगल-बगल घुमाती हूँ, मगर यहाँ ज़िंदगी मानो रुक गई है! ऊपरी माले से झाँकते चेहरे भी अब दिखाई नहीं दे रहे, शायद अंदर कमरे में चले गए। उन जैसों की चिंता मेरी भी चिंता है। इतने बरस बीते। कई बच्चे मेरे सामने खेलते-कूदते बड़े हुए। कई बेटियाँ स्कूल-कॉलेज कर नौकरी करने लगीं तो कितनों की डोली सजी। कितनी किराएदार लड़कियाँ देर रात तक मुझे साथ लेकर फ़ोन पर बतियाती रहतीं, मगर कभी डर नहीं लगा। न उन्हें- न ही मुझे। अब तो रात क्या, दिन में भी साँस उल्टी गिनती गिनती रहती है, जाने कब कौन बाहरी किस बात पर बल्लम-भाला निकाल लाए! कब मेरी देह के साथ ही मेरी आत्मा रौंदी जाए और कब खून की धारा नाले के गंदे पानी की तरह बह निकले!

थरथराती हूँ, सिसकती हूँ, मंदिर के द्वार पर मत्था टेकती हूँ और प्रार्थना करती हूँ- "हर घर की आबरू सलामत रहे, हर घर में प्रेम और शांति का शंख बजे, देहरी से बाहर निकले लोग सही सलामत, मुस्कराते हुए लौटें, नए-पुराने- सब मिलजुल कर रहें और आने वाले का स्वागत करते हुए अपने साथ-साथ मेरा पता बताते रहें- मकान नंबर 1/2/3/4- 12- गली नंबर 9 पूर्वी दिल्ली।

000

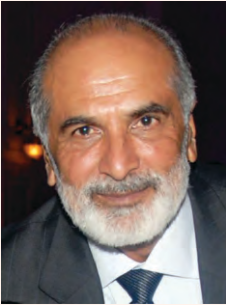
कोको का जन्मदिन

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : डॉ. प्रेम मान

हिन्दी अनुवाद :

डॉ.अमरजीत कौंके



प्रेम मान

मोबाइल- +1-860-983-5002



डॉ. अमरजीत कौंके

एडिटर प्रतिमान, 718,

रंजीत नगर -ए, भादसों रोड,

पटियाला -147001, पंजाब

मोबाइल- +91 98142 31698

ईमेल- pratimaan@yahoo.co.in

आज हमारी नातिन का पहला जन्मदिन है। हमारी बेटी निमरत ने अपनी बेटी, यानी हमारी नातिन, का नाम कोको रखा है। पश्चिमी देशों में कोकोनट को आम तौर पर कोको भी कह देते हैं। अमेरिका में कई औरतों के नाम कोको हैं। हमारी बेटी को यह नाम बहुत पसंद है और हमें भी यह नाम पसंद है क्योंकि कोको नाम का पंजाबी विरासत के साथ भी गहरा नाता है। छोटे होते हम कोको नाम आम सुनते थे। जब भी माता-पिता ने बच्चों से कोई चीज छिपानी होती तो वे कह देते कि कोको ले गई। आज हम कोको के जन्मदिन पर अपनी बेटी के घर आए हुए हैं। मैं बेडरूम में बैठा अपने खयालों में डूबा हुआ हूँ। मेरी पत्नी जसलीन, जिसे मैं आम तौर पर जस कह कर ही बुलाता हूँ, एक दूसरे कमरे में तैयार हो रही है। कोको के जन्म की कहानी भी अजीब सी ही है। कभी सोचा भी नहीं था कि हमारी नातिन इस तरह पैदा होगी जैसे वह हुई है।

हमें हिंदुस्तान छोड़े लगभग 40 साल ही हो गए हैं। हमारा एक ही बच्चा हमारी बेटी निमरत है जो अमेरिका आकर पैदा हुई थी और अब 33 साल की हो गई है। पहले-पहले अमेरिका आकर हम बहुत संघर्ष से गुजरे। बहुत मुश्किल दिन देखे। छोटी-छोटी नौकरियाँ कीं, जिनसे गुजारा भी मुश्किल से ही होता था। भले ही पंजाब से एम.ए. अकाउंटिंग की हुई थी; लेकिन हिंदुस्तान की डिग्री को अमेरिका में कम ही पूछते हैं। अगर जरूरत हो तो दुनिया की किसी भी यूनिवर्सिटी की डिग्री स्वीकार कर लेते हैं; लेकिन अगर जरूरत न हो तो फिर बिल्कुल नहीं। लगभग तीन साल बाद एक कंपनी वालों ने मुझे दफ्तर की नौकरी दे दी। फिर कुछ राहत मिली। गुजारा थोड़ा बेहतर होने लगा। उसके बाद ही हमने अपने परिवार को बढ़ाने के बारे में सोचा। कुछ साल बाद निमरत पैदा हुई। जब निमरत पैदा हुई तो कई रिश्तेदारों और दोस्तों ने तो कुछ भी नहीं कहा और जिन लोगों ने हमें पत्र लिखे, उनमें से बहुतों ने तो यही कहा था कि वाहेगुरु आगे बेटा भी दे देगा। उन दिनों फ़ोन तो बहुत ही कम थे और ज्यादातर बातें चिट्ठियों के जरिए ही होती थीं। बहुत थोड़े ही दोस्त थे जिन्होंने निमरत के जन्म पर हमें बधाइयाँ दी थीं। लेकिन हम दोनों बहुत खुश थे कि हमारे घर बेटी ने जन्म लिया है। हमने निमरत के जन्म से पहले ही यह फैसला कर लिया था कि हमें एक ही बच्चा पैदा करना है। इस तरह निमरत हमारी इकलौती बच्ची या कह लीजिए बच्चा है।

घर में खुशी हो, अच्छा गुजारा हो, प्यार मोहब्बत हो और एक-दूसरे के साथ सहमति हो तो समय गुजरने का पता ही नहीं चलता। साल भी दिनों की तरह झट से गुजर जाते हैं। अगर गुजारा मुश्किल से हो, घर में तंगियाँ हों, एक-दूसरे के साथ सहमति न हो, एक-दूसरे के लिए प्यार न हो, लड़ाई-झगड़ा हो तो दिन भी सालों की तरह गुजरते हैं। हमारे घर में हम दोनों की आपस में पूरी सहमति रही है, गुजारा भी बहुत अच्छा चलता रहा है। अमेरिका आने के तीन-चार साल बाद तंगियाँ भी लगभग ख़त्म हो गई थीं। फिर निमरत के जन्म होने पर घर में और भी रौनक आ गई। इस तरह सालों के गुजरने का कोई पता ही नहीं चला। इस खुशी के माहौल में ही निमरत घुटनों पे रेंगने लगी, फिर चलने लगी, फिर तोतली-तोतली बातें करने लगी, फिर प्राइमरी स्कूल जाने लगी, फिर मिडिल स्कूल और फिर हाई स्कूल में चली गई। ऐसा लगता जैसे आँख झपकने जितनी देर में ही वह हमारे घर से कुछ दूर कॉलेज में पढ़ने के लिए चली गई थी और कॉलेज की डॉर्म (हॉस्टल) में ही रहने लगी थी। निमरत का कॉलेज में दाखिल होकर हमसे कुछ दूर चले जाना हमारे लिए एक तरह से सदमे जैसा ही था। ऐसा लगा जैसे ख़ूबसूरत सपना देखते हुए अचानक आँख खुल गई हो। बस यही तो ज़िंदगी की असलियत है। हर पल, हर घड़ी, हर दिन एक जैसा नहीं रहता। पता नहीं ज़िंदगी की राह पर कहाँ जाकर कैसा मोड़ आ जाना है। निमरत

का कॉलेज घर से थोड़ी ही दूर था, कार में डेढ़ घंटे के क़रीब का रास्ता था। हम हर हफ़्ते निमरत को मिलने जाते थे और वह भी छुट्टियों में घर आ जाती। आम तौर पर हिंदुस्तानी माँ-बाप अपने बच्चों को डॉक्टर या इंजीनियर बनने के लिए ही जोर देते हैं लेकिन हमने निमरत को उसकी जिंदगी के बारे में पूरी आज़ादी दी थी। हमने उसे यही कहा था कि उसे जिंदगी में वही नौकरी लेनी चाहिए जिससे उसे खुशी मिले। निमरत ने कॉलेज से कम्युनिकेशन की डिग्री करके उसी शहर में एक कंपनी में नौकरी ले ली। वह अपनी नौकरी से बहुत खुश थी।

मैं बैठा सोच रहा हूँ कि हिंदुस्तानी लोग लड़कियाँ पैदा होने पर खुशी क्यों नहीं मनाते? खुशी मनाना तो दूर, काफी लोग तो अफ़सोस ही प्रकट करते हैं। हमारे हिंदुस्तानी समाज में औरतों की क़द्र ही कहाँ है? उन्हें बराबरी कब दी गई है? अरे, तुम बेटी पैदा करो, उसे पालकर बड़ा करो, फिर उसे ब्याह कर किसी दूसरे घर विदा कर दो और शादी का खर्च भी खुद ही करो और साथ में दहेज भी दो। फिर यह चिंता कि तुम्हारी बेटी दूसरे घर में कैसे रहती है और उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। ऐसे कारणों के कारण लोग बेटियाँ पैदा करने से डर नहीं तो क्या करें? मुझे याद आ रहा है कि हमारे समय में कैसे लड़कियों के स्कूलों-कॉलेजों के आगे नौजवान लड़के लड़कियों को देखने और छेड़ने के लिए खड़े रहते थे। राह जाती लड़कियों को छेड़ना, बुरी बातें कहना और भद्दे बोल बोलना। जैसे हिंदुस्तान में लड़कियों के बलात्कार हो रहे हैं, बहुत शर्म की बात है। बलात्कार करके लड़कियों को मारकर पेड़ों से लटका दिया जाता है, आग लगाकर जला दिया जाता है। राह जाती लड़कियों पर तेज़ाब फेंका जाता है। कितनी घिनौनी बातें हैं। मेरा मन ऐसे आदमियों के लिए नफ़रत से भर जाता है। मेरे शरीर में सिहरन दौड़ जाती है। फिर ऐसे माहौल वाले देश में बेटियाँ कौन पैदा करना चाहेगा? अमेरिका है। औरतों को पूरी आज़ादी है। भले ही संपूर्ण बराबरी नहीं,



लेकिन फिर भी पूरी के क़रीब-क़रीब ही है। कोई भी राह जाती औरतों को तंग नहीं करता। माँ-बाप को शादी में कोई दहेज नहीं देना पड़ता। शादी पर खर्च करना भी लड़कियों के माँ-बाप का फ़र्ज़ नहीं समझा जाता। इसी कारण यहाँ लोग बेटियाँ पैदा करने में कोई फ़र्क़ नहीं समझते। बहुत सारे लोग तो बेटियों को बेटों से ज़्यादा पसंद करते हैं।

मेरी सोच कई दिशाओं में घूम रही है। मुझे याद है कि हमारे कॉलेज में पढ़ने वाली एक लड़की ने कुएँ में छलाँग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। कारण सिर्फ़ यही था कि कुछ लड़के उसे कॉलेज आते-जाते तंग करते थे। उस लड़की ने अपने माँ-बाप को भी इस बारे में बताया था लेकिन ग़रीब माँ-बाप कुछ नहीं कर सके। लड़की ने अपनी कुछ महिला अध्यापिकाओं से भी बात की लेकिन वे भी कुछ नहीं कर सकीं। किसी भी लड़के को उस लड़की की मौत का दोषी नहीं ठहराया गया। कितनी लड़कियों को सिर्फ़ इसलिए ही मार दिया जाता है कि वे अपनी मर्ज़ी से शादी कर लेती हैं, चाहे अपनी जाति में हो या जाति से बाहर। इसे इज़्ज़त का सवाल बना लिया जाता है। हम अभी भी जातियों के सिलसिले को नहीं छोड़ते। हम तो विदेशों में आकर भी जातियों के कीचड़ से नहीं निकलते।

मैंने सुना कि हमारे गाँव वाली बिशनी की छह लड़कियाँ हुई थीं। हर बार उन्हें लड़के की ही उम्मीद होती थी लेकिन हर बार लड़की होने पर वे निराश हो जाते। बिशनी अपनी

लड़कियों को थोड़ा-सा अफीम देकर चारपाई पर लिटा देती और खुद घर के काम-धंधों में लग जाती। अफीम और नशे से लड़कियाँ सोई रहतीं। सुना कि अफीम थोड़ी ज़्यादा देने से छह में से पाँच लड़कियों की मौत जन्म के कुछ महीने बाद ही हो गई थी। सिर्फ़ एक ही बेटी बची थी। सोचता हूँ कि भले ही हिंदुस्तान में माहौल कुछ बदल रहा है लेकिन अभी हम बहुत पीछे हैं। अगर औरतों को बराबरी के अधिकार देने की बात करें, उन्हें मान और इज़्ज़त देने की बात करें तो हमारा समाज अभी बहुत पीछे है और यह बदलाव बहुत धीरे-धीरे आ रहा है।

हाँ सच, मैं बात तो कोको के जन्मदिन की कर रहा था लेकिन बात कहीं और ही भटक गई। मैंने बताया था कि आज कोको का जन्मदिन है और उसके जन्म की कहानी भी अजीब ही है।

कुछ साल पहले की बात है, मैं घर बैठा एक किताब पढ़ रहा था कि मेरी पत्नी जस मेरे पास आकर बैठ गई।

"मुझे पता चला है कि यह अमरजीत की की बेटी कमलप्रीत समलैंगिक है।" जस ने एक-दो बातें और करने के बाद कहा। अमरजीत, उसका पति और बच्चे हमारे पड़ोस में रहते हैं।

"तुम्हें कैसे पता?" मैंने किताब से ध्यान हटाकर जस की ओर देखते हुए पूछा।

"मेरी सहेली सुदेश ने फ़ोन पर बताया।"

"उसे कैसे पता चला?"

"यह तो मैंने पूछा नहीं। लेकिन बंत, तुम भी आगे-आगे प्रश्न ही करते रहते हो।" मेरा पूरा नाम तो गुरबंत सिंह है लेकिन मेरी पत्नी मुझे बंत कहकर ही बुलाती है।

"क्या पता किसी ने यूँ ही बात बना ली हो।"

"किसी ने बात बनाकर क्या लेना?"

"क्या लेना है, यह तो बात बनाने वाले को ही पता होगा।"

"बस, तुम भी किसी बात पर विश्वास नहीं करते।"

"बात विश्वास की नहीं। पहली बात तो

यह कि हमें पता ही नहीं कि यह बात सच है या नहीं। दूसरी बात यह कि अगर यह सच भी है तो हमें क्या? कमलप्रीत 26-27 साल की है और उसे अपने फ्रैसले करने का पूरा अधिकार है। अगर वह समलैंगिक है तो क्या हुआ। अगर उसकी खुशी इसी में है तो क्या फ़र्क पड़ता है।" जिस कंपनी में मैं काम करता हूँ, वह काफी बड़ी है। मेरे साथ काम करने वाली एक लड़की और एक लड़का समलैंगिक हैं। दोनों से मेरा थोड़ा-बहुत परिचय भी है। मैंने उनसे इस विषय पर तीन-चार बार कुछ मामूली-सी बातें भी की हैं। इस कारण मैं किसी के समलैंगिक होने को बहुत आसानी से ही स्वीकार कर लेता हूँ, इससे नफ़रत नहीं करता।

"लेकिन मैं तो सोचती हूँ, बेचारे माँ-बाप पर क्या बीतती होगी।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद जस बोली।

"उन पर क्या बीतनी है? उनकी अपनी जिंदगी है और कमलप्रीत की अपनी। कमलप्रीत उनकी बेटी है, गुलाम तो नहीं कि हर काम उनकी मर्जी से और उनकी खुशी के लिए ही करे। उसकी अपनी जिंदगी है, अपनी खुशी है, अपने विचार हैं। जो भी उसे अच्छा लगता है, उसे करने का अधिकार है।"

"बेचारों की इकलौती बेटी। अब किसी नाती-नातिन की उम्मीद भी नहीं रही।" फिर काफी देर चुप रहकर जस बोली। लेकिन मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

"मुझे तो फ़िक्र है अगर अपनी निमरत भी...!" जस कुछ मिनट रसोई की ओर घूमकर आई और फिर बोली।

"निमरत भी क्या?" मैंने जस की बात का मतलब समझते हुए भी प्रश्न कर दिया।

"अगर निमरत भी समलैंगिक हुई तो हम क्या करेंगे?"

"करना क्या है, हम अपनी जिंदगी जिएँगे और उसे अपनी जिंदगी जीने देंगे जैसे भी वह चाहती है।"

इसके बाद जस कुछ नहीं बोली लेकिन उसका चेहरा काफी उदास लग रहा था। उसने एक-दो गहरी साँस ली और कुछ अजीब-से ढंग से मेरी ओर देखा भी। फिर वह दूसरे कमरे



में जाकर पाठ करने लगी। भले ही मैंने कहने को तो ऊपर वाली बातें कह दीं लेकिन मैं काफी देर कमलप्रीत के समलैंगिक होने के बारे में सोचता रहा कि उसके माँ-बाप ने इस ख़बर को कैसे लिया होगा। क्या उन्होंने इस बात को आसानी से स्वीकार कर लिया होगा या फिर काफी मानसिक संघर्ष से गुज़रे होंगे। अगर सचमुच ही निमरत समलैंगिक हुई तो मुझे इसे कैसे स्वीकार करना चाहिए। मैं ख़यालों में ही इस बात को स्वीकार करने के बारे में सोचता रहा।

अजीब बात थी कि निमरत कॉलेज की पढ़ाई ख़त्म करके काम पर भी लग गई थी लेकिन उसका कोई भी बॉयफ्रेंड नहीं था। अमेरिका जैसे मुल्कों में तो लड़कियाँ-लड़के छोटी उम्र से ही बॉयफ्रेंड और गर्लफ्रेंड बना लेते हैं। निमरत ने शादी के बारे में अपनी कभी भी कोई हामी नहीं भरी थी। मेरा विचार तो यही था कि जब निमरत का मन मानेगा तब उसकी शादी कर देंगे। बच्चों को यूँ ही शादी के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए और वह भी अमेरिका में और फिर इस इक्कीसवीं सदी में? शादी के माने ही बदलते जा रहे हैं। कभी रिवाज था कि हिंदुस्तान में बारह-तेरह साल के बच्चों की शादी कर देते थे। फिर कई-कई साल लड़का अपने घर और लड़की अपने घर रहते। लेकिन अब तो बच्चे कह देते हैं कि उन्होंने सेटल होने से पहले शादी की बात भी नहीं करनी। आजकल, ख़ासकर पश्चिमी

देशों में, बहुत से बच्चे शादी करते ही नहीं। कहते हैं, पहले शादी कराओ, इतना पैसा खर्च करो, फिर अगर एक दूसरे से न बने तो तलाक़ लो, फिर पैसा खर्च करो। यह कोई बात है? आराम से शादी के बिना ही साथ-साथ रहते रहो। जब तक निभ गई ठीक। जब दिल ऊब गया, अपना बोरी-बिस्तर उठाओ और अलग ठिकाना बना लो। जस ने कई बार निमरत से शादी की बात छोड़ी थी लेकिन निमरत ने कभी भी कोई ठीक जवाब नहीं दिया था।

"मम्मी, आप हर समय शादी की बात ही क्यों करती हैं?...मैं जब भी शादी कराऊँगी आपको बता दूँगी।" निमरत के जवाब ऐसे ही होते थे।

पाँच साल पहले की बात है, वीक-एंड पर निमरत आई हुई थी। मैं और जस बैठे कुछ मशवरा कर रहे थे कि निमरत आकर हमारे पास बैठ गई।

"मम्मी-डैडी, मुझे आपसे एक बात करनी है।" कुछ देर सामान्य-सी बातें करने के बाद निमरत बोली।

"बेटा, ज़रूर।" मैंने कहा।

"मैं समलैंगिक हूँ और मेरी साथी विरोनिका मेरे साथ रहने लगी है।"

मैंने और जस ने एक-दूसरे की ओर देखा लेकिन कहा कुछ नहीं।

"आप मेरे फ्रैसले से राज़ी हैं?" हमारे कुछ न बोलने पर निमरत ने फिर कहा।

"बेटा, अगर तुम्हारा यही फ्रैसला है तो हम इसे स्वीकार करते हैं।" मैं उठकर निमरत को गले लगाते हुए बोला। जस ने भी ढीले-से हाथों से उठकर निमरत को बाँहों में ले लिया लेकिन कहा कुछ नहीं। उसके चेहरे के भाव कुछ इस तरह थे जैसे कह रही हो कि वही बात हुई न जिसका डर था।

"आपको कोई ऐतराज़ या शर्मिंदगी तो नहीं?"

"बेटा, हमें ऐतराज़ या शर्मिंदगी किस बात की? तेरी जिंदगी है। तू बच्ची तो है नहीं। जो भी फ्रैसला तू करेगी, ठीक ही है। तेरी खुशी में ही हमारी खुशी है। इसमें कोई शर्मिंदगी नहीं। यह हमारे घर का मामला है, इसमें किसी को क्या

एतराज है?"

मेरा जवाब था।

"मम्मी, आप क्या सोचती हैं?" निमरत ने अपनी माँ को खामोश बैठे देखकर पूछा।

"बेटी, मैं क्या कह सकती हूँ। जो तुझे ठीक लगता है, मुझे मंजूर है। हमें तो यह भाणा मानना ही पड़ेगा।" जस की आँखों में से कुछ आँसू गिरते दिखाई दिए।

"आपको कोई दुख तो नहीं होगा?"

"मुझे दुख लगे भी तो बेटी, मैं क्या कर सकती हूँ?"

"डैडी-मम्मी, आई लव यू।" निमरत यह कहकर हम दोनों को अपनी बाँहों में प्यार से कसकर अंदर अपने कमरे में चली गई।

"मैं कहती हूँ, भला लोग समलैंगिक क्यों बनते हैं?" कुछ देर चुप रहने के बाद जस ने उदासी भरी आवाज में मुझसे पूछा।

"वैसे इस विषय पर कोई भी सहमति नहीं है। कई राय हैं। कुछ विद्वान तो कहते हैं कि इंसान जन्म से ही समलैंगिक होते हैं। उनके दिमाग में कुछ ऐसे रसायन होते हैं जो उन्हें समलैंगिक बना देते हैं। लेकिन कुछ विद्वान इस बात से सहमत नहीं। उनके अनुसार इंसान मनोवैज्ञानिक कारणों और जिस वातावरण में पला हो, उसके कारण समलैंगिक बनता है। कुछ विद्वान कहते हैं कि ये दोनों मत ही ठीक हैं।"

जस ने और कुछ भी नहीं कहा लेकिन वह बहुत उदास और परेशान दिखाई दे रही थी। मैंने उसे दिलासा दिया और बच्ची की खुशी को स्वीकार करने की सलाह दी। कुछ देर बाद जस उठी और अंदर बेडरूम में जाकर पाठ करने लगी।

"मम्मी-डैडी, मैं कुछ महीनों में माँ बनने वाली हूँ।" करीब डेढ़ साल पहले निमरत ने हमारे पास बैठे हुए मुस्कराकर मुझे और जस को बताया।

"बेटा, बहुत-बहुत बधाई।" मैंने निमरत का सिर सहलाते हुए कहा।

"पुत्र, बधाइयाँ। लेकिन यह हुआ कैसे? तूने तो शादी भी नहीं कराई और तेरा कोई बॉयफ्रेंड भी नहीं।" जस ने निमरत को बाँहों में

कसते हुए बधाई देने के साथ-साथ सवाल भी कर दिया।

"माँ, इक्कीसवीं सदी के जमाने में बच्चे पैदा करने के लिए पति या बॉयफ्रेंड की जरूरत नहीं।"

"फिर यह हुआ कैसे?" जस का अगला सवाल था।

"माँ, यह आर्टिफिशियल इन्सेमिनेशन से हुआ जिसमें डॉक्टर किसी आदमी द्वारा दान किया गया स्पर्म औरत के भीतर डाल देते हैं।"

"तो फिर बच्चे का पिता कौन है?" कुछ देर चुप रहने के बाद जस ने सवाल किया।

"माँ, मालूम नहीं। पिता को जानने की क्या जरूरत है? सिर्फ उसकी नस्ल, रंग, पढ़ाई और दूसरी विशेषताओं वगैरह के बारे में मुझे पता है।"

"जैसे तू खुश है।" जस ने जैसे मुश्किल से सब कुछ स्वीकार कर लिया हो।

"बेटा, तेरी क्या इच्छा है, बेटे की या बेटी की?" मैंने निमरत से पूछा।

"डैडी, मैं तो बेटी चाहूँगी। बेटों से बेटियाँ ज्यादा प्यार करती हैं। लेकिन ज्यादा जरूरी तो यह है कि जो भी बच्चा पैदा हो, वह स्वस्थ और योग्य हो।"

"बेटी, तूने बिल्कुल ठीक कहा।" मेरा जवाब था।

"लो, मुँह मीठा करो।" जस ने रसोई से लड्डुओं का डिब्बा लाकर निमरत और मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा। मैंने एक लड्डू उठाकर खा लिया और निमरत ने थोड़ा-सा लड्डू तोड़कर अपने मुँह में डाल लिया।

कुछ महीनों बाद कोको पैदा हुई, जिसे देखकर और जिसके साथ लाड़ करते हुए हम फूले नहीं समाते। आज कोको का जन्मदिन है। हम कल से ही बेटी के घर आए हुए हैं, कोको का जन्मदिन मनाने के लिए। मैं एक अलग कमरे में बैठा अपने खयालों में डूबा हुआ हूँ। निमरत और जस रसोई और लिविंग रूम में सारा प्रबंध करने में व्यस्त हैं।

"डैडी, आप यहीं बैठे हैं। मेहमान आने शुरू हो गए हैं। बाहर आ जाइए।" निमरत ने आकर मेरे खयालों की लड़ी भंग कर दी है।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं.

3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख।

पता : शाइन प्रिंटेर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 10 मार्च 2026

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

गड्ढा नंदकिशोर बर्वे



नंद किशोर बर्वे
114, बिजली नगर,
इंदौर मप्र 452016
मोबाइल- 9827207227
ईमेल- barvenk@gmail.com

मैं गड्ढा हूँ। भ्रष्टाचार और अव्यवस्था के संसर्ग से मेरा जन्म होता है। और चूँकि भ्रष्टाचार और अव्यवस्था को आम जनता खूब गरियाती है, इसलिए यह वंशानुगत बीमारी मुझे जन्म के साथ ही मिलती है अर्थात् मैं भी अपने जन्म के साथ ही खूब गरियाया जाता हूँ। शुद्ध हिन्दी में बोले तो खूब गालियाँ खाता हूँ। निरंतर बिना नागा, वह भी कई-कई किलो। मेरे माता-पिता के नाम तो मैंने आपको बता दिए। अब मेरे जन्म के हेतु भी बताए देता हूँ। तभी तो आत्मकथ्य पूरा होगा। तो बात ऐसी है कि भ्रष्टाचार अपनी जगह अपना काम करता है और वह किसी अन्य बात पर ध्यान नहीं देता। उसको ईमानदारी वगैरह जैसी फालतू की बातों से सख्त नफ़रत होती है। जब भ्रष्टाचार की मात्रा और निरन्तरता बढ़ती जाती है, तब अव्यवस्था का प्रवेश होता है। आप तो जानते ही हैं, कि आम तौर पर पति की उम्र पत्नी से ज्यादा होती है। इसलिए यहाँ भी उसी फार्मूले के अनुसार भ्रष्टाचार को हम पति मान लें, और अव्यवस्था को पत्नी तो पति की उम्र ज्यादा हुई न पत्नी से! क्योंकि पहले भ्रष्टाचार का जन्म हुआ, इसलिए वह उम्र में बड़ा है, अव्यवस्था से। बस इस प्रकार जब भ्रष्टाचार और अव्यवस्था की आँखें चार होती हैं, तब मेरा जन्म होता है। यूँ जन्म तो सभी का उत्साह और उमंग का अवसर होता है पर मेरे जन्म का कोई उत्सव नहीं होता। न किसी को मन में उत्साह ही होता है।

मेरा जन्म आदमी को फूटी आँख नहीं सुहाता। मुझे देखते ही आँखें तरेरता है, मानों मैंने जन्म लेते ही उसकी ज़मीन दबा ली हो। हाँ ज़मीन तो मैं दबाता हूँ, पर ख़ास तौर पर रास्तों, सड़कों और राजमार्गों की। इनकी ज़मीन दबाने में जो मज़ा है, वह कहीं और नहीं आ सकता। इसलिए मेरी दूसरी कोई और ज़मीन दबाने में मेरी बिल्कुल रुचि नहीं रहती है। यह कम उन भू माफियाओं तक रहने दो, जिनके लालच का गड्ढा हमेशा मुझ से बड़ा ही रहता है। अब बताओ भला खेतों, खलिहानों और जंगलों में अगर मैं ज़मीन दबा भी लूँ तो किसी को कानों कान खबर भी नहीं होगी। फिर ऐसी ज़मीन दबाने से क्या फ़ायदा ? जो किसी की आँख की किरकिरी न बने। बोले तो बकरे की जान गई, और खाने वालों को मज़ा नहीं आया। आदमी को गहराईयों से बड़ा लगाव होता है। बात की, विचारों की, व्यवहार की गहराई का बड़ा कायल होता है आदमी। लेकिन मेरी गहराई से घबराता है। चिढ़ता है। मेरी गहराई उसको मुँह चिढ़ाती है, हालाँकि मेरी गहराई में मेरा कोई रोल नहीं रहता। वह तो मेरे माता पिता की दी हुई होती है, जैसे आदमी का डील-डौल, सूरत-सीरत उसके माता-पिता से उसको मिलती है, ठीक वैसा ही मेरे साथ भी होता है। मेरे पूज्य पिताजी श्री भ्रष्टाचार जी और पूज्या माँ अव्यवस्था से ही मैं अपना आकार, विचार और व्यवहार पाता हूँ।

हम गड्ढों की भी कई प्रजातियाँ, जातियाँ और उपजातियाँ होती हैं। जैसे बड़ा, छोटा, नया पुराना, गहरा उथला इत्यादि। हम कह सकते हैं कि ये हमारे विभिन्न प्रकार हैं। हालाँकि लोग हमें

इस तरह बाँटने की कोशिश करते हैं, लेकिन हम आदमी की तरह धर्म, सम्प्रदाय, जाति भाषा या क्षेत्र में बाँटे हुए नहीं रहते। हमारी एक ही पहचान होती है, उसके लिए केवल गड़ढा होना ही पर्याप्त होता है। हम जैसे कश्मीर की वादियों में होते हैं, ठीक वैसे ही सट्याद्री और निलगिरी की पहाड़ियों में भी रहते हैं। और सभी दूर हम गड़ढे के नाम से ही जाने जाते हैं, फिर कोई हमें किसी भी नाम से पुकारे। लेकिन हमारी केवल एक ही पहचान है- गड़ढा। हम गड़ढे चूँकि मानवीय भ्रष्टाचार और अव्यवस्था के वंशज होते हैं, इसलिए कुछ मानवीय स्वभाव हम में आ जाता है, जैसे कुछ गड़ढे सज्जन होते हैं, वहीं कुछ दुर्जन किस्म के गड़ढे भी होते हैं। सज्जन गड़ढे आदमी को थोड़े हिचकोले, थोड़े झटके और थोड़ी सी चोट देते हैं। वहीं कुछ दुर्जन गड़ढे दुराचार और दुर्व्यवहार की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं। आदमी को गंभीर चोट देना उसकी जान ले लेना बड़ी छोटी गाड़ियों में सवार लोगों को नुकसान पहुँचाना उनके लिए रोजमर्रा की बात होती है। और ऐसा करके वे बड़े प्रसन्न होते हैं।

सज्जन गड़ढे इनको समझाते हैं, कि इतनी मनमानी ठीक नहीं होती। कल को मलबा डालकर भर दिए जाओगे तो हाथ मलने के आलावा कुछ नहीं कर सकोगे। ऐसे में ये दुर्जन गड़ढे सज्जन गड़ढों की हँसी उड़ाते हैं। उपहास करते हैं, और कहते हैं कि गड़ढे का जन्म लिया और यूँही जिंदगी गुज़ार दी तो हम क्या गड़ढे हुए! और हाँ हमको भरा जाने की समझाइश मत दो।

अरे जो मलबा हममें डाला जाता है, उसमें थोड़ी सी सीमेंट या डामर पहले ही पर्याप्त मिला दिया होता तो हमारा जन्म ही नहीं होता। सीमेंट, डामर को भी हम कुछ नहीं समझते तो कोरा मलबा हमारा क्या बिगाड़ लेगा। थोड़े ही समय में हम उसको भी पानी में बहा देंगे। हमें ऐसी कोरी गीदड़ भभकियों से डराने की कोशिश मत करो। इनकी ऐसी बातें सुनकर बेचारे सज्जन गड़ढे चुप हो जाते हैं। ये दुनिया का दस्तूर है कि सज्जनों को दुर्जनों के सामने चुप ही रहना पड़ता है; क्योंकि व्यवस्था भी

दुर्जनों की ज़्यादा और तुरन्त सुनती है। सज्जनों की तो सुनवाई ही कहीं नहीं तो वे किसके बूते भिड़ें दुर्जनों से। आदमियों की ही तरह गड़ढों कि भी अपनी पी आर एजेंसी होती है और यह तो सभी जानते हैं, कि पी आर एजेंसी किसी भी अदने से इंसान को लाइम लाइट में लाकर उसको रातों-रात पब्लिक फिगर बना सकती हैं। हालाँकि कुछ लोगों के मामले में ये बार-बार फेल होती भी पकड़ी गई हैं; क्योंकि ये कुछ लोगों को कई कई बार लांच करके भी कुछ खास उपलब्धि हासिल नहीं कर सकी हैं। तभी तो कोई गड़ढा अखबारों के मुख पृष्ठ पर स्थान पाता है, तो कोई उसी अखबार में एक कोने को तरसता रहता है। इस मामले में जानलेवा गड़ढों का कोई सानी नहीं। वे जानते हैं सुखियों में बने रह कर ओहदेदारों की नज़रों में आने का हुनर और बेचारे बाकि गड़ढे पड़े रहते हैं, अपने हाल पर लोगों की गालियाँ खाते हुए। यों तो चर्चा में रहना हर एक गड़ढे का जन्मसिद्ध अधिकार होता है, लेकिन भ्रष्टाचार रहित और विश्व स्तरीय के प्रचार के साथ बनाए गए राजमार्गों / एक्सप्रेस हाईवे पर अपनी मर्जी से जगह चुनकर और उस पर विराजित हो कर चर्चा में आने का जो मज़ा है, वह गाँव खेड़े की सड़कों पर पड़े रहने में कहाँ? इस मामले में देखें तो हम गड़ढे भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आदमी की तरह गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने का हुनर जान गए हैं।

जब ऐसे राजमार्गों / एक्सप्रेस हाईवे और यहाँ तक कि विमानों के रनवे पर हम अतिक्रमण कर बैठते हैं, तब सरकार के और व्यवस्था के माथे पर दिखावे के लिए जो चिंता कि रेखाएँ उभरती हैं, उन्हें देखकर जो आनंद आता है, वह अपनी मिसाल आप होता है। सरकार जाँच का आश्वासन देती है और घोषणा करती है कि किसी भी दोषी को बख्शा नहीं जाएगा, तब उस घोषणा के खोखलेपन को हम ख़ूब एन्जॉय करते हैं। क्योंकि हमारे जन्मते ही ऐसी घोषणाओं की देश में लंबी परंपरा रही है। जाँच चलती रहती है, और हम हर दिन नई निचाइयों और गहराइयों को प्राप्त

करते रहते हैं। इस तरह सुखियों में आया जानलेवा गड़ढा जब ओहदेदारों की आँख में चढ़ जाता है, तब उसके दिन पूरे हो जाते हैं। ऐसा लगता तो है, जब अगली सुबह संबंधित विभागों के लोग मलबा लेकर हम को भरने का जतन करना चाहते हैं, तो हम अपने अस्तित्व की आखिरी लड़ाई लड़ने को तत्पर हो जाते हैं। अभी उस दिन तमाम शिकायतों और पेपर बाज़ी के बाद हमको भरने आए मजदूर से मेरी (गड़ढे की) बात हुई—

"क्या लाए हो?" मैंने शोले के कालिया की तरह मजदूर से पूछा।

"मलबा लाया हूँ गड़ढा जी।"

"हमें भरने के लिए ये रेत, मुरम, गिट्टी लेकर आया है? और सीमेंट, डामर क्या खुद का पेट भरने के लिए रख लिया?" मैं कालिया का साक्षात् अवतार लग रहा था।

"साहब ने जितना कहा पूरा लाया हूँ जी।"

"अच्छा और बाकी का साहबों का पेट भरने के लिए छोड़ आया है?"

"....."

"चल भर दे तू भी क्या याद रखेगा। लेकिन ध्यान रहे बिना उचित मात्रा की सीमेंट / डामर के मैं मानने वाला नहीं हूँ। दो दिन में ठिकाने लगा दूँगा तेरा ये मलबा।"

"जैसी आपकी मर्जी।" मजदूर बोला।

फिर मैंने आगे कहा- "तू भी जानता ही होगा महाभारत में पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण जैसे कई महारथियों ने अपनी मृत्यु के तरीके तक पांडवों को बता दिए। तभी वे उनसे जीत सके। उसी तरह, चल आज मैं भी खुद को उनके जैसा महान् समझकर तुझे हमारी प्रजाति के सर्वनाश का तरीका बताता हूँ। अगर हमको जड़ से ख़त्म करना चाहते हो, तो अपने नीति नियंताओं को और ओहदेदारों को बोलना कि सड़कों / राजमार्गों के निर्माण में उचित मात्रा में सीमेंट / डामर मिला लिया करें। तब ही हमारा नामोनिशान मिट सकता है, वरना हम मिटने से रहे।"

बेबस मजदूर मेरी बात सुनकर, साथ लाया मलबा मुझमें डालकर, अपने फटे शर्ट से अपना पसीना पोंछने लगा।

पतन पर एक चिंतन

कमलेश पाण्डेय



कमलेश पांडे

बी-260, पॉकेट-12, केंद्रीय विहार

सेक्टर-12, नोएडा (उ.प्र.)

मोबाइल- 8383016604

ईमेल- kamleshpande@gmail.com

इस ज़मीन के ऊपर जो भी उठा, खड़ा या लटका है, उसका नीचे आ गिरना संभाव्य है। जब से यह कायनात बनी है, चीजें गिरती आई हैं। कुछ गिरकर उठ जाती हैं तो कुछ वहीं नीचे धँस जाती हैं। कुछ उठने की कोशिश करती आखिर हौसला खोकर वहीं आँधे मुँह लेट जाती हैं। कुछ पतन बेहद खास क्षणों और अंदाज़ में संपन्न होते हैं और सिद्धांत या नज़ीर बन जाते हैं। जैसे न्यूटन के सामने गिरा सेब। कुछ ख़बरे बनते हैं, तो एकाध पतन इतिहास के पन्नों में भी दर्ज होते हैं और मिसाल देने के काम आते हैं।

सभी गिरे हुएओं को पतित नहीं कहा जाना चाहिए। प्रकृति में पतन का अपना चक्र है जिसमें पतझड़ में पत्ते, वर्षा में बूँदें, सर्दी में बर्फ़ और हर मौसम में पहाड़ों से झरने गिरते रहते हैं। यह पतन मानवता को ऊपर उठाने में मददगार सिद्ध होते हैं। पर आदमी के पतन की कोई हद, दिशा या पूर्व सूचना नहीं होती। उसके पतन के प्रभाव से कई स्थूल चीजें गिरती हैं, जिसमें पुल, इमारतें, हवाई जहाज़ से लेकर पहाड़ तक शामिल हैं। इस पतन से हुए पतन की भी कोई समय सीमा नहीं होती कि आज आदमी गिरा और इतने समय में उसके नतीजे फलौ-फलौ चीज़ गिर जाएगी। यानी पतन का असर बहुत व्यापक और गुप्त होता है। आदमी के गिरने की प्रतिक्रिया में प्रकृति अक्सर कुछ चीजें गिराती है और तब इंसानी दुनिया उलट-पलट मच जाती है।

आप्राकृतिक उठानों की वजह से गिरावट की संभावना बढ़ती जा रही है। ऊँचे उठने की लालसा में ज़मीनी संतुलन खो कर आदमी जब-तब गिर जाता है। भरसक संतुलन बना कर रखे तो भी ठोकर खाकर या किसी और की लँगड़ी की चपेट में आकर ज़मीन पर लोट जाने का वाकया दरपेश आ सकता है। अहंकार की गैस से फूले गुब्बारे से लटक कर ऊपर उड़ने वालों का पतन सहज संभाव्य है। ऊँचे आदर्शों या नैतिकता के पंख लगाकर हवा में तैरता आदमी कभी भी स्वार्थ या लोभ का तीर खाकर गिर सकता है। मनुष्य मूल रूप से एक पतनशील प्राणी है। साथ ही इतना बेशर्मा और ढीठ भी कि ज़मीन पर आ गिरने को ज़मीन से अपना जुड़ाव भी बता सकता है।

शायर कहता है- "जो कहता था कल तक सँभलना सँभलना, वही लड़खड़ाया सवेरे सवेरे"। यानी औरों को सवेरे ही नहीं दिन-रात ऊँचे आदर्शों के टीले पर चढ़ जाने को उकसाने वाला ख़ुद अनैतिकता के गड्ढे में गिरा हुआ मिल जाता है।

गिरे हुए को उठाने की रवायत कुछ यों बदली है कि अब लोग गिरे हुएओं को बटोर कर उनका एक टीला-सा बना लेते हैं। फिर उसी पर चढ़ कर अपनी ऊँचाई पर इतराते हैं। अक्सर यह ऊँचाई नीचाई को भी शर्मसार करने वाली होती है। किसी से प्रेरणा लेकर, ख़ुद योजना बनाकर या धोखे से ही कोई शख्स गिर जाए तो फितरतन इर्द-गिर्द खड़े कुछ उत्सुक असावधान लोगों की टाँग खींचकर साथ गिरा लेता है। जब बहुत से गिर चुके होते हैं तो आसपास खड़े लोगों में एक-आध तो यही देखने के लिए गिर लेते हैं कि इतने लोग गिर रहे हैं, कहीं गिरने में मज़ा तो नहीं। प्रायः होता भी है। जल्द ही ज़मीन हर ओर फिसलन भरी हो जाती है और लोग खेल-



साफ़ सफ़ाई नरेंद्र कौर छाबड़ा

रेलवे प्लेटफार्म पर अफरा-तफरी मची है। चारों ओर साफ़ सफ़ाई, फर्श पर झाड़ू के साथ पानी से धुलाई भी हो रही है। नई सुपरफास्ट ट्रेन से मंत्री जी निरीक्षण करने आ रहे हैं शहर से गरीबी कितनी घटी, भिखारियों की संख्या कितनी कम हुई...? उनका विभाग गरीबी हटाओ अभियान के अंतर्गत था। स्टेशन के आसपास के सभी भिखारियों को डंडे और गालियों की बौछार से खदेड़ दिया गया है। एक कार्यकर्ता का ध्यान प्लेटफार्म के दूसरे कोने में, पेड़ के नीचे अधलेटी विकलांग महिला भिखारी की ओर गया। वह वरिष्ठ कार्यकर्ता के पास गया- "सर, उधर एक भिखारन बैठी है उसका क्या करना है...? वह चल फिर नहीं सकती..।"

मंत्री जी की ट्रेन पंद्रह मिनट बाद आने वाली थी। उद्घोषणा हो चुकी थी। सामने खड़ी ट्रेन को हरी झंडी दिखा दी गई। दोनों कार्यकर्ता दौड़कर भिखारन के समीप पहुँचे। दो सहायकों को बुलाया सभी ने मिलकर भिखारन को उसकी मैली कुचैली चादर समेत उठाया। वह चीखने लगी। उसके कटोरे में कुछ चिल्लर और रुपये पड़े थे। कार्यकर्ता ने वे सब समेट अपने जेब के हवाले किये और दौड़कर सब ने भिखारन को ट्रेन के डब्बे के अंदर ठेल दिया। गाड़ी सरकने लगी थी। पूरा प्लेटफॉर्म स्वच्छता से चमक रहा था और कार्यकर्ता मंत्री जी के स्वागत के लिए उनकी ट्रेन का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे।

000

नरेंद्र कौर छाबड़ा

सी- 1203, वाटर्स एज विशाल नगर, पिंपले निलख, पिंपरी
चिंचवड़ पुणे -411027 (महाराष्ट्र)

मोबाइल- 9325261079

ईमेल- narender.chhabda@gmail.com

भावना के साथ रपट कर गिरने का मज़ा लेने लगते हैं। गिरने में सबका साथ हो तो पतन पतन न भवति। मौके पर कुछ गम्बर सिंह प्रकट होकर लोगों को यह संदेश देने लगते हैं कि "जो गिर गया, समझो उठ गया।" गिरावट को ऊँचाई के पैमाने पर नापा जाने लगता है। गिरावट धीरे-धीरे न्यू नॉर्मल हो जाती है। अब सीधी रीढ़ किये खड़े लोग ही अटपटा महसूस करने लगते हैं और गिर पड़ने को प्रवृत्त होते हैं। कालान्तर में गिरी हुई हालत में रेंगते हुए आगे बढ़ने को ही 'चलना' कहा जाने लगता है। अन्य शब्दों में इंसान का विकास क्रम उलट जाता है। यही वह अवस्था है जब इंसान के साथ उसके द्वारा खड़ी की गई इमारतें, पुल आदि भी गिरने की होड़ में लग जाते हैं।

एक सवाल यह भी कि गिरने की हद क्या है। गणित के हिसाब से ज्यादा ऊँचाई से हुई गिरावट बड़ी होती है। नैतिकता के हिसाब से भी खूब ऊँचे शख्स के गिरने से बड़ा धमाका होता आया है। इसलिए गिरने से होने वाले शोर को दबाने की तकनीक का विकास भी कर लिया गया है। एक बार गिर जाए तो आदमी और-और गिरता चला जाता है, इसलिए उस गहराई का अनुमान लगाना ज़रूरी है, जहाँ इस शृंखलाबद्ध गिरावट के रुकने की संभावना है। दुनिया की तमाम मिसालों को देखते हुए गिरावट फिलहाल माप तौल के किसी भी यंत्र की औक्रात से परे जा चुकी है। जैसा पहले जिक्र हो चुका कि अब गिरा हुआ शख्स उलटे खासी ऊँचाई पर खड़ा नज़र आता है।

यह खयाल डराता तो है पर नामुमकिन भी नहीं कि किसी रोज़ गिरने की वज़ह यानी गुरुत्वाकर्षण ही हाथ खड़े कर दे और आदमी गिरने के मामले में आत्मनिर्भर हो जाए। गुरुत्व में सभी तरह की ताकतें शामिल हैं। पर अभी उस पूर्णता को प्राप्त करने में एक बड़ी बाधा है, आदमी के भीतर सोया हुआ ज़मीर जो जब जाग उठता है तो गिरा हुआ भी उठ खड़ा होता है। ये गिर कर उठे लोग बहुत से गिरने वालों को इस शायर की तरह बचा लेते हैं जो कहता है- "हर कदम पर गिरे हैं पर सीखा, कैसे गिरतों को थाम लेते हैं"।

000

लिखा के लाए हैं...

डॉ. मुकेश असीमित



डॉ. मुकेश गर्ग

गर्ग हॉस्पिटल, स्टेशन रोड,

गंगापुर सिटी,

राजस्थान – 322201

ईमेल- drmukeshaseemit@gmail.com

"लिखा के लाए हैं, भाईसाहब!"

ऐसे थोड़े ही होता है कि आदमी खाली हाथ चला आए। कोई धन-दौलत लाता है, कोई हुनर और हमारे यहाँ अधिकांश लोग अपना भाग्य लिखवा कर लाते हैं- वह भी परमानेंट मार्कर से! विधाता ने एक बार लिख दिया, तो मजाल है कोई मिटाकर दिखा दे।

पूरा देश इसी "लिखा-लिखी" के खेल में उलझा हुआ है। मजदूर मजदूरी करेगा, नेता घोटाळा करेगा, गुंडा गुंडागर्दी करेगा और बहू सास के हाथों दहेज-उत्पीड़न झेलेगी- सब लिखा हुआ है जी!

"लिखा के लाए हैं"- यह हमारे मोहल्ले का ब्रह्मवाक्य है। इसके आगे तर्क, संवेदना, परिस्थिति और मनोविज्ञान- सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। जब कुछ समझ में न आए तो 'लिखा' आगे कर दो और जब जवाबदेही भारी लगे तो 'भाग्य' को बुला लो। भाग्य ऐसा सार्वभौमिक कर्मचारी है, जिसे हर नाकामी की फ़ाइल दोषरहित प्रमाणित करने के लिए थमा दी जाती है।

जो इस लिखे को मिटाने की कोशिश करे, मोहल्ला उसे तत्काल बागी, कुलटा, बदचलन, पागल, सिरफिरा अथवा क्रांतिकारी घोषित कर देता है।

"लक्षण तो अनिबणे ही थे जी! माँ-बाप को कुदाती थी। फिर भी देखो क्या किस्मत लिखाकर लाई है- ऐसे घर में ब्याही है, राज करेगी राज!"

"बाप के काम में हाथ नहीं बँटाता और चला है कलेक्टर बनने! अरे, ऐसे ही बन जाते हैं क्या कलेक्टर?"

"फलाने की लड़की को देखो! चूल्हा-चौका छोड़कर पढ़ाई में लगी है। ज़्यादा पढ़ गई तो पढ़ा-लिखा दूल्हा ढूँढ़ना पड़ेगा। बाप के पास कहाँ है इतनी गुंजाइश?"

किसी ने सपने देखने की जुर्रत की तो चेतावनी तैयार- "भगवान् को चुनौती मत दे! जो लिखा है, वही होगा।"

गरीब क्यों है?

"भाग्य में लिखा है।"

अमीर क्यों है?

"वह भी लिखा कर लाया है।"

कलेक्टर बन गया?

"उसके भाग्य में लिखा था।"

और जो नहीं बना?



भूल

सुभाष चंद्र लखेड़ा

जिनसे इस किस्से का ताल्लुक है, उनका नाम तो मैं आपको बताऊँगा नहीं; लेकिन आप उनका नाम सोमेश मान लीजिए। सोमेश और मैं तब से एक दूसरे को जानते हैं जब इस देश के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी थे। उन दिनों हम एक ही जगह नौकरी कर रहे थे। बाद में सोमेश कानपुर चले गए और फिर मेरे साथ ही वर्ष 2009 में सेवानिवृत्त हुए।

बहरहाल, हमारी मुलाकात लगभग चालीस वर्ष बाद यहाँ न्यूजर्सी में हुई। वे अपने बेटे से मिलने आए हुए थे। उनसे मुलाकात हुई तो फिर हमने लगभग तीन घंटे साथ बिताए। उनसे जब मैंने उनकी दो बेटियों रितु और मितु के बारे में पूछा तो उनकी आँखें छलछला गईं। वे बोले कि उनसे जीवन में एक बड़ी भूल यह हुई कि उन्होंने बेटियों को भी बेटे की तरह ही पाला-पोसा।

यह कहकर वे कुछ देर के लिए चुप हुए तो मैंने पूछा, "इसे तुम भूल क्यों कह रहे हो, यह तो एक अच्छी बात है।"

सोमेश बोले, "ऐसा तुम सोचते हो लेकिन सच तो यह है कि आज भी विवाह के बाद हमारे समाज में बेटियों को वह बराबरी का दर्जा नहीं मिलता जो आप जैसे गिने-चुने लोग अपनी बहुओं को देते हैं। मेरी बेटियाँ तो आज भी अपनी ससुराल में एक मातहत जैसा जीवन बिता रही हैं और वह भी तब, जब वे दोनों प्रथम श्रेणी की राजपत्रित अधिकारी हैं।"

000

सुभाष चंद्र लखेड़ा

सी-180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर - 7,

प्लॉट नंबर - 17, द्वारका, नई दिल्ली- 110075

ईमेल- subhash.surendra@gmail.com

"भाई, उसका लिखा ही नहीं था। भाग्य के लिखे को कौन मिटा पाया है?"

"तो अब क्या करें?"

"करना क्या है! कम-से-कम अगले जन्म का लिखा सुधार लो।"

लोग अपने दुर्भाग्य से इतने परेशान हैं कि बाबा-बैरागियों की दुकानों पर लंबी कतारें लगी हैं।

"गुरुजी, मेरा लिखा कुछ गड़बड़ है। ज़रा पढ़कर सुनाइए।"

गुरुजी आँखें बंद करके ताश के पत्ते घुमाते हैं—"तुम्हारे भाग्य का लिखा धुँधला है। दक्षिणा दो, तभी साफ दिखाई देगा।"

दक्षिणा मिलते ही दृष्टि लौट आती है—"अब पढ़ने में आ रहा है, बेटा! चुनावी सर्वे जैसा लिखा है- ऊँट किसी भी करवट बैठ सकता है। देखते रहो, जो लिखा है सामने आ जाएगा। अगले जन्म में अच्छा लिखवाना हो तो विशेष अनुष्ठान कराना पड़ेगा। हो तैयार, भक्त?"

कहते हैं भाग्य बड़ा बलवान् होता है, मगर दुर्भाग्य उससे भी अधिक शक्तिशाली। लोग इस जन्म का लिखा झेलते-झेलते परलोक सुधारने के लिए घर-बार बेचकर तीर्थयात्रा पर निकल रहे हैं- "इस जन्म में जो हुआ सो हुआ, अगले जन्म का लिखा तो सुधार लें!"

हम जैसे साहित्यकार भी क्या करें? हमारे भाग्य में लिखा है कि लिखते रहें- जो भी, जैसे भी। लक्ष्मी जी रूठी हुई हैं और सरस्वती जी अलमारी में बंद पड़ी हैं।

श्रीमती जी रोज़ अपनी हथेली की रेखाएँ घूरकर भगवान् से प्रार्थना करती हैं...

"हे भगवान् ! इस जन्म में तो यह लेखक मेरे पल्ले बाँध दिया। अब अगले सात जन्मों में कुछ भी लिख देना। बस पति के आगे 'लेखक' मत लिखना!"

दुनिया इसी लिखा-लिखी के सहारे चल रही है। यहाँ दो ही प्रकार के लोग हैं- एक, जो "लिखा के लाए हैं"; और दूसरे, जिनके भाग्य में दूसरों का लिखा पढ़ना लिखा है।

अब आप इस चक्रव्यूह में कहाँ फिट होते हैं- यह भी आपकी लिखी पर निर्भर करता है!

000

तुलसी के लोकनायक राम साधना अग्रवाल



साधना अग्रवाल

पलाश, गोल्फ होम्स, बी-3/ जी- 002
सेक्टर 4, ग्रेटर नोएडा वेस्ट उ.प्र. -
201309
मोबाइल- 9891349058
ईमेल- agrawalsadhna2000@gmail.com

हिन्दी साहित्य के इतिहास के मध्यकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास हिन्दी की अद्वितीय कवि प्रतिभा हैं। अवधी भाषा में लिखा उनका रामचरित मानस केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु पूरे संसार में अनुपम और बेजोड़ है। यह एक ऐसा आशीर्वादात्मक ग्रंथ है जिसे लोग मंत्रवत आदर देते हैं। आज से लगभग 550 साल पहले तुलसी ने अपने समय में एक ऐसा ग्रंथ रच दिया जो आज भी वर्तमान समय का एक अद्भुत ग्रंथ है। तुलसी के राम राजा दशरथ के पुत्र हैं, जो श्रेष्ठ मानव हैं। शील, शक्ति और सौंदर्य से सम्पन्न राम एक ऐसे लोकनायक हैं जो मयार्दा पुरुषोत्तम हैं। राम एक आदर्श मानव, राजा, पति, पुत्र, भाई, वीर और आदर्श पिता हैं। राम तुलसी के आराध्य हैं जिन्होंने मनुष्य के रूप में राजा दशरथ के घर पुत्र के रूप में अवतार लिया है। तुलसी कहते हैं- मैं श्री राम के गुणों का वर्णन तो करना चाहता हूँ लेकिन मेरी बुद्धि अत्यंत छोटी है और श्री राम का चरित अथाह है- करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा।।

यही नहीं आगे तुलसी कहते हैं - करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर।।

अर्थात् मैं आप सबसे बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवि गण! आप कृपा करें जिससे मैं राम का वर्णन कर सकूँ।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा।

व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।

अर्थात् जो परमेश्वर एक है, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानंद और परमधाम है और जो सबमें व्यापक और विश्वरूप है, उन्हीं भगवान् ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है।

कहा भी जाता है कि कोई भी कला मानव निरपेक्ष होकर सार्थक नहीं हो सकती। वैसे भी तुलसी मानते थे कि-

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस्य अस मोहि अंदेसा।।

स्पष्ट है कि जो कविता सर्वजनहितकारी नहीं, वह कविता नहीं हो सकती। और अपनी कविता को लेकर तुलसी के मन में यह द्वंद्व है कि श्री राम की कीर्ति तो अत्यंत सुंदर और लोककल्याणकारी है जबकि मेरी कविता तो इस लायक नहीं है कि राम का गुणगान कर सके। हम यदि देखते हैं तो पाते हैं कि दुनिया के तमाम कवियों ने आदर्श पुरुष की कल्पना की है। यदि हम भारतीय परिवेश की ओर देखते हैं तो हमें दो ऐसे सर्वश्रेष्ठ पुरुष दिखाई देते हैं- राम और कृष्ण, जिन्हें कवियों ने अपना नायक बनाया है। ऐसे में भी संसार भर के साहित्य में तुलसी के राम से कोई स्पर्धा नहीं कर सकता। डॉ. रामदेव शुक्ल लिखते हैं- तुलसी के मानस में आए हुए पात्रों का व्यक्तित्व आज भी इतना सजीव है कि औसत भारतीय की मनुष्य-संबंधी परिकल्पना को वे ही पात्र रूपाकार प्रदान करते हैं। व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में प्रकट होने वाले मनुष्य-रूपों से लेकर उच्चता और नीचता, सुंदरता और असुंदरता, वीरता और कायरता, निःस्वार्थता और स्वार्थपरता जैसे सभी सीमांतों पर खड़े मनुष्य की अवधारणा आज भी औसत भारतीय की वही है, जो तुलसीदास की है। आज भी शीलवान व्यक्ति की कल्पना

राम, आज्ञाकारी भाई की कल्पना लक्ष्मण-भरत, विमाता की कल्पना कैकेयी, त्यागी बंधु की कल्पना भरत, पत्नीवशवर्ती मनुष्य की कल्पना दशरथ, सेवक की कल्पना हनुमान, क्रोध की कल्पना परशुराम, परपीड़क की कल्पना रावण, भ्रातृद्रोही की कल्पना विभीषण, कुरूप स्त्री की कल्पना शूर्पणखा और ममतामयी माँ की कल्पना कौशल्या के सहारे उत्तर भारत के निवासी करते हैं अर्थात् आज भी चरित्रों के निर्माण में तुलसी के पात्र सहायक हैं। इसीलिए तुलसी और उनके पात्रों को जाने बिना आज के भारतीय के मन की बनावट को जानने का दावा नहीं किया जा सकता। आज के युग के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद। तुलसी का साहित्य कहीं भी मनुष्य को अनदेखा नहीं करता। यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि मनुष्य के मन को समझना किसी एक के वश की बात नहीं क्योंकि हमारे मन में छिपे हज़ारों तरह के मन हैं। कह सकते हैं कि इन विविधताओं से भरे मन हमें मानस में दिखाई देते हैं। इसी को आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि 'जीवन-स्थिति के इतने भेद और कहाँ मिल सकते हैं।' इसी जीवन वैविध्य का कोश रामचरित मानस में जगह-जगह उपस्थित हुआ है।

हालाँकि प्रगतिशीलता के नाम पर आज कई लोग तुलसी के पाठ का कुपाठ करके तुलसी के उपर उँगली उठाते हैं और कुतर्कों के सहारे अपनी बात मनवाने की ज़िद भी करते हैं। यही नहीं समाज में भ्रम की स्थिति भी पैदा करते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि तुलसी भी तो आखिर मनुष्य थे। और प्रत्येक मनुष्य में कुछ कमियाँ अवश्य होती हैं ऐसा न हो तो वह मनुष्य श्रेणी में न होकर देवत्व की श्रेणी में आ जाता है। जैसा कि वरिष्ठ आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय का मानना है कि 'कोई कवि कितना बड़ा हो, वह दोषरहित नहीं होता। विधाता तक का 'प्रपंच' गुण-दोषों से मिलकर बना है।' तुलसी के राम स्वयं कहते हैं- सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु विधाता।।

यही कारण है कि यदि कुछ लोगों को तुलसी की कविता में और राम में गुण-दोष दिखाई भी देते हैं तो सर्वथा उचित है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि तुलसी की कविता का प्रयोजन मात्र धार्मिक नहीं है, वह सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय भी है। जब वे कहते हैं- जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

जब राम को वनवास हो जाता है और लक्ष्मण साथ जाने के लिए कहते हैं तो राम उनको समझाते हैं कि अभी तुम्हारा यहाँ रहना ज़रूरी है क्योंकि भरत और शत्रुघ्न यहाँ हैं नहीं और पिताजी मेरे वनवास को लेकर बहुत दुखी हैं तो यहाँ सबको सँभालने के लिए तुम्हारा होना बहुत आवश्यक है क्योंकि जिस राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। तो इसका मतलब रामराज्य से नहीं है क्योंकि वहाँ तो सभी सुखी और रोग-शोक से मुक्त थे, यह कथन तत्कालीन राजशाही के लिए है और खासकर वर्तमान में और भी ज़्यादा प्रासंगिक है।

तुलसी के राम सचमुच लोकनायक थे क्योंकि वह किसी भी तरह का भेदभाव सहन नहीं करते थे। यही कारण है कि राम भरत से कहते हैं- मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान कहूँ एक। पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।

अपरोक्ष रूप से यह कथन भरत के लिए नहीं था। चूँकि कवि को तत्कालीन समाज को यह शिक्षा देनी थी इसीलिए भरत जैसे त्यागी भाई को भी तुलसी के लोकनायक राम को यह कहना पड़ा। कि मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने के लिए तो एक होता है परन्तु विवेकपूर्ण सब अंगों का पालन-पोषण करता है। राम कहने भर के लिए लोकनायक नहीं हैं बल्कि उन्हें अपने देशवासियों की सच में चिंता है। कवि कितना दूरदर्शी होता है, इसका प्रमाण और क्या हो सकता है कि तत्कालीन समाज के लिए ही नहीं अपितु आज के नेताओं के लिए भी तुलसी के राम कहते हैं- मनि मानिक महँगे किये, सहजे तन, जल, नाज। तुलसी ऐसे मानिए राम गरीब नेवाज।

तुलसी समाज में सामंजस्य चाहते थे। यही कारण है कि वह रामराज्य की कल्पना करते हैं। रामराज्य के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसे समाज की परिकल्पना जहाँ हम अगर खुद के लिए स्पेस चाहते हैं तो दूसरों को भी स्पेस देना आना चाहिए। तुलसी के राम समाज को जोड़कर रखना चाहते हैं, सँजोना चाहते हैं, बिखेरना नहीं। वे उसे टूटने से बचाना चाहते हैं। पर ऐसे में भी वह अपने जोश में कोई ऐसा मार्ग नहीं अपनाते जो किसी को कष्ट दे। तुलसी के राम के लोकनायकत्व का यह अनुपम उदाहरण है कि वह अपनी प्रजा से खुलेआम आग्रह करते हैं कि यदि मुझसे कोई भूल से भी भूल हो जाए तो आप लोग मेरी गलती मुझे बताने में ज़रा भी मत संकोच करना- जौं अनीति कलु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।

तुलसीदास के राम वास्तव में लोकनायक ही थे और लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करना जानता हो। यह प्रमाण हमें कई आलोचकों की आलोचना पढ़ने से भी मिलता है। चाहे वह आचार्य रामचंद्र शुक्ल हों या फिर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी। यह बात दीगर है कि शुक्ल जी की कसौटी पर तुलसीदास एकदम खरे उतरते हैं। प्रो. गोपेश्वर सिंह के अनुसार- 'शुक्ल जी को तुलसी का कवि-कर्म भी प्रिय है और उनकी भक्ति भी। उनके अनुसार तुलसी कवि रूप में भी महान् हैं और भक्त रूप में भी। उनकी कविता में भारतीय कविता की सारी खूबियाँ तो हैं ही, हिन्दी कविता को उत्कर्ष और व्यापकता प्रदान करने वाली रूढ़ि-भंजक प्रतिभा के साथ चरित्रों को युगानुरूप नया आयाम देने की सर्जक प्रतिभा भी है। राम कथा वाल्मीकि ने भी लिखी और दूसरों ने भी। लेकिन आज हमारी चेतना में राम आदि चरित्रों का जो रूप है, वह तुलसीदास का सृजन है। राम यूँ ही लोकनायक नहीं कहे गए क्योंकि जो ख़ूबी राम में है, वह अन्यत्र दिखाई नहीं पड़ती। यह राम ही कर सकते थे कि रणभूमि में घायल पड़े अपने शत्रु रावण से मिलने पर उसके साथ सम्मानजनक आचरण करने का निर्देश अपने अनुज लक्ष्मण को देते हैं।



जेबकतरे

सुरेश सौरभ

अपने पपड़ी पड़े होठों पर जीभ फिराते हुए, मटमैली आँखों से मंदिर में बैठे पुजारी को उसने ताका, वह करारे नोट गिन रहा था। नोट गिन कर अपनी जेब में धरे। मिठाई, फल, प्रसाद आदि अपने झोले में सब समेटा। मंदिर पर ताला जड़ा। चलने उद्यत हुआ, तब वह पुजारी को कातर दृष्टि से देख उं उं करके अपनी ऊँगलियों का कौर बना अपने मुँह की ओर लाया।

पुजारी ने विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देख भद्दी सी गाली दी- "अब जेब कतरे भी भेस बदल-बदल कर मंदिर तक आने लगे हैं, चल भाग यहाँ से।"

खट् खट् खट् .. अपना डंडा खटखाते हुए वह बूढ़ा मंदिर के आगे बढ़ा, अंदर ताले में बंद भगवान् की मूर्ति को ताकते हुए आगे बढ़ता गया, पपड़ी पड़े सूखे होठों से आह भरी-

"हे! भगवान् यह जेबकतरे मंदिरों में क्यों आने लगे।" उसकी आह मंदिर के ताले को बेध कर भगवान् के हृदय से जा टकराई।

000

सुरेश सौरभ

निर्मल नगर

लखीमपुर खीरी

उत्तर प्रदेश-262701

मोबाइल-7860600355

तुलसी के लोकनायक राम सबसे पहले अपने रूप सौंदर्य के कारण मन मोह लेते हैं। यह उनके असाधारण सौंदर्य ही था कि जो कोई भी उन्हें देखता, तत्काल स्वयं को भूल जाता। उनके रूप का वर्णन तो वेद और शेषजी भी नहीं कर सकते। उसे वही जानता है जिसने कभी स्वप्न में भी देखा हो। तुलसी कहते हैं- रूप सकहिं नहि कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा।।

यहाँ तक कि परशुराम राम द्वारा शिवधनुष तोड़ने की खबर सुनकर क्रोध में भरे जब रंगभूमि में पहुँचते हैं तो वह भी राम का सौंदर्य देखकर अपना गुस्सा भूलकर विचलित हो जाते हैं- रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन।।

राम केवल रूप सौंदर्य के ही धनी नहीं थे बल्कि शक्ति और रण निपणता में उनका कोई सानी न था। लोकनायक होने के लिए जैसी बुद्धि और कुशलता की दरकार होती है, वह राम में थी। यही कारण है कि वह रक्तपात बचाने के लिए युक्ति से ही काम निकाल लेते थे। यूँ तो राजनीति एवं व्यवहार कुशलता का रहस्य मनुष्य स्वभाव में ही है लेकिन राम देखते ही पहचान जाते थे। राम शील और त्याग की प्रतिमूर्ति थे, यही कारण है कि जब कैकेयी राम को चौदह वर्ष का वनवास की खबर देती है तो वह बिल्कुल निस्पृह भाव से उसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लेते हैं बिना किसी दुराव के। लेकिन यही राम सीता को देखकर उनके अतिशय प्रेम में बँध जाते हैं। लेकिन कभी अपना आत्मसंयम नहीं खोते। क्योंकि जो राम जीवन-यात्रा में सहायता करने वाले मित्रों के प्रति इतना सहृदय थे, उनका अपने पारिवारिक जनों में प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक ही है। राम के चरित्र की एक बड़ी विशेषता उनकी कृतज्ञता थी। यह कृतज्ञता की ही पराकाष्ठा थी कि जब केवट उन्हें अपनी नाव में बैठाकर गंगा पार कराता है और राम के पास उसे देने के लिए कुछ नहीं होता। तुलसी इस मार्मिक घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं- उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता। केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।

यही नहीं सीता का पता लगाकर जब हनुमान वापस लौटते हैं तो राम कहते हैं- हे हनुमान! तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता। मैं जीवन भर कभी उग्रहण नहीं हो पाउँगा। राम बार-बार हनुमान की ओर देखते हैं और उनकी आँखें नम हैं और रोमांच से भरा है। राम कहते हैं- सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं। पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।

एक लोकनायक होने के लिए जैसी कोमलता और परोपकार की भावना होनी चाहिए, वह सब गुण उनमें थे लेकिन जब हमें समाज की भलाई के लिए कुछ कठोर निर्णय लेने पड़ते हैं, वह कठोरता भी राम में दिखाई पड़ती है। कोमलता और कठोरता से मिश्रित इसी हृदय ने राम को सर्वश्रेष्ठ मर्यादा पुरुषोत्तम ही नहीं बनाया बल्कि लोकनायक के पद पर भी आरुढ़ कर दिया।

कहने को बहुत सी बातें हैं क्योंकि हरि अनंत, हरि कथा अनन्ता। लेकिन फिलहाल इतना ही।

संदर्भ- 1- श्रीरामचरित मानस, तुलसीदास, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, 2- तुलसीदास, शृंखला संपादक अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 3- तुलसीदास, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 4- तुलसी और उनकी सूक्तियाँ, प्रधान संपादक शरण, प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली, 5- दशरथनंदन श्रीराम, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 6- भक्ति आंदोलन और काव्य, गोपेश्वर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 7- मानस के राम और सीता, द्वारकाप्रसाद मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 8- रामकाव्य की भूमिका, डॉ. जगदीशप्रसाद शर्मा, ग्रंथम रामबाग, कानपुर, 9- लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

000

महादेवी के लेखन में चेतना के स्वर सरोजिनी नौटियाल



सरोजिनी नौटियाल
176, आराधर, देहरादून,
उत्तराखंड 248001
मोबाइल- 9410983596
ईमेल- snautiyal1@gmail.com

बीसवीं सदी की शुरुआत। सामान्यतः पूरे विश्व का और विशेषकर भारत का विप्लव काल। इस कठिन दौर में भारत कई तरह से त्रस्त था। अकाल और युद्ध की विभीषिका, दासता, अशिक्षा, निर्धनता, महामारियाँ, अकाल मृत्यु, सामाजिक बुराईयाँ, आर्थिक शोषण- सबने मिलकर एक नैराश्य पूर्ण परिदृश्य बनाया हुआ था। अध्यात्म और धार्मिक परंपराओं के सत्य-असत्य में अपने कंकालशेष शरीर को झोंकते आमजन की जीवनी शक्ति के मूल में रचा-बसा उसका भाग्यवादी दर्शन किसी परिवर्तन की आशा को भी क्षीण कर देता था। ऐसे में तब के स्वतंत्रता सेनानी स्वाभाविक रूप से समाज सुधारक भी बन गए थे। वे समझ चुके थे कि भारत के रूढ़िगत समाज को केवल राजनीतिक दासता से आजाद कराने की ही नहीं सामाजिक बेड़ियों से भी मुक्त कराने की आवश्यकता है। इस कठिन काल में महादेवी एक सुशिक्षित-संपन्न परिवार में वर्ष 1907 (1902 का उल्लेख मिलता है) में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। विशेष बात यह है कि परिवार में वे चिराकांक्षित कन्या के रूप में अवतरित हुईं। उनका जन्मोत्सव मनाया गया। जिस समाज में कन्या-जन्म सामान्यतः दुख-निराशा-पराजय का कारण बन जाता है, वहाँ महादेवी का जन्मोत्सव का मनाया जाना उनकी महिषी जीवन यात्रा का शुभारम्भ ही तो माना जाएगा। परिवार की चहेती महादेवी का पालन-पोषण सभ्रान्त परिवार में होने लगा। निरक्षरता के उस अंधयुग में महादेवी को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। बीच में विवाह के अल्प व्यवधान को छोड़ उनकी पढ़ाई निर्बाध संपन्न हुई। गृहस्थ जीवन से विमुख हो वे अध्ययन-अध्यापन की ओर मुड़ीं और संस्कृत विषय में उच्च शिक्षा हासिल की। प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या और बाद में चांसलर बनी। वे कुशाग्र बुद्धि की छात्रा रहीं। बाल्यावस्था से ही कविता लिखने लगी थीं। उनकी कविताएँ सराही जाती थीं। बहुत जल्दी ही वे एक संवेदनशील कवयित्री, कहानीकार, अनुवादक, शिक्षिका, संपादक, प्रखर चिंतक, समाज सेवी, राजनीतिक व स्त्री-सरोकारों की प्रभावशाली आवाज बन साहित्यिक जगत् में प्रतिष्ठित हो गईं। आर्ष ग्रन्थों और से प्रसंगों का हिन्दी में अनुवाद करने से लेकर समाज के निचले पायदान पर खड़े, किसी प्रकार अपने अस्तित्व को थामे निरीह जनों के कार्य-व्यवहार, जीवन-दर्शन को शब्दों में चित्रित करने तक उनके लेखन का विस्तार है।

लेखन में वैयक्तिक अनुभूतियों की व्यथा-वेदना है तो स्वतंत्रता आंदोलन की अनुगूँज भी है। साहित्य, काल सापेक्ष होता है। समाज को उसका चेहरा दिखाता है। बदलने लायक बातों को बदलाव के लिए प्रेरित करता है। साहित्य अपने युग को परिभाषित करता है। वह साहित्य में आदर्शवाद और छायावाद का संधिकाल था। द्विवेदी युग में व्यष्टि में समष्टि का आरोपण काव्य समालोचना की युगीन अपेक्षा को संतुष्ट करता था। द्विवेदी युग के आदर्शवाद और इतिवृत्तात्मकता से ऊब कर मन की सुनने-कहने को क्रलम तड़प उठी थी। यथार्थ के कठोर और दुखपूर्ण धरातल को छोड़ कल्पना के स्वप्नमय लोक में विचरण को मचल गया कवियों का कवि-मन। लेकिन पलायन की इस मनोदशा में भी कवि की काव्य-चेतना सत्य से परे नहीं हो सकती उसकी अमूर्त पीड़ा मूर्त प्रतीकों में अवलंब लेकर प्रवाह का जरिया ढूँढ लेती है। समाज और परिवेश के साथ तन-मन से जुड़ी महादेवी अपने में कहीं बहुत एकाकी थी। समाज स्त्री के लिए पीड़ा का जो सरोवर सँजो कर रखता है, उसके छींटों से महादेवी सर्वथा बची रही होंगी, यह तत्कालीन समाज में संभव नहीं था। स्त्री के रूप उनकी झोली की रिक्त थी। सब कुछ होते हुए भी यह रिक्तता उनको खालीपन के जिस अहसास में कुंठित-द्रवित करता था, उसके कण-कण को वाग्देवी की उस वरद पुत्री ने शब्दों में निरूपित किया है। साहित्य ने उनकी अभिव्यक्ति को जिस प्रकार रहस्यवाद कह कर बस दर्शन व अध्यात्म का विवेच्य विषय बना

दिया और उनको सामान्य-साधारण मानवी से हट कर दिव्या-श्रद्धेया बनाने का गठजोड़ बैठाया, वह पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री से उसके स्त्री होने की वेदना को साझा करने के अधिकार को भी छीनने का छल है। महादेवी पद में दीपक, बादल, कमल, शलभ जैसे प्रतीक-बिंबों के माध्यम से आत्म-मन और गद्य में सहुआइन, बिबिया, भक्तिन जैसे पात्रों के जरिये समाज में स्त्री की दारुण दशा का चित्र खींचती रहीं। मगर, वे अच्छी तरह जानती थीं कि यह पर्याप्त नहीं है। स्त्री व्यथा के अतल समुद्र की ये बस कुछ बूँदें हैं। और, फिर जिस समाज में स्त्री अपने अपमान, तिरस्कार, शोषण को अपनी नियति मान चुकी हो, वहाँ स्त्री के उन्नयन के लिए कहाँ से शुरुआत करनी होगी, यह भी एक ज्वलंत प्रश्न था। केवल कुछ आँसू बहा कर से कठिन प्रश्नों को हल नहीं निकाला जा सकता। वे देख रही थीं- "वर्तमान युग के पुरुष ने स्त्री के वास्तविक रूप को न कभी देखा है, न वह उसकी कल्पना कर सका है। उसके विचार में स्त्री के परिचय का आदि और अंत यही है कि वह किसी की पत्नी है।"

उन्होंने यह भी देखा कि सभ्यता के बाहरी रूप के बदलते उपादानों को जो समाज सहज-सहर्ष स्वीकार कर लेता है वही रूढ़ियों को छोड़कर प्रगतिशील विचार और आचरण को अपनाने के लिए ज़रा भी तैयार नहीं होता। स्त्री को लेकर समाज की आम सोच-व्यवहार इतना दुर्वह है कि उसकी अनदेखी करना मनुष्यत्व पर प्रश्नचिह्न लगाता है। शिक्षा और सम्पत्ति के अधिकार से वंचित स्त्री की समाज-परिवार में असंतोषजनक स्थिति देख महादेवी का शिक्षा के आलोक से प्रदीप्त मानस उद्भिन्न हो उठा। उनके पास क्लम की ताक़त थी। नारी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को उन्होंने अपने 'शृंखला की कड़ियाँ' निबंध संग्रह में मुखरता और प्रखरता से उठाया। उन्होंने नारी विमर्श की आधार भूमि तैयार की। व्यवस्था पर प्रश्न उठाना विद्रोह कहलाता है। महादेवी विद्रोहिणी थी। यहीं पर उनकी संगति सोलहवीं सदी की कृष्ण की अनन्य उपासिका मीरा बाई से बैठती है। मीरा ने तत्कालीन

सामंती सत्ता का विरोध किया और महादेवी ने व्यवस्था की हर असंगत बात का विरोध किया। ऐसे सन्दर्भों में उनकी लेखनी से फूटते व्यंग्य, कटाक्ष, उपहास, भर्त्सना करुणार्द्र हो जिस प्रकार स्त्री के निस्सीम दुख-दैन्य को रेखांकित करते हैं, वह एक साथ हँसाता है, रुलाता है। और, एक विमर्श को खड़ा करता है। महादेवी हैरान हैं कि तुलसी का स्त्री को ताड़ना योग्य बताने पर, भगवान् राम का अपनी गर्भवती पत्नी को एकाएक घर से निकाल देने पर, पति युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को जुएँ के दाँव पर लगाने पर, पितामह भीष्म द्वारा अंबा-अंबालिका के अपहरण पर किसी औरत ने आपत्ति दर्ज क्यों नहीं?, वे चुप क्यों रहीं? महादेवी हैरान हैं कि ऐसी चुप्पी को क्या कहा जाए- औरत की सहनशीलता या अंधभक्ति या फिर औरत की मानसिक गुलामी की पराकाष्ठा!

महादेवी प्राचार्या और कवयित्री होने से पहले एक स्त्री हैं। कभी दर्पण न देखने वाली प्रत्यक्षतः उच्च आसीना उस महीयसी का क्या जीवन वृत्तान्त रहा होगा, क्या उसके द्वन्द्व रहे होंगे। 'शापमय वर हूँ', 'मिलन में एकाकी', 'विरह में दुकेला', 'प्रिय से दूर पर अखंड सुहागिनी' जैसे जाने कितने विरोधाभासों को एक साथ जीने वाली उस तृप्त चिर तृषिता का मन-प्राण हम समझ पाएँ हैं या उनके सत्योद्घाटन के ऊपर रहस्यवाद का छद्मावरण डाल कर अपने अज्ञान, अपनी असमर्थता को ढाँपते रहे। वे घोषणा कर रही हैं- 'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ'; 'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस पार क्या है'; 'पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला' और हम जीव-जगत् और परमात्मा के अन्तर्संबंध में सरल को जटिल करके आत्ममुग्ध हुए जा रहे हैं। उनको कोई संशय नहीं है अपनी अकिंचनता को लेकर, अपनी क्षणभंगुरता को लेकर। वे जानती हैं-

"विस्तृत नभ का कोई कोना/ मेरा न कभी अपना होना/ परिचय इतना, इतिहास यही उमड़ी कल थी/ मिट आज चली।" उनको पूजे जाने की कामना नहीं है। बस सहज-सामान्य मानवी समझने का आग्रह है- "क्या

अमरों का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार, नहीं, नहीं, हे देव रहने दो मेरे मिटने का अधिकार"

वस्तुतः महादेवी का संपूर्ण संघर्ष स्वत्व को लेकर है। एकांत में उपजे इस द्वंद्व की व्याप्ति बहुत बड़ी है। उनकी अन्तर्वेदना पूरी स्त्री जाति की पीड़ा की संवाहिका बन जाती है। महादेवी उत्सव जीवी हैं। वे मृत्यु से रोमांस करने वाले सामाजिक दर्शन में जीवन के उजास की कामना करती हैं, जीवन का उत्सव मनाने की चाह रखती हैं। एकाकिनी हैं लेकिन एक विस्तृत परिवार की स्वामिनी बनी रही। पीड़ित-क्षुब्ध जनों से लेकर पशु-पक्षी, पेड़-पौधे उनके भरे-पूरे परिवार के सदस्य बने रहे। वे होली खेलती हैं, दीपावली सजाती हैं। लेकिन कोलाहल के बीच मन अकेला- इस विरोधाभास को जीने का मर्म क्या होता है, वह उनके गीतों में प्रवहमान है।

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात

वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास"

या फिर,

"मैं नीर भरी दुख की बदली

रज कण पर जल कण हो बरसी

नवजीवन- अंकुर हो निकली "

बुद्ध की करुणा और गाँधी की कल्याण-प्रेरणा को अपने संघर्ष का प्रस्थान बिंदु बना महादेवी ने अपना गीतों का संसार रचा। जीवन के मूल में दुख है, इसके साथ वे जीना सीख गई थी। तभी तो वे कहती हैं- 'तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।'

महादेवी के गीतों में जिन शब्दों, बिंबों उपमानों और प्रतीकों की प्रयुक्ति हुई है, उससे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कि उनका ईश्वरीय सत्ता से संवाद चल रहा है। जीव, जगत् और परमात्मा के सम्मिलन की इस प्रतीति के कारण उनके काव्य में रहस्यवाद की प्रतिष्ठा हुई है। वे छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भों में एक हैं। जयशंकर प्रसाद और महादेवी के गीतों में घनीभूत अनुभूतियों की प्रस्तावना बड़ी विकल है। लेकिन उसमें जिस वेदना की व्याप्ति है, वह उसी लोक की है, जिसमें वे रहते हैं। वे जिस दर्द को पी रहे हैं, उसी को

दोहे



आठ दोहे

प्रवीण पारीक 'अंशु'

इच्छाओं में भागता, यह मन बारंबार।
मानों, पक्षी नापता, अंबर का विस्तार॥

कभी पड़ा सूखा यहाँ, कभी बाढ़ की मार।
रही कृषक के भाग्य में, कष्टों की भरमार॥

हाय! यहाँ संसार की, कैसी ये तस्वीर।
झूठों को सौ सुख मिले, सच्चे भोगें पीर॥

अपनी पीड़ा को यहाँ, सुनने वाला कौन।
इससे तो अच्छा यही, रह जाएँ हम मौन॥

इससे बढ़कर भी भला, होगा क्या संताप।
जब बेटे की लाश को, कंधा देता बाप॥

कौन दिशा में जा रहा, जाने आज समाज।
रिश्ते निभते हैं यहाँ, मोबाइल से आज॥

जीवन में जितना मिला, नहीं जिन्हें संतोष।
वे ही क्रिस्मत को सदा, देते रहते दोष॥

कौन पराया है यहाँ, और कौन है खास।
धीरे-धीरे उठ रहा, अब सबसे विश्वास॥

000

प्रवीण पारीक 'अंशु'

राम कृपा कुंज, नजदीक सेतिया पैलेस,
बाईपास रोड़, ऐलनाबाद, जिला सिरसा,
हरियाणा, 125102

मोबाइल- 9813561237, 7015049996
ईमेल- parveen.ellenabad@gmail.com

गीतों में ढाल रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन का यथार्थ ही उनके गीतों का यथार्थ है। हाँ, खुल कर न कह कर अभिव्यंजना शैली के घटकों की ओट ली हैं। महादेवी ने कहा भी है- मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं। जिस कालखंड में महादेवी का विवाह हुआ और दाम्पत्य खंडित हुआ, उस समय हमारे समाज में परित्यक्ता होना स्त्री जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप था। महादेवी की उच्चता और उपलब्धियों ने भले ही उनके जीवन के इस पीड़ादायक वृत्तान्त को चर्चा का अवकाश नहीं दिया लेकिन इससे यह मान लेना कि पति की विमुखता से वे पराजित नहीं हुई, सच्चाई से मुख मोड़ना जैसा होगा।

जिस समाज में स्त्री के परिचय का आदि और अंत यही है कि वह किसकी पत्नी है, वहाँ स्वयं को विवाहित अविवाहित बतलाने वाली महादेवी एक पति-वियुक्ता स्त्री के दर्श से किस प्रकार बची रह सकती थी। उन्होंने फिर कभी दर्पण में अपनी छवि नहीं देखी क्योंकि उनका दर्पण टूट गया था- "किस पर रीझूँ, किससे रूठूँ भर लूँ किस छवि से अंतरतम टूट गया वह दर्पण निर्मम"।

महादेवी की आत्माभिव्यक्ति गीतों में ढल नारीवाद और बृहत्तर आलोक में मानवतावाद का पोषण करती है। अपने रेखाचित्रों और संस्मरणों में उन्होंने समाज और जीवन के जिन चरित्रों को लिया है और जिस प्रकार उन सबके बीच अपनी आत्मीय पर तटस्थ उपस्थिति को रूपायित किया है, वह हमें प्रकृति और समाज को देखने की एक नई दृष्टि देता है। भक्तिन, ठकुरी बाबा, घीसा जैसे पात्रों की उपस्थिति हमारे पारिवारिक और सामाजिक परिवेश में सहज सुलभ है। लेकिन उनकी जिजीविषा और जीवन के कष्टों को प्रति उनके स्वीकार भाव का जो चित्र महादेवी ने खींचा है, वह मन को आंदोलित करता है। एक पुनर्दृष्टि मिलती है अपने परिवेश को देखने की। यही नहीं, गिल्लू गिलहरी और गौरा गाय जैसे रेखाचित्र-संस्मरणों को पढ़ कर ये पशु हमारे और निकट आ जाते हैं। उनके रूप-रंग, भाव-भंगिमा का ऐसा चित्रण

और ऐसी संवेदना कि हृदय एक साथ रोमांचित और द्रवित- दोनों हो जाता है। वे बहुतों से घिरी थी। कोलाहल जब ज्यादा हो जाता तब वे हिमालय की गोद में चली जातीं। वे जल में कमल के समान रहीं। वे परस्पर विरोधी बातों को एक साथ साध कर चलती थी। उनके पास जीने की कला थी। पीड़ा को पी जाना मगर अन्याय का प्रबल विरोध। आँसू और आग को साथ लेकर चलना। देश की आजादी की कामना युगों से थी लेकिन वैसी आजादी की नहीं जैसी मिली। देश बँट गया। क्रल्लेआम से पथ-घाट लहूलुहान हो गए। महादेवी व्यथित हो गई।

'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ'
कहने वाली क्रलम रो पड़ी। जो आँसू बहे,
उससे यह सिसकी निकली-

"पंक-सा रथ-चक्र में लिपटा यह कैसा
अँधेरा है

व्यथा की रात का यह कैसा सवेरा है"

महादेवी की दृष्टि सूक्ष्म और चिंतन व्यापक है। देश आजादी की लड़ाई में कटिबद्ध था। महादेवी सक्रिय राजनीति में तो नहीं थी लेकिन उनकी सामाजिक चेतना देश के राजनीतिक सरोकारों से अछूती नहीं थी। उन्होंने उस समय की क्रान्तिकारी पत्रिका चाँद का संपादन किया। स्वतंत्रता सेनानियों और आंदोलनकारियों से उनका परिचय था। बापू नेहरू जी जैसे जन नायकों से उनकी घनिष्ठता थी। क्रान्ति के गीत लिखने वाली राजनीति में सक्रिय नेत्री सुभद्रा कुमारी चौहान उनकी सहेली थी। गुरुदेव टैगोर से वे प्रभावित थीं। निराला उनके भाई सदृश्य हो गए थे। मैथिली शरण गुप्त, प्रसाद, पंत से आत्मीय साहित्यिक संबंध थे। कवयित्री सम्मेलनों की उन्होंने शुरुआत की थी। अनेक पुरस्कारों से वे सम्मानित हो चुकी थीं। कहने के तात्पर्य है कि उनका संसार बहुत बड़ा था। वे अपने रचे संसार की एकछत्र स्वामिनी बनी रहीं। वे अपने क्रिस्म की साम्राज्ञी थीं। वे स्वयं कहती हैं- "अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली प्राणों का दीप जला कर करती रहती दीवाली।"

000

हवा में उड़ता जाए मेरा लाल दुपट्टा मलमल का.... स्मृति आदित्य



स्मृति आदित्य

एडजंक्ट प्रोफेसर, सिनेमा विभाग,
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं
संचार विश्वविद्यालय
माखनपुरम, मप्र शूटिंग अकादमी के
सामने, बिशनखेड़ी, भोपाल मप्र 462044
मोबाइल- 9424849649, 6263358116
ईमेल- smritiadiityaa@gmail.com

सोशल मीडिया पर एक तस्वीर बदली। बहुत से कमेंट में एक मेरी पुरानी बच्ची रचना शर्मा ने लिखा- दिल करता है आपके दुपट्टे चुरा लूँ... मैंने जवाब दिया- चुराना क्यों? हक़ और खुशी से आकर ले जाओ। बात आई-गई नहीं हो सकी कहीं अटक गई।

मुझे अपने रंग बिरंगे दुपट्टे और चुन्नी के लिए अक्सर ही तारीफ़ मिलती हैं... आज मित्र ने कहा तो जैसे मेरे आँचल से फिर कोई बयार आकर टकरा गई... वादा तो निभाना है न... तो रंग बिरंगी चुन्नियों के बीच से झाँकते अतीत को क़लम से बुला रही हूँ।

उम्र का पहला दौर याद आता है जब पहली बार दुपट्टा ओढ़ा था। ख़ूब लजाई थी। बड़े होने के अहसास के साथ ही मन के आँगन में सतरंगी आँचल लहरा गए... कोमल कच्ची धरा पर हलचल मचा गए।

मैं एक साधारण संस्कारी पारंपरिक परिवार से आती हूँ। माँ मेरी साहित्यिक आभिजात्य परिवार में जन्मीं। बाहरी दुनिया के सामने खुद को बेहद ख़ूबसूरत रूप में प्रस्तुत करना मेरी माँ का आकर्षक गुण था। वह इस गुण को कलफ़ लगी कॉटन साड़ी या कोसा सिल्क की चमकदार साड़ियों में व्यक्त करती थीं।

फिर बहन को देखा सुंदर कॉटन सूट के कलफ़ लगे दुपट्टों को सहेजते-सँभालते हुए। साबूदाना, अरारोट-मैदा शक्कर जैसी कई अनोखी चीज़ों से यह कलफ़ बनता था और सूखने पर इन दुपट्टों को प्रेस के लिए खोलना भी एक तरह का जंजाल था, जिसे वह बड़े धैर्य से निपटती पर खुदा न खास्ता अगर मुझ जैसी के हाथ पड़ता तो चर्र। चर्र की एक दो आवाज़ तो आ ही जाती।

बहन का व्यक्तित्व माँ से बहुत मेल खाता है। गोरा रंग, कंजी आँखें, नफ़ासत पसंद... रंग-रूप में इन दोनों जैसी तो मैं नहीं हो सकती यह बात मुझे बहुत जल्दी समझ आ गई.. इसीलिए कलफ़ के कड़कपन और सिल्क की चमक को मैंने अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बना लिया।

उम्र बढ़ रही थी। मैं कक्षा दर कक्षा चढ़ रही थीं। मेरे परिधान बदल रहे थे। स्कर्ट और स्कूल यूनिफ़ॉर्म अलमारी में तहा गए और ऊपर आते गए सुंदर-सुंदर दुपट्टे... अब कहीं जाऊँ घूमने-फिरने, बाज़र-हाट, मेले-ठेले मुझे बस हर कहीं दुपट्टे ही दिखाई दें... सोते-जागते उठते-बैठते चुन्नियाँ ही चुन्नियाँ... कॉटन, शिफ़ॉन, जॉर्जेट, सिल्क, बंधेज, एप्लिक, चिकनकारी, जामदानी, लहरिया और जरदोजी.. हर तरह की क्वालिटी और हर तरह के रंग मेरी अलमारी में सजने लगे।

फिर भी मन है कि भरे ही न... लालची का लालची... मुझे हमेशा अपनी बहन, मौसियों और सहेलियों की थाली में घी ज़्यादा नज़र आए... और उनके दुपट्टे देख-देख कर आँखों में लालसा और मुँह में पानी भर आए... ठीक वैसे ही जैसे किसी शिकार को देख कर वनराज को होता होगा... उदाहरण थोड़ा हिंसक हो गया पर मेरी कहानी आगे बढ़ने पर आपको मेरी दीवानगी भी समझ आने लगेगी।

मैंने छुप-छुप कर बहन के दुपट्टे चोरी भी किए और पकड़े जाने पर जमकर धुनाई भी हुई। एक क्रिस्सा जो आज मजेदार लग सकता है पर उस वक़्त तो खून के आँसू रुला गया था... बहन गई कॉलेज। उनके आने और मेरे जाने में एक घंटे का अंतर। उनके एक दुपट्टे पर बहुत दिनों से



दो गज़लें

नवीन माथुर पंचोली

वो ये समझे रात अलग थी।
हमने माना बात अलग थी।
कह न पाए जो लफ्जों में,
वो दिल की सौगात अलग थी।
चाँद लिए आकाश में निकली,
तारों की बारात अलग थी।
भीग गए हम कुछ ज्यादा ही,
वो पहली बरसात अलग थी
जीत गए वो हमसे लेकिन,
उनसे अपनी मात अलग थी।

000

शौक है तन्हाइयों का।
क्या करें शहनाइयों का।
दूरियों के इस सफ़र में,
साथ है परछाइयों का।
इन परिंदों को भी थोड़ा,
खौफ़ है ऊँचाइयों का।
नीतियाँ थोथी पड़ी हैं,
दोंग है अच्छाइयों का।
बेहयाई दौर में अब,
डर नहीं रुसवाईयों का।
झूठ हैं अंजाम सारे,
नाम है सच्चाइयों का।
छोड़ भोलापन पुराना,
दौर है चतुराइयों का।

000

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा धार म प्र 454441
मोबाइल- 9893119724

गिद्ध दृष्टि थी, लार टपक रही थी पर मौक़ा हाथ ही न लगे। उसके जाते ही माँ से चिरौरी की- प्लीज़ मैं ओढ़ लूँ उसको पता भी नहीं चलेगा... मैं आकर प्रेस करके रख दूँगी... माँ ने चेतावनी दी- देख ले छोरी तू है ओघड़ और वह है व्यवस्थित... उसकी चीज़ इधर की उधर हो तो वह सूँघ लेती है... फिर जाने क्या हुआ ममत्व जागा और बोली जा डाल ले पर मुझे कुछ नहीं पता है, तेरे इस काम में मैं शामिल नहीं... उसे पता चला तो मैं न बचाने वाली।

मैं मारे उत्साह और खुशी के हर शर्त को मंज़ूर कर दुपट्टा मटका कर चली... मगर यह क्या घर से निकलते ही... कुछ दूर चलते ही... अरे नहीं गाना मत गुनगुनाओ... कयामत का पल था... सामने से बहन जी चली आ रही... वह मुझे और अपने दुपट्टे को देख रही और मैं उन्हें देखने को तैयार ही नहीं... हे प्रभु मुझे ग़ायब कर दे।

पता नहीं कैसे कैसे बुरे ख़याल के साथ आख़िर मैं उसके करीब से गुज़रने को हुई कि कानों में कलफ़ लगे दुपट्टे से भी कड़क फरफराती आवाज़ पड़ी- घर चल....पलट तुरंत...अभी के अभी। मैं बीच चौराहे रुआँसी... कंठ में फँसे शब्द किसी तरह बाहर को धकेले- सुनो तो मेरी बात। पर जैसा मैंने पहले बताया- बड़ी बड़ी कंजी आँखें... क्रोधाग्नि से जल रही थीं... और मेरी काली कत्थई आँखों में जल भर आया था...पकड़े जाने का अपमान-वपमान कुछ नहीं धुलाई-सुताई का जो दृश्य मैं देख रही थी, हकीकत वाला और डरावना था... सटाक सटाक...अब अपने ही पूजा अभिषेक का क्रिस्सा क्या सुनाऊँ... बस समझ जाओ कि मस्त वाली धुलाई हुई।

पर मैं तो मैं... छुप-छुप दुपट्टे डालने का रोमांचक काम मुझसे छोड़ा नहीं गया... जमकर धुलाई जैसे आयोजन भी इसमें कुछ न कर सके... बाद में भी ऐसे मौक़े आते रहे और मैं इन क्रिस्सों को लोटपोट होकर सुनाती रही।

एक बार मेरी छोटी मौसी ने बड़ी मौसी का सूट छुपकर पहन लिया पकड़ी गई तो बड़ी मौसी ने उदारता दिखाई, न गुस्सा हुई, न

मारा, न पीटी, बस दुपट्टा पानी के हौज में डाल दिया... ले बहन और पहन... आख़िरकार ड्रेस बदलनी पड़ी।

यह बड़ी बहन दयालु भी उतनी रही खुद ही दुपट्टों का बैंक बनाती रही और हम छोटियों पर लुटाती रहीं।

आज हम सब अपनी दुनिया में व्यस्त हैं, दुपट्टे घर में चारों तरफ़ बिखरे रहते हैं पर छुप-छुप चोरी-चोरी उन्हें डालकर जाने का जो सुख हमने लिया है उसे पूरी तरह से व्यक्त करना आज भी मुश्किल है।

इन्हीं दुपट्टों पर चौराहे से कोई पतली मरियल सी आवाज़ भी पाई है- लाल दुपट्टे वाली तेरा नाम तो बता... या हवा में उड़ता जाए मेरा लाल दुपट्टा मलमल का... अब तो याद भी नहीं कि कब इन्हें सुनकर बेसाख्ता हँसी फूट पड़ी थी और कब कान की लवें गर्म हो गई थी।

अच्छा याद आया.. कॉलेज में किसी न किसी दुपट्टे वाली को यह टाइटल भी तो मिला था- हुज़ूर इस क्रदर भी न इतरा के चलिए खुले आम आँचल न लहरा के चलिए... और उसे सुनकर मन के गुलाबीपन में एक लहर लाल रंग की भी उभर आई थी।

आज जब मेरे घर के कोनों-कोनों में लाल, नीले, पीले, गुलाबी, हरे, जामुनी, केसरिया, बादामी, सफेद, कत्थई, उन्नाबी धानी, रानी, कासनी रंगों की बहार आई हुई है... मैं अपने मन की रानी हूँ जब जो मन होता है, जैसा मैच होता है, पहनती ओढ़ती हूँ। तब मुझे याद आता है एक ऐसा भी दौर आया था जीवन में जब एक ही सफ़ेद चुन्नी 5-6 कुरतों पर काम आती थी और एक ही काली चुन्नी जो कई कुर्तों को धन्य कर जाती थी... एक ही लाल चुन्नी कई शादियों में मटक आती थी।

बहरहाल माँ और बहन से मिली यह नवरंगी विरासत मेरी मोहब्बत है... मुझे कोई उपहार देना हो तो ज्यादा मत सोचना बस एक सुंदर-सा दुपट्टा खरीद लाना- कॉटन, शिफॉन, जॉर्जेट, सिल्क, बाँधनी या लहरिया... बहुत खुश हो जाऊँगी ख़ूब दुआएँ दूँगी।

000

एक खोया हुआ सपना रेखा भाटिया



रेखा भाटिया

9305 लिंडन ट्री लेन,
शार्लिट

नॉर्थ कैरोलाइना -28277, अमेरिका

मोबाइल- 704-975-4898

ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

दुबई मेरे लिए एक सुहाना सपना ही था, जब शादी कर पहली बार ससुराल गई थी। कुछ वर्ष वहाँ रहने के बाद कुछ कारणों से इंडिया लौट आई और फिर वहाँ से अमेरिका। अब जब अमेरिका घर हो गया है। लेकिन दुबई और इंडिया पूरे संसार में दो ऐसे देश हैं जिनकी याद हर रोज आती है। एक मातृभूमि और दूसरे में घर बसाया था। पलायन कभी मर्जी से होता है, सुनहरे अवसरों और जीवन की तलाश में जो इंसान को मजबूत बनाता है और कभी पलायन होता है मजबूरी में जो इंसान को बुरी तरह तोड़ देता है। जैसे मेरे परिवार ने चार देशों में पलायन किया लेकिन भारत का बँटवारा एक दुःखद पलायन था, जिसे मेरे परिवार की तीन पीढ़ियों ने भोगा।

हर रोज स्वप्नों में आने वाले दोनों देशों की एक साथ यात्रा का संयोग लगभग चौदह सालों बाद बना। भतीजी की शादी की तारीख पक्की होते ही 2026 के जनवरी माह में टिकट बुक हो गए। दुबई, बहरीन फिर इंडिया का प्रोग्राम बना। मेरा मन बल्लियों उछलने लगा यह सोचकर कि इस यात्रा में एक अलग ही नशा छाने वाला है। मैं इंटरनेट पर दिन-रात घूमने के लिए प्रसिद्ध जगहों को चेक करती और एक लिस्ट बनती फिर लोगों से अधिक जानकारी इकठ्ठा करती। इसी क्रम में कपड़ों, ज्वेलरी और जूतों की शॉपिंग शुरू हो गई।

अभी तैयारी शुरू की ही थी कि अचानक विश्व की राजनीति में हवाएँ बदलने लगी थीं। फ़रवरी माह के अंतिम दिन अमेरिका-इसराइल ने ईरान पर मिलकर मिलिट्री ऑपरेशन शुरू कर दिया। सारा विश्व सकते में था, अचंभित था। एक शॉक की तरह शुरू हुआ मिलिट्री ऑपरेशन अचानक तेज़ी पकड़ने लगा। दुबई से परिवार ने कहा यह सब एक हफ़्ते में निपट जाएगा... उधर इंडिया की न्यूज़ चैनल्स कुछ और कर रहे थे। यहाँ अमेरिका में अलग माहौल बन रहा था। अधिक क्या बयान करूँ। युद्ध की परिस्थिति में संसार एक गहन अंधकार से घिरने लगता है।

मार्च महीने के अंत में शार्लिट से आबू धाबी की एक डायरेक्ट फ्लाइट शुरू होने वाली थी, उसकी टिकट बहुत महँगी थी। सपरिवार सभी की टिकटें तीन देशों के लिए बुक थीं। एक तरफ़ पैसा दाँव पर लगा था, दूसरी तरफ़ परिवार दुबई में रहता है, चिंता होना स्वाभाविक थी।

इधर युद्ध खत्म होने के बजाए और जोर पकड़ने लगा। दुबई और आबू धाबी पर हमले हुए, इंटरनेशनल फ्लाइट बंद हो जाने के बाद स्थिति दिन-प्रतिदिन बदहाल होने लगी। अमेरिका में शीत ऋतु के बाद बसंत ऋतु भी आ गई। मैं हर दिन टीवी के आगे घंटों बैठकर समाचार देखती, युद्ध की त्रासदी में शादी का सपना टूट रहा था, दुबई और इंडिया के परिवारों से तीखी प्रतिक्रिया का दंश हम झेल रहे थे। फ़ोन कॉल पर लंबी बहस होती कौन सही-कौन ग़लत ? आए दिन सुनने को मिल रहा था, कई मित्र इंडिया और दुबई में फँस चुके थे, कुछ किसी तरह अमेरिका लौटे। पहली बार लगा सच में हम दुनिया के किसी दूर-सुदूर कोने में रहते हैं, बाकी परिवार से बहुत दूर ! लेकिन कहते हैं न, मोह सब कुछ करवा लेता है। दुआओं-प्रार्थनाओं ने शायद कुछ रंग लाया होगा। युद्ध में कुछ समय के लिए शांति समझौता हुआ। परिवार का बहुत दबाव बना, मोह के चलते हमने अपनी बेग पैक करना शुरू की। एक हफ़्ते में शांति समझौता अब टूटा, तब टूटा, राम-राम करते हमने अप्रैल के अंत में फ्लाइट पकड़ी। मन में असमंजस, भय और अनिश्चितता होने से एक मनोवैज्ञानिक दबाव बना हुआ था। शार्लिट के एयरपोर्ट पर एक यात्री के रूप में ऐतिहाद एयरलाइन ने हमारा स्वागत किया, संदेश साफ़ था आपका शुक्रिया !

फ्लाइट आधे से ज्यादा खाली पड़ी थी। पहले तो फ्लाइट में कुछ अजीब-सा महसूस हो रहा था, भय का-सा एक माहौल। यात्रियों में ज्यादा उत्साह नज़र नहीं आ रहा था। ऐतिहाद एयरलाइन से हम पहले भी कई बार यात्रा कर चुके हैं, लेकिन यह अनुभव कुछ अलग-सा लग रहा था। 36,000 फ़ीट की ऊँचाई पर आज बहुत दिनों बाद नींद आई। 12,000 किलोमीटर की दूरी तय कर चौदह घंटों की लंबी फ्लाइट के बाद आबू धाबी की ज़मीन को हवाई जहाज़ ने छुआ। खिड़की से बाहर झाँका, एक बेहद सघन शहर के दर्शन हुए।

यहाँ वापस लौटकर शायद जीवन का पुराना दशक लौट आए, मुझे ऐसा लग रहा था। सच कह रही हूँ, कई भाव मन में हिलौरे खाते रहे ! बहुत ताज़ुब हुआ, फ्लाइट के सहयात्री उड़ानों से

अन्य स्थानों के लिए स्थानांतरित हो गए केवल मैं अपने साथी के साथ आबू धाबी के एयरपोर्ट पर बाहर इमिग्रेशन में आई। पूरा एयरपोर्ट खाली पड़ा था। जैसे मंदिर भी सूना लगता है भक्तों के बिना ! वहाँ के कर्मचारी यात्रियों के इंतजार में खड़े मानों थक चुके थे। मुस्कान चेहरों से गायब थी और एक घनी उदासी छाई थी।

एयरपोर्ट के बाहर दुबई के लिए जाने वाली बस का इंतजार करते हुए भारत के दक्षिण प्रान्त से आए पोटर ने बताया, अभी सभी बहुत डरे हुए हैं। कई साथी काम छोड़ कर चले गए हैं, वापस आना नहीं चाहते। हमने एक घंटा बस का इंतजार किया, वह भी हमारे साथ ही रहा। उमस भरा मौसम था। बस में सामान चढ़ाया। आरामदायक शटल बस से शहर की पहली झलक में कई ऊँची काँच की इमारतें, आलिशान सफ़ेद विशाल मस्जिदें जिनमें कुछ आधुनिक शिल्प में बनी थीं और कुछ हल्के हरे रंग की आधुनिक थीं लेकिन उनका शिल्प मुगलकालीन शिल्प से मिलता था, उन पर मोजेक का काम किया हुआ था और धूप में बहुत चमक रही थीं। साफ़ सड़कों पर दोनों ओर खजूर के पेड़ जैसे सजावट के वृक्ष थे। हाइवे पर कई बड़े बैनर, फ्लाई ओवर पुल, सुचारु ट्रैफिक और चौड़ा हाइवे, एक बड़े आधुनिक शहर का दृश्य था चारों ओर जहाँ कंस्ट्रक्शन नहीं थी वहाँ बालू रेत थी। तेज़ उमस में कुछ बड़ी इमारतों में काम चल रहा था, वे बड़े परदों से ढकी हुई थीं, लेकिन उन्हें देख मेरा मन पसीज रहा था, शायद यही जीवन का यथार्थ है !

एक घंटे बाद दुबई शहर की पहली झलक मिली। बस स्टैंड पर पहुँची और यात्री उतर गए। वातावरण में उस वक़्त कुछ देर में नमाज़ के स्वर गूँजने लगे। मुझे बरसों पुराना माहौल याद आ गया, यह एक चीज़ है, जो बरसों बाद भी नहीं बदली थी। हम स्टैंड पर शून्य में खड़े थे, कहाँ जाएँ, कुछ मजदूर पास काम कर रहे थे, वे दिखने में भारतीय नहीं लग रहे थे शायद बांग्लादेश से हों। पूछने पर कोई ठोस उत्तर न मिला ! दुबई में व्हाट्सएप्प कॉल नहीं लगता है, कुछ चीज़ें उलझा रही थीं।

कार से घर जाते वक़्त परिवार ने कुछ स्थानों की ओर इशारा कर नाम बताए, उन स्थानों के नाम ज़रूर याद थे, लेकिन वे स्थान पूरी तरह अनजान प्रतीत हो रहे थे। जिन गलियों में विवाह के बाद पहला घर था, गृहस्थी की शुरुआत हुई थी, बीस साल में उस स्थान का नामो-निशान गायब हो चुका था। हमारी कार कई होटलों के मध्य एक बिल्डिंग के तहखाने में गई। अल मंखूल की मुख्य सड़क पर जहाँ परिवार अभी रह रहा है।

शाम को हमने मीना बाज़ार का रुख किया। मैं पुराना मुख्य क़िला, फ़िलाफिल सेंडविच की दुकान, मुख्य बाज़ार, समुद्र किनारा, सड़क किनारे मंदिर और आगे अबरा स्टेशन ढूँढ़ रही थी। हम कार से तहखाने के एक पार्किंग लॉट में बमुश्किल पार्किंग ढूँढ़ पाए, सीढ़ियाँ चढ़ हम ऊपर आए। वहाँ कतार में कई दुकानें थीं, जिनमें सुविनियर, शालें, बुर्के, अफ़ग़ानी गाउन, ईरान और टर्की के गलीचे, हस्तकला की कई वस्तुएँ, चप्पल, जूतियाँ, इत्र, काँसे की बनी सजावट की कई वस्तुएँ थीं। दुकानदार ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और अन्य देशों से थे। यह बाज़ार हाट बाज़ार का आधुनिक नमूना था। मुझे बताया गया यहाँ पुराने दुबई में "दुबई क्रीक" का रास्ता मोड़कर एरिया को बढ़ाया गया है। ऐतिहासिक धरोहर को बचा कर दुबई के पुराने क़िले को अब म्यूज़ियम और इस हाट बाज़ार में परिवर्तित किया गया है। यहाँ मुख्य मस्जिद भी है। यह स्थान "बर दुबई" कहलाता है। यह दुबई की पुरानी संस्कृति का प्रतीक है, जिसे सँजोकर रखा गया है।

समुद्र पार "डेरा" कहलाने वाला दूसरा एरिया नज़र आ रहा था। समुद्र पार डेरा की आलीशान इमारतों की चमक, पानी पर चलते लकड़ी के अबरे, पानी के ऊपर उड़ते-शोर मचाते समुद्री पक्षी, पानी की गंध और आस-पास लोग, हवा में नमाज़ की स्वर लहरी, आसपास कुछ शोर यह सब जीवन में एक उल्लास भरी हलचल का आभास दे रहे थे। यहाँ आसपास एक बड़ा मंदिर था। मैं वहाँ जाना चाहती थी, लेकिन पता चला कोविड के समय उसे बंद कर दिया गया। कारण बताया

गया, लोग मंदिर के बाहर बहुत कचरा फेंकते थे, सुनकर धक्का लगा। दुबई अब पहले से अधिक सिर्फ़ विकसित ही नहीं हुआ था वरन बहुत साफ़-सुथरा था।

यहाँ से पैदल मीना बाज़ार जा सकते हैं। चारों ओर रोशनी से भरे इस बाज़ार में ड्राई फ़ूट, खड़े मसाले, इत्र, केसर, भारतीय रेडीमेड परिधान, कपड़े, पर्स, जूतों, दर्जी, विभिन्न वस्तुओं और सोने के आभूषणों की बहुत बड़ी-बड़ी दुकानें थीं। पहले यहाँ मुख्यतः कपड़े की दुकानें हुआ करती थीं। हर दुकान के बाहर उनके कर्मचारी सड़क पर खड़े होकर ग्राहकों को पुकार रहे थे। इस चहल-पहल रोशनी से भरे बाज़ार में रौनक थी लेकिन पहले की तुलना में भीड़ बहुत कम थी। हर दुकान पर दुकानदार कुछ खरीद लेने का आग्रह करते ! पर्यटक न के बराबर थे। जाने कैसे इन दुकानदारों को पता चल जाता है कि कौन पर्यटक हैं, कौन लोकल हैं। परिवार और हममें बख़ूबी भेद कर पा रहे थे। युद्ध की मार से पनपी मंदी अपने चरम पर थी। बाज़ार की चकाचौंध भरी रोशनी दुकानदारों के मन की बुझी रोशनी में अपनी गरिमा खो चुकी थी।

यहाँ यूसुफ़ इत्र वाले का एक विशाल स्टोर है, उसमें परफ्यूम बना कर दिखाते हैं। मैंने इत्र और परफ्यूम की पूरी रिसर्च कर ली, मेरी जिज्ञासा चरम पर थी। कई अन्य इत्र की दुकानों पर गई। बड़ा सुखद अनुभव था। यही अनुभव केसर ख़रीदने में हुआ। यहाँ की दुकानों में ईरान का केसर टनों की मात्रा में था। विभिन्न देशों के लोग, भिन्न संस्कृति और भाषा लेकिन एक अगल रिदम का प्रवाह था। यहाँ परिवार ने विवाह की तैयारी के लिए सामान खरीदा, मोल-भाव करते और हिन्दी भाषा का एक भिन्न रूप जो मुम्बइया और अरबी स्टाइल का मिश्रण था, उसमें बात करते। मुख्यतः सभी देशों के लोग हिन्दी में बात कर रहे थे, फिर अँग्रेज़ी पर छल्लाँ लगाते और टूटी-फूटी अँग्रेज़ी पर जोर आजमाते। सब कुछ बड़ा मजेदार लग रहा था।

विवाह के अगले दस दिनों में ख़रीदारी के साथ कई ब्यूटी स्पा में जाना हुआ। कई स्पा मॉल के अंदर हैं, कई मॉल की दुकानें बंद

पड़ी थीं। मॉल खाली पड़े थे। स्पा में काम करने वाली महिलाएँ इंडिया, नेपाल और फिलीपींस से थीं। भारतीय महिलाओं ने बताया, "कई भारतीय काम से निकाल दिए गए। उनका वीसा रद्द कर दिया गया। कई युद्ध से घबरा कर भारत लौट गए, कई काम न होने की वजह से।" दुबई में घरों का किराया बहुत महंगा है और कई लोग एक ही कमरे में एक साथ रहते हैं। एक बार मैं बर जुमेराह मॉल अकेली पैदल गई। बहुत बड़े मॉल, कई दुकानें, बहुत सारी भीड़। विश्वास ही नहीं हुआ बढ़ता आधुनिक शहर इतनी जल्दी शकलें बदल लेता है जो यादों की शकलों से बिलकुल मिल नहीं रहा था।

बर दुबई और करामा इलाकों में अधिकतर भारत, नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान के रहवासी हैं। यहाँ की गलियों में मुंबई की-सी भीड़ और लय है। इन इलाकों में अरबी लोग अधिक नज़र नहीं आते। यहाँ लोग शाम को गलियों में आराम से घूमते हैं, बच्चे-बूढ़े सभी। भिन्न देशों के लोग शाम को सड़कों किनारे टोलों में वक्रत बिताते नज़र आते हैं, बच्चे सायकलों पर और झुण्डों में। मुझे जीवन का निर्भीक, स्वच्छंद खुलापन रास आ रहा था। दुबई बहुत सुरक्षित शहर है, यहाँ देर रात अकेले घूमने में कोई भी डर नहीं है चाहे पास में केश हो या शरीर पर सोना ! हर जगह पुलिस नज़र नहीं आती लेकिन सभी नियमों का पालन करते हैं।

यहाँ इमारतों की ऊँचाई और विकास के आगे मनुष्य का क्रद बहुत छोटा नज़र आता है। कुछ वर्ष पूर्व जुमेरा बहुत आलिशान इलाक़ा हुआ करता था। यहाँ कई विलाएँ और मकान हैं। यहाँ घूमने के लिए सुंदर समुद्र किनारा है। दुबई का आलिशान डाउन टाउन दुनिया के लिए बहुत खास है। यहाँ वर्ष 2010 में बनी संसार की सबसे ऊँची आधुनिक इमारत बुर्ज खलीफ़ा है, जो वास्तुशिल्प का एक बेजोड़ नमूना है। इसमें कुल 165 मंजिलें हैं, 123 मंजिल तक पर्यटक ऊपर जाकर इसे देख सकते हैं। यह अनुभव अपने आप में अनोखा सिद्ध हुआ। ऊपर की शुद्ध, ठंडी हवा युक्त विशाल गोलाकार बालकनी में से चारों



ओर दुबई की तमाम इमारतें और पूरा शहर खिलौनों से बना किसी काल्पनिक दुनिया का शहर नज़र आता है। यहाँ से दुबई फाउंटेन और बुर्ज पार्क का अद्वितीय दृश्य दिखाई देता है। फ़िरोज़ी रंग के पानी पर छोटी-छोटी बोट विचरण करती परी लोक का आभास देती हैं, जैसे बचपन में कहानियों में सुना करते थे। हर पर्यटक को यह अनुभव लेना चाहिए। बुर्ज खलीफ़ा की भवन निर्माण की पूरी प्रक्रिया की ज्ञानवर्धक जानकारी यहाँ के म्यूजियम में उपलब्ध है। चूँकि जब मैं दुबई गई थी, युद्ध चल रहा था, यहाँ पर्यटकों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती थी। यहाँ एक भारतीय परिवार जो ठेठ देसी भाषा में बात कर रहा था, अत्यधिक पाश्चात्य परिधानों को धारण किया हुआ था, माता-पिता, पोता और दो जवान युवतियाँ, उन्होंने सब जगह रील्स बनाने वक्रत वहाँ के सिक्युरिटी गार्ड्स की नाक में दम कर दिया था। बार-बार मना करने पर भी वह उन स्थानों पर जा रहे थे जहाँ जाने की मनाही थी।

बुर्ज खलीफ़ा तक पहुँचने के लिए हमने मेट्रो ट्रेन ली, यह ट्रेन शहर के मध्य चलती है। इसमें बैठकर एक आधुनिक शहर आपके साथ भागता प्रतीत होता है। बहुत मनोरम अनुभव रहा। ट्रेन में पर्यटकों के अलावा कई तरह के लोग जैसे स्थानीय, बर्किंग क्लास और अलग-अलग देशों से आए दिख जाते हैं। मेट्रो स्टेशन दुबई मॉल से एक टनल से जुड़ा है। दुबई मॉल एक विशाल शहर है भीतर से।

बड़े-बड़े नामी ब्रांडेड स्टोर्स, रेस्तराँ, गेमिंग के स्थान, एक्वेरियम, आइस रिंग और भी कई आकर्षण हैं। यहाँ हमने बाकी का बचा पूरा दिन बिताया। यहाँ अच्छी शॉपिंग की जा सकती है। यहाँ के लेबनीज़ रेस्तराँ में बुर्ज पार्क के दृश्यों के साथ खाना खाकर, शाम को बुर्ज पार्क में खूब घुमा। हर पंद्रह मिनटों में जग प्रसिद्ध दुबई फ़ाउण्टेन का पानी, रोशनियों और संगीत के साथ नृत्य होता है। आसपास की सभी ऊँची इमारतों से अनगिनत प्रकाश की रोशनियाँ विविध रंगों में नृत्य करती पानी के फव्वारों के साथ थिरकती हैं। यहाँ मैंने और मेरे साथी ने अविस्मरणीय यादें सँजोई, दुबई एक सपने-सा महसूस हुआ जो हमारे जीवन में होकर फिर वक्रत के साथ खो गया था। कहना न होगा, वर्षों बाद फिर मिला यहाँ परिवार का सुख इस पर्यटन यात्रा को और भी शानदार बना रहा था, जब थक जाओ, लौट आओ घर !

रात देर लौटते समय एक लक्ज़री लैंबॉर्गिनी कार टैक्सी का अनुभव लिया, यह सुविधा मॉल के बाहर खास रूप से मिलती है। टैक्सी का युवा ड्राइवर लाहौर से था और हिन्दी-पंजाबी में बख़ूबी बात कर रहा था। वह रास्ते भर उसके जीवन के संघर्षों की अद्भुत कहानी हमें सुनाता रहा और दुबई शहर के बारे में बताता रहा। उसने बताया भारतीय बहुत बुद्धिमान कौम हैं और हर क्षेत्र में बहुत तरक्की की है दुबई में। साथ नेपाल और फिलीपींस के वर्कर क्लास को अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान है और बहुत कम तनख्वाह पर काम करते हैं, जिससे रोज़गार के अवसरों में बहुत तगड़ी प्रतियोगिता बन गई है।

अगले दिन हम दुबई फ़्रेम को क्रॉस कर साल 2022 में बने दुबई फ्यूचर म्यूजियम को देखने गए। यह अंडाकार आकर की एक शानदार चमकदार इमारत है जिसे स्टील, ग्लास और प्लास्टिक को मिलाकर बनी धातु से बनाया गया है। यह इमारत देखने में किसी नेम ब्रांड लेडीस पर्स जैसी अनोखी दिखती है, संपूर्ण इमारत पर अरबी लिपि में संदेश लिखे हुए हैं, दरअसल वह इस इमारत की खिड़कियाँ हैं। आधुनिक इंजीनियरिंग का यह

एक और बेजोड़ उदाहरण है। इस संग्रहालय में डॉग रोबोट, मानव रोबोट हैं जो इंसानों से बात करते हैं। स्पेस स्टेशन और उसकी उड़ान का अनुभव है। धरती के सभी जीव-जंतुओं के डीएनए के नमूने, ऐमजॉन के जंगलों के डिजिटल मॉडल हैं। मानव विकास और समस्याओं के समाधान के लिए भविष्य के दृष्टिकोण और हीलिंग के लिए भविष्य के विभिन्न तरीकों की विस्तृत प्रदर्शनी है। संग्रहालय के ऊपर टैरिस पर इमारत को करीब से देख सकते हैं और फोटो ले सकते हैं। इस टैरिस पर खड़े होकर आभास होता है आप किसी दूसरे समृद्ध गृह की सभ्यता के मध्य खड़े हैं।

पूरा दुबई शहर समृद्ध विकास, वास्तुशिल्प और संपन्नता का संसार में बेजोड़ उदाहरण है। यहाँ भी आज पर्यटक न के बराबर थे। एक और बात वह भारतीय परिवार आज भी यहाँ मौजूद था, बार-बार मना करने पर भी कैमरा की फ्लैश लाइट चालू कर रहे थे, इन्हें देख खीज आ रही थी। मैंने कई बार मना किया, लेकिन मुझसे बहस करने लगे। मन को धक्का लगा। क्या करें हम शकल से ही नहीं, मन से भी भारतीय हैं। अपनों का इस तरह का व्यवहार नहीं भाता है।

मैंने अमेरिका के हर शहर के नासा के स्पेस स्टेशन और म्यूजियम देख लिए हैं, जहाँ अपोलो 13, 14, रॉकेट, लॉन्चर, अंतरिक्ष यात्रियों की रोजमर्रा की वस्तुएँ, अंतरिक्ष सूट, चाँद से लाई चट्टान, अंतरिक्ष से गिरे उल्का पिंडों की चट्टानें हैं। रोबोट कई बार स्कूल में लाए जाते हैं। लेकिन मुझे यहाँ का अनुभव भी बहुत अच्छा लगा। लेकिन यहाँ सिर्फ प्रदर्शन था, अमेरिका पहले से ही बहुत विकसित है। लेकिन एक बात है दुबई की मजबूत अर्थव्यवस्था के कारण वहाँ विकास की सम्भावनाएँ अब अधिक प्रबल हैं। कई बड़ी कंपनियाँ यहाँ निवेश कर रही हैं, टेक्स नहीं लगता है। आधा दिन यहाँ गुज़ारकर हम दुबई मरीना एरिया में चले आए। रास्ते में दुबई फ्रेम को फिर क्रॉस किया।

दुबई मरीना एरिया में पॉश अपार्टमेंट बिल्डिंग, ऑफिस बिल्डिंग, दुबई मरीना मॉल



और 7 किलोमीटर लंबा बोर्ड वाक है। यह एरिया दुबई की एक ग्लैमर से भरी माया नगरी है। यहाँ की स्काइलाइन, पानी में बोट और यार्च फ्लोरिडा के मायामी और फोर्ड लॉडर डेल शहरों की याद दिलाते हैं। यहाँ हमने एक प्राइवेट याच बुक की थी। देर दोपहरी तक बोर्ड वाक पर सैर की फिर याच बोट पर उसके अगले हिस्से में बैठ कर पानी में सैर का आनंद लिया। बोट का ड्राइवर भारतीय था, उसने बॉलीवुड म्यूजिक चला दिया, हम थिरकते-गाते मौसम और दृश्यों का आनंद लेते रहे। यहाँ से दुबई की स्काई लाइन और पानी में पड़ती उनकी छवि बहुत लुभावनी नज़र आ रही थी। यहीं से दुबई आई (आँख) रोलर कोस्टर भी दूसरे किनारे पर दिखाई देता है, ठीक वैसा ही जैसे लंदन की आई (आँख) है। सारे संसार में बनी प्रसिद्ध, अद्भुत इमारतों और लैंडमार्क की कॉपी अर्थात् हू-ब-हू नक़ल कर वैसी ही इमारत और लैंडमार्क का दुबई में निर्माण कराया गया है।

कई यात्रियों का यह सपना होता है कि संसार के विभिन्न स्थानों की यात्रा कर वहाँ के प्रसिद्ध स्थानों को देखा जाए लेकिन दुबई के रहवासी उन्हीं स्थानों की प्रतिकृति प्रतिदिन देख सकते हैं, हैं न मजेदार बात ! यही बात इस शहर को अनोखा और ऊर्जावान बनाती है। रात के खाने के लिए वहाँ के एक प्रसिद्ध अरबी रेस्टोरेंट में गए, यकीन मानिए शाकाहारी खाना मिला लेकिन अमेरिका जितना स्वादिष्ट नहीं था।

यह बात मैं इसलिए भी यकीन से कह सकती हूँ चूँकि शादी दुबई के संसार प्रसिद्ध पाम जुमेराह द्वीप के ताज एक्सोटिका रिसोर्ट में थी। यहाँ देश-विदेश के सैकड़ों पर्यटक आकर ठहरते हैं। दुनिया भर के विभिन्न व्यंजन वहाँ परोसे गए, अन्य कई विभिन्न रेस्तराँ में हमने खाना खाया लेकिन खाने का स्वाद मुझे बहुत नहीं भाया। लेकिन शादी और उसके समारोह में सम्मिलित होना अपने आप में एक शानदार राजसी अनुभव था। इस तरह के राजसी अनुभवों के लिए हम अमेरिका में तरस जाते हैं। कारण दुबई में भारतीय और अन्य देशों से आए श्रमिक वर्ग बहुतायत हैं, दुबई में नौकरशाही का बोलबाला है। लेकिन यस सर, जी सर वाली संस्कृति मनुष्य में श्रेष्ठता की भावना उत्पन्न कर असमानता को बढ़ावा देती है।

भारत में भारतीय शादी, अमेरिका में भारतीय शादी और दुबई में भारतीय शादी एक दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं, कारण उस देश के रहन-सहन और संस्कृति से प्रभावित होती है। दुबई की भारतीय शादी में, उनके पहनावे में और रस्मों में अरबी संस्कृति का असर ज़रूर दिखा। एक बात और दुबई में पीने की संस्कृति बहुत आम है।

अब बात करें पाम जुमेराह की, यह मनुष्य का बनाया हुआ एक द्वीप है। यह ताड़ के वृष के आकर का है। यह एक रमणीक स्थान है। यहाँ बड़ी विलाएँ और कई शानदार होटल हैं। जिनमें बर्ज अल अरब और अटलांटिस प्रमुख हैं। हम अटलांटिस होटल में घूमने गए। यह बहामास के अटलांटिस की हू-ब-हू प्रतिकृति है लेकिन उसकी तुलना में बहुत छोटा है। इसमें आर्ट गैलरी और वस्त्रों की कुछ दुकानें भी हैं और इसमें एक छोटा-सा एक्वेरियम भी है। जिन्हें युद्ध की स्थिति में आम जनता के लिए मुफ्त में खोल दिया गया था। होटल के भीतर और बाहर समुद्र किनारे फोटो खिंचवाने के लिए बहुत सुंदर स्थान हैं। अटलांटिस की खूबसूरती का अंदाज़ा लगाइये, यह कई खिड़कियों वाला पानी में तैरता गुलाबी विशाल महल नज़र आता है।

अनोखे शहर दुबई का इतिहास भी बड़ा

अनोखा है। यहाँ 6000 वर्षों से मानवीय हलचल के साक्ष्य मिलते हैं। अट्टारहवीं सदी तक दुबई मछली पकड़ने और मोती चुनने वाला एक गाँव था। दुबई का समुद्री जल मार्ग "दुबई क्रीक" व्यापार की दृष्टि से बहुत सुगम और महत्वपूर्ण था। यह सुगम प्राकृतिक बंदरगाह था। साल 1833 में इस पर अल मकतूम परिवार अपने कबीले "बानी यास" के 800 लोगों के साथ यहाँ आकर बस गया। तब से यह परिवार दुबई पर शासन करता आ रहा है। 1958 में शेख रशीद अल मकतूम ने दुबई की कमान संभाली। उनकी दूरदर्शिता ने दुबई के विकास में अहम भूमिका निभाई। साल 1961 में दुबई क्रीक को गहरा करने का कार्य शुरू किया गया। साल 1966 में यहाँ तेल की खोज हुई, उसके बाद दुबई की आर्थिक स्थिति और विकास में बहुत बड़ा उछाल आया। यहाँ कई बंदरगाह बनाए गए। व्यापारियों को आकर्षित करने और व्यापार को बढ़ावा देने के लिए यहाँ के शासकों ने टैक्स मुक्त नीतियाँ लागू की। ट्यूरिज्म को बढ़ाने के लिए नई "एमिरेट्स एयर लाइन" खोली गई। नया आधुनिक और आकर्षक एयरपोर्ट बनवाया गया। साल 1971 में दुबई, आबू धाबी और "यू.ए.ई." के अन्य पाँच राज्य मिल गए और संयुक्त अरब अमीरात देश की स्थापना हुई। तब दुबई के शासक शेख रशीद देश के उप राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री बने। साल 1979 में दुबई का पहला वर्ल्ड ट्रेड सेंटर 39 मंजिला बना। तब मेरे ससुर दुबई जा चुके थे, वे आज भी तब की बातें बताते हैं। वहाँ का इतिहास, विकास और व्यवस्था के बारे में। सारी जानकारी सुनने में और समझने में मुझे बड़ा मजा आता है और अधिक जिज्ञासा जगती है!

वर्तमान के चमचमाते दुबई को देख कर कौन कह सकता है कि पचास साल पहले यह शहर बालू के ढेर पर बैठा था, तब ताजा पानी मुश्किल से मिलता था और बीयर आसानी से ! जब नब्बे के दशक में मैं वहाँ रहती थी, तब बर दुबई और डेरा में दुबई क्रीक के दोनों ओर ऊँची इमारतों का तेजी से निर्माण शुरू हो गया था। मेरे परिवार की तीसरी पीढ़ी वहाँ रहती है



लेकिन विकास की दर पाँच पीढ़ियाँ आगे है।

कुदरत ने आसपास के दूसरे देशों को तेल-पेट्रोल भरपूर दिया है, बालू के ढेर पर बैठे दुबई ने सोचा होगा कि भविष्य में उसे कैसे अव्वल आना है ? मैं सोचती हूँ पूर्वकाल में भारत "सोने की चिड़िया" कहलाता था, वर्तमान में दुबई सम्पूर्ण विश्व के लिए "सोने की चिड़िया" है। दुबई का "गोल्ड सूक" मार्केट संसार के एक सबसे क्रिमती और चमचमाते मार्केट की तरह दुबई भी हीरे के गहने-सा चमचमाता एक सुंदर उपहार है लेकिन क्रिमती गहने को गढ़ने, बनाने, खरीदने और रखने की क्रिमत बहुत अधिक होती है, यह तो आप जानते ही हैं। मजदूर कठिन परिस्थितियों में अति अधिक तापमान में दिन-रात काम कर इस शहर को जीवित रखते हैं। मुझे याद पड़ता है, बुर्ज खलीफ़ा की 122 वीं मंजिल पर जाते वक्त जहाँ भी क्रिमती फ़र्श पर क़दमों के निशान पड़ रहे थे एक भारतीय वर्कर तेज़ी से साफ़ कर देता। बाहरी चकाचौंध मेरे भीतर अंधेरा फैला रही थी।

शादी से निपट कर मेरे ख़राब होते स्वास्थ्य के कारण हम बर दुबई के एक होटल में शिफ्ट हो गए। पर्यटन अस्सी प्रतिशत से अधिक गिर गया था। शहर में व्यापार अपने निचले स्तर पर था फिर भी पूरे शहर में कई नामी कंपनियों द्वारा दुबई और आबू धाबी के शासकों के इमारतों जितने बड़े पोस्टर्स लगाए गए थे, उन्हें सुरक्षित रखने के लिए धन्यवाद देने के लिए ! वहाँ के शासक बहुत निपुणता

और गंभीरता से आम जनता की सुरक्षा सुनिश्चित कर रहे थे। पैसा पानी की तरह बहा रहे थे। युद्ध की स्थिति में मध्य भी लोग सुकून से रह रहे थे और व्यवस्था में उनका विश्वास पहले से अधिक गहरा हो गया था, हाँ लोग भयभीत ज़रूर थे। एक बात और यहाँ धर्म, राजनीति और सरकारी फ़ैसलों में आम जनता बिलकुल दखल नहीं देती। कई महँगे दर्शनीय होटल, इमारतें, जबील पैलेस और अन्य महत्वपूर्ण स्थानों को सुरक्षा की दृष्टि से यह कहकर अस्थायी रूप से बंद कर दिया गया था कि वहाँ रिनोवेशन का कार्य चल रहा है।

यात्रा के आगे के पड़ाव में मैंने इसके कई उदाहरण देखे। होटल से नीचे सड़क पर एक उबर पकड़ हम ग्लोबल विलेज में जाने के लिए बैठे। पाकिस्तानी उबर ड्राइवर एक टीन एज युवक था। कहने लगा दो महीनों में हम उसकी केवल दूसरी सवारी हैं। उसी दिन फ़ोन पर मिसाइल-ड्रोन के हिट होने के कई नोटिफिकेशन आ चुके थे। हम उत्सुक थे घूमने के लिए लेकिन वह घबराया हुआ था। हमने हालात के बारे में बात की लेकिन उसने शिकायत करते हुए कहा, "आर्थिक हालत बहुत ख़राब है। यहाँ कुछ कहो तो पकड़ कर अंदर डाल देते हैं, क़ानून बहुत सख्त हैं।"

ग्लोबल विलेज जिसे मैं एक छोटा शहर कहना पसंद करूँगी एक शानदार प्रांगण है, देखने में रंगीन रोशनियों से जगमगाता एक एम्यूज़मेंट वंडरलैंड लग रहा था। यहाँ कई सुंदर बगीचे और पानी की झील है। यहाँ का माहौल मेले जैसा था। इसमें दुनिया से कई देशों के बाज़ार हैं, जैसे यहाँ जापान, चीन, सऊदी अरब, इजिप्ट, इराक, ईरान, जॉर्डन, अफगानिस्तान आदि। इंडिया के बाज़ार में जाने के लिए इंडिया के महलों की प्रतिकृतियों के मध्य भारतीय परिधानों, कलात्मक वस्तुओं, आभूषणों, सजावट के सामान, मसाले, इत्र और अन्य कई तरह की वस्तुओं की दुकानें थीं। वैसे ही इजिप्ट के पिरामिड, इराक के पुरातन महल की प्रतिकृतियाँ और अन्य देशों के लिए वहाँ की। जॉर्डन के बाद हम इराक के बाज़ार में गए, एक अफ़गानी व्यापारी कश्मीर की शालें बेच रहा था। वह

शाल खरीदने की मिन्नतें डालने लगा, "आज दुकान हम जल्दी बंद कर रहे हैं, दो महीनों से यह मार्केट बंद पड़ा है, अब पता नहीं फिर कब खुले?" हमें कुछ समझ में नहीं आया।

लेकिन कई दुकानदार डॉलर में पैसे लेने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। इजिप्ट, सऊदी अरब के बाद जब हम इंडिया के बाज़ार में गए तब दबी जुबान में कही बातों की हकीकत पता चली। बाज़ार बारह बजे के बजाए साढ़े आठ बजे ही बंद हो गया। खाना नहीं मिला। सभी को ग्लोबल विलेज से बाहर सुरक्षित निकला जा रहा था। उस दिन से स्कूल पाँच दिन के लिए फिर ऑनलाइन हो गए, बांग्लादेशी ड्राइवर ने बताया। हालत तो ठीक नहीं थे। खबर मिली फुजेरा प्रांत पर हुए हमले में पाँच भारतीय वर्कर घायल भी हुए थे। थोड़ा भयभीत तो हम भी हुए। यहाँ का लुत्फ ज़्यादा न उठा सके...युद्धों की उपज था यहाँ भय!

दुबई से दो घंटों की ड्राइव पर पहाड़ियाँ हैं जिनमें जेबेल जैस और हत्ता डेम प्रमुख हैं। सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें और दुबई की डेसर्ट सफ़ारी को अस्थायी बंद कर दिया गया था। हमने परिवार के साथ अल ऐन की डेसर्ट सफ़ारी जाने का प्रोग्राम बनाया। अल ऐन अमीरात का चौथा बड़ा शहर है और दुबई से डेढ़ घंटा दूर है। हम जब-जब परिवार के साथ होते थे, हमें स्थाई निवासी की तरह घूमने का अनुभव भी मिल जाता था। कई चीज़ों की जानकारी स्थाई लोगों को अधिक होती है। हमें दुबई में एक कंपनी का पठान ड्राइवर गाड़ी में लेने आया। रास्ते में हमने दुबई के शासक का महल, आसपास के बगीचे और हरियाली के दर्शन किए। दुबई शहर ख़त्म होने के बाद हाईवे के आसपास केवल मरुस्थल और उनमें इक्का-दुक्का छोटी झाड़ियाँ दिख जाती थीं। वहाँ ऊँटों के झुंड, बकरियों के झुंड थे। दमकते दुबई से बाहर निकलते ही बदलता परिदृश्य और मरुस्थली जंगल आँखों को बहुत भा रहा था। दुबई की झकझोरती धूप आँखों को चौंधिया देती है और कई बार बहुत दूर तक दृश्य साफ़ दिखाई नहीं पड़ता है।

गाड़ी का ड्राइवर पाकिस्तान से था, जब वह डेढ़ वर्ष का था, उसका परिवार दुबई आ



गया और फिर कभी पाकिस्तान नहीं गया। उसका बात करने का लहज़ा और अंदाज़ पूरा अरबी हो गया था। सफ़ारी में ऊँट की सवारी करवाने वाले बशिंदे बलूचिस्तान से आए खानाबदोश थे। वे पर्यटकों के फोटो और वीडियो ले रहे थे, अँग्रेज़ी भी समझ रहे थे।

डेसर्ट सफ़ारी में मैंने पारंपरिक लाल-सफ़ेद शेमग (अरबी साफा) सिर पर बाँधवाया। मैंने महसूस किया चिलचिलाती रेत, धूल और धूप से शेमग बहुत बचाव कर रहा था। यहाँ मैंने फोर व्हीलर स्कूटर को बालू रेत में बहुत देर चलाया, मुझे कॉलेज के दिनों में स्कूटी चलानेवाले दिन याद आ गए। यहाँ पर्यटकों में खासा उत्साह नज़र आ रहा था। यहाँ प्रकृति में आसपास रेत की सुनहरी ढलान और आसमान में सूरज बहुत रोमांच भर रहा था। थोड़ी देर में उसी ड्राइवर ने गाड़ी के टायरों की हवा कम कर दी। अब हम ड्यून बेशिंग के लिए तैयार थे। मैं गाड़ी में आगे बैठी, बाकी लोग रेत की बड़ी ढलानों से तेज़ गति से नीचे आती गाड़ी में बैठने से डर कर पीछे की सीटों पर दुबक कर बैठ गए। ड्यून बेशिंग के रोमांच और सबकी डर भरी चीखों से मेरा हँसना बंद नहीं हो रहा था। यहाँ शाम भी ढल रही थी। इस रोमांचित अनुभव के बाद ड्राइवर हमें कुछ दूरी पर एक दूसरे स्थान पर ले गया। यहाँ कायनात की जन्नत का जश्न मन रहा था। एक खुले रोशनी भरे बड़े अहाते में बहुत खुशनुमा माहौल था। यहाँ कई दुकानें सजी थीं, मध्य एक विशाल खुला मंच सजा

था। उसके चारों ओर हर दिशा में कुर्सी-टेबल सजे थे। उन पर करीने से टेबल कवर लगे थे। जैसे कोई विवाह समारोह चल रहा हो। एक प्रांगण में बुफ़े लगा था। उसमें तरह-तरह के व्यंजन परोसे गए थे, अरबी शाकाहारी-मांसाहारी, मिष्ठान और ड्रिंक्स। लज़ीज़ खाने के साथ यहाँ नृत्य के कई कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। जिनमें पुरुष कलाकारों द्वारा रंगीन पोशाकें और स्कर्ट पहन कर तेज़ घेरदार चक्कर लगाते हुए इजिप्ट का तनौरा नृत्य बहुत ऊर्जावान नृत्य था, जिसे साथ में करने से मैं खुद को रोक न सकी और स्कर्ट पहन कत्थक नृत्य समान खूब चक्कर लगाए! उसके बाद बॉलीवुड गानों पर महिलाओं द्वारा बैली डांस और पुरुषों द्वारा आग के करतब प्रस्तुत किए गए। यहाँ की मेहमाननवाज़ी ने रूह खुश कर दी। हम देर रात लौटे।

अगले दिन हम भारत जाने के लिए तैयार थे। देर रात में हमें आबू धाबी से फ्लाइट पकड़नी थी।

अगले दिन परिवार के सदस्य हमें एक स्थान पर ले गए। इस प्रांगण में मंदिर, गुरुद्वारे सभी एक ही स्थान पर बने हुए थे। हमने एक खूबसूरत गुरुद्वारे में दर्शन किए, यहाँ लोगों की भीड़ थी। यहाँ तस्वीरें खींचना मना था। जानकारी न होने पर मैंने एक तस्वीर ली, मुझे बहुत डाँट पड़ी। गुरुद्वारे के सेवा धारी तपती सड़क के बीच गाड़ियों को रोककर गुरुद्वारे के बारे में बताते दिखे। मैं सोच में पड़ गई?

हम डेढ़ घंटे का सफ़र तय कर आबू धाबी के बेप्स टेम्पल (स्वामीनारायण मंदिर) आ गए। 27 एकड़ पर प्राचीन पारंपरिक शैली में बना खाड़ी देशों का यह सबसे बड़ा और भव्य हिंदू वैदिक मंदिर है, जिसका निर्माण 2024 में पूरा किया गया। इसकी ज़मीन आबू धाबी के शासक ने भेंट में दी थी। बाहर से यह मंदिर राजस्थानी गुलाबी बलुआ पत्थरों से बनाया गया है। हर पत्थर की नक्काशी हाथ से की गई है। इस मंदिर के सात गुंबज हैं। जो अमीरात देश के सात एमिरेट्स के प्रतीक हैं। मंदिर के पत्थरों पर शिव पुराण, रामायण, महाभारत और सभी देवी-देवताओं की कहानियाँ तराशी गई हैं। इसका निर्माण भारतीय संस्कृति और यू

ए इ की संस्कृति को मिला कर किया गया है, जिसे एकता का प्रतीक माना गया है।

यहाँ हर शाम गंगा की आरती होती है। यहाँ की गंगा (ताल) में गंगा, यमुना और सरस्वती का जल डाला गया है। इस अप्रतिम मंदिर को भीतर से इटालियन मार्बल से बनाया गया है। आज के युग में यह मंदिर हस्त कला, भारतीय स्थापत्य कला और विरासत का एक बेजोड़ उदाहरण और दर्शनीय स्थल है। उच्चतम तापमान में भी मंदिर के प्रांगण में नंगे पैर चलने पर फर्श ठंडा महसूस हो रहा था, मैं बहुत चकित हो रही थी। हमने यहाँ अच्छा वक्त बिताया। भीतर तस्वीरें लेना मना था। लेकिन भीतर छत और खम्बों पर की गई नक्काशी, नदियों के बहाव के लाइट इफेक्ट्स, प्रतिमाओं की सौम्यता, दीप्तिमान शांति, प्रेम, भव्यता और वातावरण आपको दूसरे लोक का एहसास करवाती है जैसे आप किसी कोमल सफ़ेद फूल की पंखुड़ियों के मध्य खड़े हैं ! हमने बाहर खूब सारी तस्वीरें लीं। यहाँ एक आधुनिक कैफ़ेटेरिया और गिफ्ट शॉप है। यहाँ मुझे कम लेकिन हर धर्म के पर्यटक दिखे। मंदिर की सख्त सुरक्षा की ज़िम्मेदारी मुस्लिम निभा रहे थे। तब याद आया प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का दिया गया वह बयान कि यह मंदिर साम्प्रदायिक सौहार्द और विश्व एकता का प्रतीक बनेगा !

हमारा अगला गंतव्य था आबू धाबी की विश्व प्रसिद्ध "शेख जायद ग्रैंड मस्जिद" ! यह हमारी यात्रा का अंतिम पड़ाव था। अब हम थोड़े भावुक हो रहे थे। मंदिर से मस्जिद की दूरी ज़्यादा थी। एक-दो स्थानों पर भटकने के बाद हम मस्जिद तक पहुँच पाए। उन दिनों वहाँ जी पी एस काम करना अचानक से बंद कर देता था क्योंकि ड्रोन के अटैक से बचाने के लिए उन्हें जाम कर दिया जाता था। अंततः हम पार्किंग लॉट से एक अंडरग्राउंड मॉल में आ गए। बहुत आलिशान मॉल था, यहाँ कई दुकानें और रेस्तराँ थे। दुकानदार आवाज़ें दे देकर पुकार रहे थे कि हम उनसे सिर के लिए और शरीर को ढँकने के लिए कपड़े खरीद लें। हम मंदिर से मस्जिद आए थे, शालीन वस्त्रों में थे। सिक्योरिटी लाइन खाली पड़ी थी,



लेकिन हमें भीतर जाने से रोक दिया गया। परिवार की एक महिला सदस्य वहाँ की स्थाई निवासी.... आगे की कहानी अधिक बयान करने का मेरा मन नहीं है। लाल-सफ़ेद शेमः (अरबी साफ़ा) और अफगानी कप्तान मैं अपनी सूटकेस में से निकाल लाई। इतिहास गवाह है, मेरा विद्रोह का कोई इरादा नहीं था।

यहाँ यूनिफार्म में हिन्दू सुरक्षा अधिकारी दिखे, यहाँ का सौहार्द्रपूर्ण वातावरण मन को भा गया। सभी अपने कर्तव्यों का पालन नियमों से करते हैं, धर्म आड़े नहीं आते उनके बीच ! हम बिना और समय गवाए वैगन और लिफ्ट नुमा सीढ़ियों से तुरंत मस्जिद के विशाल गलियारे में पहुँचे। यहाँ सफ़ेद संगमरमर के भव्य भवन में कई गुम्बज, मेहराब और झरोखे थे। मुख्य मेहराबदार द्वार से मस्जिद के प्रांगण में प्रवेश किया। मुख्य प्रांगण में सफ़ेद फ़र्श पर विभिन्न पुष्प लताओं की आकृतियाँ हैं। चारों ओर गलियारों में सफ़ेद खंबों पर सुनहरी ख़ूबसूरत नक्काशी की गई है। चारों दिशाओं में चार सुंदर मीनारें हैं। इस विशाल मस्जिद में कुल 1000 खंबे हैं। 82 गुंबज हैं। यहाँ 40, 000 से ज़्यादा लोग एक साथ नमाज़ पढ़ सकते हैं। नमाज़ कक्ष में प्रवेश से पहले यहाँ एक शिला लगी है, जिस पर संदेश अंकित है "शेख जायद ग्रैंड मस्जिद एक महत्वपूर्ण धार्मिक और सांस्कृतिक स्थल है। यह केवल इबादत की जगह नहीं है, बल्कि एक अंतरराष्ट्रीय पर्यटन स्थल भी है, जो इस्लामी संस्कृति में सहिष्णुता, विभिन्न

संस्कृतियों के बीच संवाद और इस्लामी सभ्यता की विविधता को दर्शाता है।"

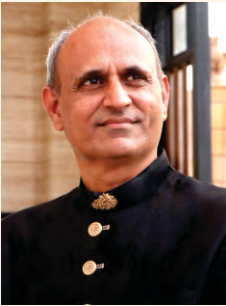
साल 2007 में बनी इस मस्जिद की दीवारों पर की गई पुष्प लताओं की नक्काशी, सफ़ेद संगमरमर के पत्थरों पर की गई नक्काशी, ख़ूबसूरत दालान, झरोखों के साथ बहुत कुछ अनोखा और अप्रतिम है, जो इसे विश्व प्रसिद्ध बनाता है। यहाँ विश्व का सबसे बड़ा हाथ का बुना हुआ हरे-सुनहरी रंग का कालीन बिछा है। दूसरा छत पर 12 मीटर व्यास का रंगीन शीशों, क्रिस्टल और शुद्ध सोने से बना झूमर है, जो इसकी सुंदरता में चार चाँद जड़ता है। इन दिनों मस्जिद की रोशनियों को बहुत कम रखा गया था, कारण वही, वही भय, वही डर और सुरक्षा की दृष्टि से... मैंने चारों ओर शांति और सह-अस्तित्व को महसूस किया। फिर क्यों मानव मानवता छोड़ युद्धों में उलझता है ?

गाड़ी एयरपोर्ट की ओर बढ़ गई, विदाई का वक्त था। भारी मन से मैं यात्रा में अब तक हुई अनुभूति को याद करती भारत यात्रा के लिए मन को तैयार करने लगी। दुबई संस्कृतियाँ का, भाषाओं का, खानपान, जीवन शैली, रहन-रहन का मिला जुला स्वरूप है। वहाँ जीवन की आज़ादी है, खुलापन है लेकिन अनुशासन भी है। क़ानून बहुत सख्त हैं जिससे यह स्थान महिलाओं के लिए भी उतना ही सुरक्षित है जितना पुरुषों के लिए !

यहाँ भोग-विलासिता है, उपभोक्तावाद की संस्कृति है। लोग अपनी ज़िंदगी को स्वयं पर केंद्रित कर जीने में मस्त हैं। दुबई को मैं वयस्कों का प्ले ग्राउंड, मियामी और लॉस वेगस को मिला कर बना रूप पुकारूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ! दुबई मरुस्थल पर बसा एक ऐसा शहर है जहाँ इंसानी महत्वाकांक्षाओं की ऊँची उड़ान यथार्थ बन ठोस धरातल पर अंकित है, जिसे देख मनुष्य स्वयं विस्मित होता है और उसकी सीमित कल्पनाओं के दायरे से भी अधिक एक दिव्य सपने में विचरण करता महसूस करता है। यहाँ प्राचीन सभ्यता के साथ भविष्य की सभ्यता शिखर पर विराजमान है वर्तमान में।

000

बाबा सोए जा घर में पैर पसारे बा घर में



पंकज सुबीर

पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने,
सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

इन दिनों लोगों को सबसे बड़ी समस्या यह हो रही है कि उनको सबका होकर रहना पड़ता है, पता नहीं कब देश में या प्रदेश में किस विचारधारा की सरकार आ जाए। मगर इस समस्या से हमारा साहित्यकार नहीं जूझ रहा है। आप पूछेंगे कि इससे साहित्यकार को क्यों समस्या नहीं हो रही है, तो उसका उत्तर यह है कि सरकार किसकी है, या आगे किसकी बन रही है, इससे साहित्यकार को इसलिए समस्या नहीं होती है क्योंकि वह तदनुसार अपने आपको बदलते रहता है। समझदार साहित्यकार हमेशा 'बाबा सोये जा घर में, पैर पसारे बा घर में' लोकोक्ति का अनुसरण करता रहता है। लोकोक्ति का अर्थ है कि बाबा एक घर में सो रहे हैं लेकिन उनके पैर दूसरे घर में हैं। साहित्यकार भी ऐसा ही करता है, वह एक दल या एक विचारधारा के घर में अपना सिर तथा शरीर का ऊपर का हिस्सा रख कर सोता है, मगर उसके शरीर का नीचे का आधा हिस्सा दूसरे दल या दूसरी विचारधारा के घर में होता है। आप कहेंगे कि इससे उसे क्या फ़ायदा है, बिलकुल फ़ायदा है, इससे वह दोनों विचारधाराओं की नाव में एक ही समय पर सवारी करता है। जिस दल की भी सरकार आ जाए, उसको प्रमाण के साथ कहता है कि देखिए मैं तो आपके ही घर में हूँ। एक और दुविधा की स्थिति साहित्यकार के सामने आती है, जब उसके प्रदेश में एक विचारधारा वाली सरकार हो तथा देश में दूसरी विचारधारा वाली सरकार हो। अब साहित्य को तो दोनों से ही काम पड़ना है, आखिर को पुरस्कार तथा सम्मान तो उसके प्रदेश की साहित्य अकादमी भी प्रदान करती है तथा देश की साहित्य अकादमी भी प्रदान करती है। और उसे तो दोनों से ही पुरस्कार तथा सम्मान चाहिए ही चाहिए। उसके अलावा भी देश तथा प्रदेश दोनों ही जगहों की साहित्य अकादमियाँ कार्यक्रम करती हैं, जिनमें मोटा पारिश्रमिक देकर हवाई मार्ग से साहित्यकार को बुलाती हैं। ऐसे में लेखक उसी लोकोक्ति का फ़ायदा उठाता है। केन्द्र में क्राबिज विचारधारा के घर में सिर रखता है तथा प्रदेश में क्राबिज विचारधारा के घर में पैर रखता है। जब उसे केन्द्रीय साहित्य अकादमी से मुखातिब होना होता है तो वह अपने मुँह से बात करता है तथा जब उसे अपने प्रदेश की साहित्य अकादमी से बात करना होता है तो पैरों से बात करता है। आप पूछेंगे कि पैरों से कैसे बात हो सकती है, आप भूल रहे हैं कि वह रचनाकार है, वह कहीं से भी बात कर सकता है। उसे बात करने के लिए बाकायदा मुँह की आवश्यकता नहीं होती है। मुँह को वह केन्द्र सरकार वाली विचारधारा के घर में इसलिए रखता है क्योंकि केन्द्र की सरकार के पास उसको देने के लिए बहुत कुछ होता है। यथा- साहित्य अकादमी पुरस्कार, पद्म पुरस्कार, केंद्रीय भाषा संस्थानों के निदेशक के पद, निर्णायक समितियों में ज्युरी के पद से लेकर यदि उड़ान अच्छी हो तो राज्यपाल तक। साहित्यकार को इस दुविधा से बचाने के लिए बुद्ध ने बहुत पहले ही मार्ग सुझा दिया था- मध्यम मार्ग, मतलब यह कि आप दो अलग-अलग विचारधाराओं से ठीक बराबर दूरी रखते हुए दोनों के बीच में बने रहिए। दोनों में से प्रत्येक को इस बात की गलतफ़हमी में बनाए रखिए कि आप तो उसके करीब हैं, दूसरे से तो दूर हैं। इसीलिए कतिपय साहित्यकार जब किसी ज्वलंत विषय पर बयान देते हैं तो आप बिलकुल नहीं समझ सकते हैं कि ये सरकार के पक्ष में बोल रहे हैं या विपक्ष में। वे दुनिया जहान की सारी बातें करेंगे मगर विषय पर बिलकुल भी नहीं बोलेंगे। इस बयान के जारी होने के बाद ये दोनों पक्षों को फ़ोन लगा कर कहते हैं- देखा मैंने सामने वाले की पूरी धूल झड़ा डाली। दोनों पक्ष उनके इस बयान से प्रसन्न हो जाते हैं। इसका एक बड़ा फ़ायदा उनको तब भी होता है, जब देश में या प्रदेश में सत्ता परिवर्तन होता है, तब ये अपने द्विअर्थी बयानों को सनद की तरह प्रस्तुत करते हैं कि मैं तो हमेशा से ही आपका था हुआ। अंग्रेज़ी का एक शब्द है 'कैमोफ़लाज' इसका अर्थ होता है अपने आस-पास के हिसाब से अपने आपको बदल कर उस अनुसार कर लेना, इसका सबसे अच्छा उदाहरण गिरगिट होता है... और हाँ आप कह सकते हैं साहित्यकार भी। **सादर आपका ही**


पंकज सुबीर

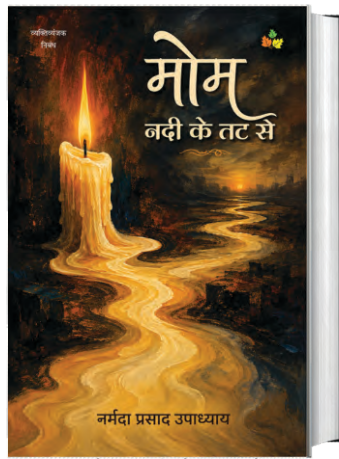
शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें



प्रेम का आंतरिक भूगोल

भालचन्द्र जोशी

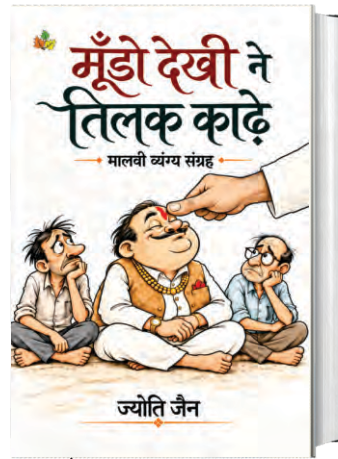
प्रेम का आंतरिक भूगोल
आलेख संग्रह
संपादक - भालचन्द्र जोशी
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-68-3



मोम नदी के तट से

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

मोम नदी के तट से
निबंध संग्रह
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-012-0



मूँडो देखी ने तिलक काढ़े

मालवी व्यंग्य संग्रह

ज्योति जैन

मूँडो देखी ने तिलक काढ़े
मालवी व्यंग्य संग्रह
ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-026-7

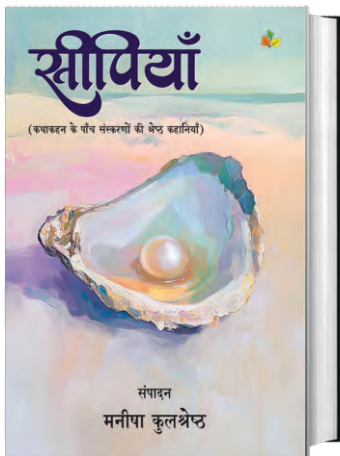


मिस्ड कॉल

कहानी संग्रह

डॉ. यशोधरा भटनागर

मिस्ड कॉल
कहानी संग्रह
डॉ. यशोधरा भटनागर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-008-3



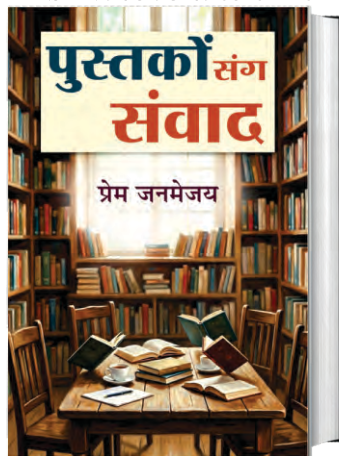
सीपियाँ

(फ़राख़न के चार संस्करणों की श्रेष्ठ कहानियाँ)

संपादन

मनीषा कुलश्रेष्ठ

सीपियाँ
कहानी संकलन
संपादक- मनीषा कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-36-2



पुस्तकों संग संवाद

प्रेम जनमेजय

पुस्तकों संग संवाद
समीक्षा संग्रह
प्रेम जनमेजय
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-484-5

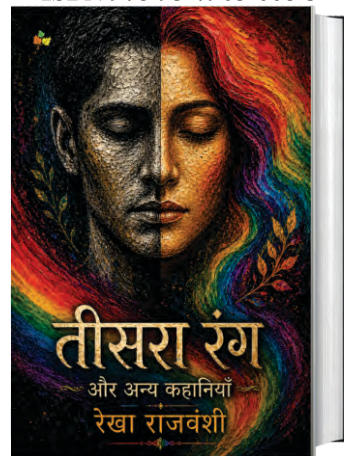


पंकज सुबीर का साहित्य : एक अनुशीलन

(शोध ग्रंथ)

डॉ. वर्षा गजानन पाटील

पंकज सुबीर का साहित्य- एक
अनुशीलन, शोधग्रंथ
डॉ. वर्षा गजानन पाटील
मूल्य- 600 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-56-0

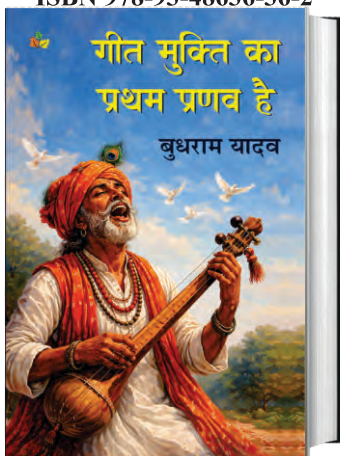


तीसरा रंग

और अन्य कहानियाँ

रेखा राजवंशी

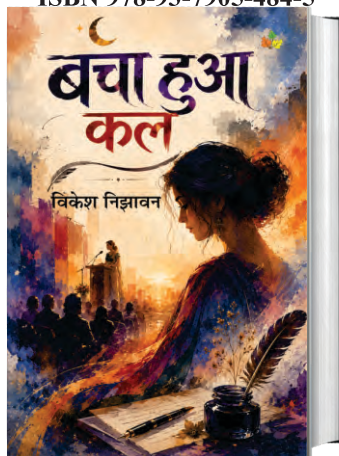
तीसरा रंग और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
रेखा राजवंशी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-015-1



गीत मुक्ति का प्रथम प्रणव है

बुधराम यादव

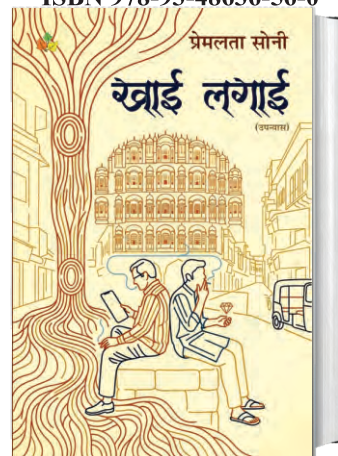
गीत मुक्ति का प्रथम प्रणव है
गीत संग्रह
बुधराम यादव
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-291-9



बचा हुआ कल

विकेश निग्रावन

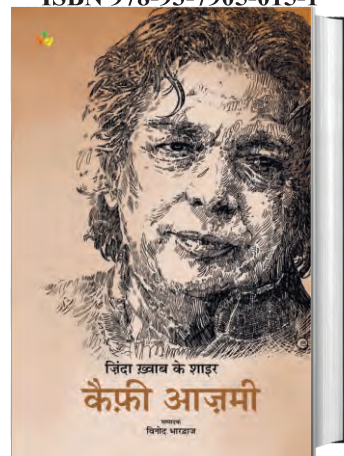
बचा हुआ कल
कहानी संग्रह
विकेश निग्रावन
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-007-6



ख़ाई लगाई

(उपन्यास)

ख़ाई लगाई
उपन्यास
प्रेमलता सोनी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-594-1



कैफ़ी आजमी

जिंदा ख़ाब के शायर

जिंदा ख़ाब के शायर कैफ़ी आजमी
आलेख संग्रह
संपादक विनोद भारद्वाज
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-074-8

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शाँप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेंसमेट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372

मोबाइल +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580

ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com

+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac

https://www.facebook.com/shivna.prakashan

https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations

amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JYJGSM2CEV



ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्र पर आयोजित कार्यक्रम



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।

If Undelivered Please Return to :

P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लेक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।